DWIVEDIYUGIN KAVYA MEN RASHTRIYATA EVAM GANDHIVAD KA SWAROOP

(NATIONALISM AND GANDHISM AS REFLECTED IN THE POETRY OF DWIVEDI-AGE)

Thesis submitted to

THE COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

GEETHA C. G.

Professor and Head of the Department
Dr. P. V. VIJAYAN

Supervising Teacher
Dr. L. SUNEETHA BHAI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN-682 022

1992

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by GEETHA, C.G. under my supervision for Ph.D. degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. L. SUNEETHA BAI

(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
KOCHI, Pin 682022
Date : 20.05.1992.

उपक्रम

उपक्रम

बीसवीं सदी के प्रारंभ में भारत में जिन नये राजनैतिक विचारों का विकास हुआ, उनके अन्तर्गत नये विकसित राष्ट्र एवं नयी राष्ट्रीयता का विशेष महत्व रहा है। सांस्कृतिक नवोत्थान के फलस्वरूप हिन्दी कविता के क्षेत्र में द्विवेदीयुग तक आते आते एक युगान्तर ही उपस्थित हुआ। द्विवेदीयुग के कवि जनध्वनि को लेखनीबद्ध करने केलिए व्याकुल थे और वे निरन्तर जन कल्याण में रत थे। इसलिए उन्होंने अधिकांशत: सामाजिक कविता की रचना की। इन कवियों का स्वर लोक हिताय बना रहा। लोकहित के ज़रिये राष्ट्र-हित ही इनका मूल लक्ष्य था। पौराणिक आदर्श चरित्रों को काव्य में चित्रित करते हुए उपदेशों के ज़रिये आम जनता में देशभक्ति की लहर उत्पन्न करना इनका प्रमुख उद्देश्य था। इस युग में राजनीतिक पराधीनता देश का सबसे बडा दुर्भाग्य था। शौर्य, स्वाभिमान, सद्गुण, तेजस्विता आदि का लोप होने के कारण देश परतन्त्र बना। देश को स्वतन्त्र करने केलिए

अनेक प्रयास किए गए । प्रचण्ड आन्दोलन बलिदान सशस्त्र संग्राम तथा क्रान्तिकारियों के हत्याकाण्ड से देश में एक अपूर्व जागृति हुई थी । इस समय राजनीतिक हलचलों की प्रतिक्रिया की व्यंजना करनेवाली कविताओं को ही राष्ट्रीयचेतना की पूर्ण एवं शुद्ध अभिव्यक्ति प्राप्त हो सकी है ।

जागृत देश शासकों की क्रूर क्रियाओं का प्रतिरोध करता है । वह शासन की राष्ट्रीयता विरोधी क्रियाओं का विरोध करता है और अपने भीतर बल एवं उत्साह संजोकर परतन्त्र के जुए को फेंक देना चाहता है । स्वतन्त्रता की कामना वेगमय हो उठती है । इस प्रकार उसमें राष्ट्रीय जीवन की गतिविधि का सही चित्रण प्रस्तुत किया जाता है । राष्ट्रीय जीवन के प्राणों का स्पन्दन इसमें व्यक्त हो उठता है । द्विवेदीयुगीन कविता में स्वतन्त्रता की हुंकार है, विद्रोह एवं विध्वंस की वाणी है, स्वतन्त्रता केलिए बलिदान होने के आकांक्षा प्राणों का उत्साह एवं उल्लास है । इन्हीं बातों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

गांधीजी का आगमन भारतीय राजनीति में विशेष महत्व रखता है । हिन्दी साहित्य की क्षिप्र प्रगति एवं विकास में गांधीजी की व्यापक विचारधारा का महत्वपूर्ण योग है । उनके नेतृत्व में असंख्य देशवासियों ने स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने केलिए बलिपथ पर चढ़ना स्वीकार किया था । उनके द्वारा संचालित इस अपूर्व क्रान्ति ने द्विवेदीयुगीन कवियों को भी क्रियात्मक क्षेत्र की ओर प्रेरित किया ।

इन सब की अमित छाप इन कृतियों में अंकित है । राष्ट्र केलिए मर मिटने की भावना गान्धी विचारधारा से प्रेरित अहिंसक राष्ट्रीय भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण आदि राष्ट्रीयता के नये रूप द्विवेदी युग में उभर कर आये । मानवतावादी विचारधारा का विकास जो इस युग की एक प्रमुख विशेषता है, निश्चय ही गांधी विचारधारा के बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप है । द्विवेदीयुगीन कवियों ने गांधीजी द्वारा चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलन को वाणी प्रदान की । द्विवेदीयुग के अनेक साहित्यकारों ने प्रत्यक्ष रूप से आगे बढ़कर गांधीजी की विचारधारा का समर्थन किया तो कुछ ने अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव ग्रहण किया तथा कुछ ऐसे साहित्यकार भी सामने आए जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से गांधीजी को चरित्रनायक मानकर उनके विराट व्यक्तित्व का आलेखन किया । पं. रामनरेश त्रिपाठी इन साहित्यकारों में प्रमुख थे । "रामनरेशत्रिपाठी के खण्डकाव्यों में राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का स्वरूप" एम.फिल. में मेरे लघु प्रबन्ध का विषय रहा है । समय के अभाव के कारण अपने लघु प्रबन्ध केलिए एम.फिल. में मैं ने पूरे द्विवेदीयुग को न चुनकर अपने अध्ययन को रामनरेशत्रिपाठी के खण्डकाव्यों तक सीमित रखा । पीएच.डी. के शोध प्रबन्ध केलिए मैं ने इसी विषय को आगे बढ़ाने का प्रयास किया । मैं आशा करती हूँ कि मेरा यह शोध प्रबन्ध हिन्दी काव्य के अध्ययन में कुछ योगदान अवश्य देगा ।

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद के चित्रण को लेकर काफी शोध ग्रन्थों की रचना हुई है । इनमें विद्यनाथ गुप्त के द्वारा लिखी गई "हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना के.के. शर्मा की "हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास लक्ष्मीनारायण

दुबे की हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा, जितराम पाठक की "आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास, सुधाशंकर कलवडे की "आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना" आदि का नाम लिया जा सकता है । लक्ष्मीनारायण दुबे और कलवडे ने अपनी रचनाओं में द्विवेदीयुगीन काव्य में चित्रित राष्ट्रीयता के स्वरूप पर लेखनी तो चलाई है लेकिन अन्य ग्रन्थों में द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीय काव्य के संकेत मात्र ही मिलते हैं । डॉ॰ अरविंद जोशी का "गांधीविचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव और डॉ॰ मितली भट्टाचार्जी का "आधुनिक हिन्दी कविता में गांधीवाद" दोनों हिन्दी साहित्य में गांधीवाद के चित्रण का परिचय देते हैं । इनमें द्विवेदीयुगीन गांधीवादी प्रवृत्तियों पर संकेत ही मिलता है । द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता मूलरूप से सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम है और उपर्युक्त ग्रन्थों में द्विवेदी युगीन काव्य में आनेवाले नवजागृत राष्ट्रीयता के मूलतत्वों पर केवल संकेत ही प्राप्त होता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "द्विवेदी युगीन काव्य में राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का स्वरूप" का लक्ष्य नवोत्थान से प्रेरित राष्ट्रीय नवजागरण की मूल प्रवृत्तियों को दिखाते हुए गांधीवाद के सांस्कृतिक एवं सामाजिक पक्षों का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करना रहा है । मेरा विचार है कि यह शोध प्रबन्ध द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता और गांधीवाद पर नया प्रकाश डाल सकेगा ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मुख्य रूप से पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रथम अध्याय में राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद के तत्वों पर विचार किया गया है । द्वितीय अध्याय में द्विवेदीयुगीन काव्य की पृष्ठभूमि दी गई है ।

द्विवेदीयुग की पृष्ठभूमि के विस्तृत अध्ययन के साथ साथ उस युग के प्रमुख कवि एवं उनकी कृतियों का सामान्य परिचय भी इसमें दिया गया है । तृतीय अध्याय में राष्ट्रीय चेतना एवं द्विवेदीयुगीन काव्य पर उसका प्रभाव दिखाया गया है । चौथे अध्याय में राष्ट्रीयता के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए द्विवेदीयुगीन काव्यों में अन्तर्निहित राष्ट्रीयता को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है । पंचम अध्याय में द्विवेदीयुगीन काव्य में गांधीवादी तत्वों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है । उपसंहार के अन्तर्गत द्विवेदीयुगीन काव्य की राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का मूल्यांकन किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की तैयारी मैं ने कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रहकर की है । यह प्रबन्ध इसी विभाग की प्रोफेसर डॉ॰एल॰ सुनीताबाई के निर्देशन में तैयार किया गया है । विषय चुनाव से लेकर उसे एक सुसज्जित सुव्यवस्थित कलेवर प्रदान करने में आदरणीय डॉ॰ सुनीता बाई बराबर मेरी सहायता करती रही हैं । उसकेलिए मैं उनकी सर्वाधिक कृतज्ञ हूं । माननीय डॉ॰पी॰वी॰ विजयन के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिनके सद्भाव के कारण यह कार्य आसानी से सम्पन्न हो सका है । इस प्रबन्ध को तैयार करने में मैं ने जिन विद्वानों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहायता ली है, उन सब के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूं ।

हिन्दी विभाग,
कोचीन विज्ञान व
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोचीन-22,
तारीख 20·05·1992

Geetha C.G.
गीता सी॰जी॰

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

प्रथम अध्याय 1 - 63

राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का स्वरूप

नया राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता - राष्ट्रीयता
एक समष्टिगत चेतना - राष्ट्रीयता के
प्रधान तत्व - भाषा की एकता -
भौगोलिक एकता - संस्कृति तथा इतिहास
परम्परा की एकता - जातीय एकता -
धर्म की एकता - आर्थिक और
राजनीतिक आकांक्षा की एकता -
समान हित - भारतीय साहित्य में
राष्ट्रीयता का विकास - भारतीय
राष्ट्रीयता एवं गांधीजी - गांधीवाद
का स्वरूप - गांधीवाद के प्रमुख पक्ष -
सैद्धान्तिक पक्ष - सत्य की महिमा -
अहिंसा - जगन्नियन्ता में आस्था -
कर्मसिद्धान्त का माहात्म्य - युद्धविरोध -
मानवता की भावना - व्यावहारिक पक्ष
ब्रह्मचर्यव्रत की महत्ता - अस्तेय - अपरिग्रह
अस्वाद - अभय - सत्याग्रह - सेवा-
भावना - राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर -

पृष्ठ-संख्या

सुधारात्मक पक्ष - नारी उद्धार तथा
नारी का कर्मक्षेत्र - अछूतोद्धार -
ग्रामोद्धार - निष्कर्ष ।

द्वितीय अध्याय 64 - 105

द्विवेदीयुगीन काव्य की पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय जागरण का प्रारम्भ - अंग्रेज़ी
शिक्षा से देश में नवचेतना - सांस्कृतिक
पुनर्जागरण ब्रह्मसमाज - आर्यसमाज -
रामकृष्णमिशन - थियोसोफिकल
सोसाइटी - राष्ट्रीय जागरण की
परिस्थितियाँ - सामाजिक परिस्थितियाँ
आर्थिक परिस्थितियाँ - राजनैतिक
परिस्थितियाँ - धार्मिक परिस्थितियाँ
भारतेन्दुयुगीन राष्ट्रीय कविताधारा
देश के प्रति ममता - अतीत का
गौरव - वीर-पूजा - आर्थिक दुर्दशा -
राजभक्ति - वर्तमान के प्रति क्षोभ -
विदेशी वस्तुओं का विरोध - कांग्रेस की
स्थापना - विभिन्न राजनैतिक आंदोलन
तथा अन्य परिस्थितियाँ - गांधीजी का
आगमन - द्विवेदीयुगीन काव्य पर
राष्ट्रीयता का प्रभाव - द्विवेदीयुगीन
काव्य पर गांधीजी का प्रभाव - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

तृतीय अध्याय 106 - 173

द्विवेदीयुगीन काव्य और राष्ट्रीय चेतना

द्विवेदीयुग - पं॰महावीरप्रसाद
द्विवेदी और उनका युग - द्विवेदी
युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
आदर्श एवं नीति - मानवतावाद
विश्व बंधुत्व की भावना - नारी
का उद्धार - राष्ट्रीयता - द्विवेदी-
युगीन कवि और काव्य - नाथूराम
शर्मा शंकर - पं॰श्रीधर पाठक - पं॰
महावीरप्रसाद द्विवेदी - अयोध्यासिंह
उपाध्याय हरिऔध - जगन्नाथदास
रत्नाकर - राय देवीप्रसादपूर्ण -
रामचरित उपाध्याय - सत्यनारायण
कविरत्न - गयाप्रसाद शुक्ल सनेही -
मैथिलीशरण गुप्त - पं॰रामनरेशत्रिपाठी
सियारामशरणगुप्त - अन्य कवि -
द्विवेदीयुगीन काव्य में सुधारवादी
प्रवृत्तियाँ - नव-जागरण और उसका
प्रभाव - भारतीय संस्कृति के प्रति
अटूट आस्था - प्राचीन साहित्य की ओर
झुकाव - वीरपूजा की भावना -

पृष्ठ-संख्या

द्विवेदीयुगीन कवियों की अतीत
विषयक मान्यताएँ - अतीत का
गौरवगान - वर्तमानदशा पर क्षोभ
विदेशी शासन के प्रति विरोध -
भारतवन्दना तथा प्रशस्ति -
गांधीदर्शन से प्रेरित विचार -
उद्बोधन - निष्कर्ष ।

चतुर्थ अध्याय 174 - 230

द्विवेदीयुगीन काव्य में राष्ट्रीयता का
स्वरूप

विभिन्न राजनैतिक आन्दोलन -
बंग-भंग आन्दोलन - लोकमान्य तिलक
और स्वराज्य की घोषणा - स्वदेशी
आन्दोलन - होमरूल आन्दोलन -
द्विवेदीयुगीन काव्य में गांधीवादी
लहर - दण्डी यात्रा - कारागृह
वास - द्विवेदीयुगीन कवियों के
राष्ट्रसम्बन्धी विचार - राष्ट्र के
प्रति समर्पण का भाव - जातीयता के
उद्गार एवं एकता का भाव - क्रांति
का स्वर तथा बलिदान की भावना -

पृष्ठ-संख्या

राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम - स्वतन्त्रता
का महत्व - प्रजातन्त्रसम्बन्धी विचार -
अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर समसामयिक
राजनीति - विभिन्न गीत -
निष्कर्ष ।

पंचम अध्याय 231 - 316

द्विवेदीयुगीन काव्य में गांधीवाद का स्वरूप

सांस्कृतिक नवजागरण से उद्भूत
गांधीवाद - सैद्धान्तिक पक्ष -
सत्य की महिमा - अहिंसा -
जगन्नियन्ता में आस्था -
कर्मसिद्धान्त का माहात्म्य -
युद्धविरोध - मानवता की भावना
व्यावहारिक पक्ष - ब्रह्मचर्य की महत्ता
अभय - सत्याग्रह - अस्तेय - अपरिग्रह -
अस्वाद - सेवा-भावना - राष्ट्रीय
क्रान्ति का स्वर - सुधारात्मक पक्ष
नारी उद्धार तथा नारी का कर्मक्षेत्र
विवाह की समस्या - दहेजप्रथा - बाल
विवाह - अनमेल विवाह - विधवा -
विवाह - स्त्री शिक्षा - अछूतोद्धार
ग्रामोद्धार - निष्कर्ष ।

उपसंहार 317 - 326

संदर्भ ग्रन्थ सूची 327 - 359

----0----

प्रथम अध्याय

राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का स्वरूप

प्रथम अध्याय

राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का स्वरूप

साहित्य समाज का दर्पण होता है । समय समय पर समाज में दिखाई पड़नेवाली विभिन्न विचारधाराएँ साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होती हैं, चाहे ये विचारधाराएँ राजनैतिक हो या धार्मिक । राजनैतिक विकास का समुचित प्रभाव व्यक्तियों पर पड़ता है जिसका असर निस्सन्देह पूरे समाज पर भी देखा जा सकता है । इस प्रकार समाज में दिखाई पड़नेवाली राजनैतिक विचारधारा साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होती है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लिखे गये भारतीय भाषाओं के किसी भी साहित्य पर तत्कालीन परिवर्तित संस्कृति एवं राजनीति का प्रभाव निस्सन्देह देखा जा सकता है । हिन्दी साहित्य भी उसका

अपवाद नहीं है । बीसवीं सदी के प्रारंभ में लिखे गये द्विवेदी-युगीन काव्य में विशेष रूप से यह परिवर्तन देखा जा सकता है । बीसवीं सदी के प्रारंभ में भारत में जिन नये राजनैतिक विचारों का विकास हुआ, उनके अन्तर्गत नये विकसित राष्ट्र एवं नयी राष्ट्रीयता का विशेष महत्व रहा है ।

नया राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता

राष्ट्र शब्द का प्रयोग अक्सर भूमि, जनसमुदाय आदि अर्थों में व्यवहृत होता है । इस शब्द की व्युत्पत्ति "रासन्ते चारूशब्द कुर्वन्ते जना:यस्मिन् प्रदेश विशेषे तद राष्ट्रम्" से है । इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र शब्द में जनसमूह का विशेष योग है ।

आज राष्ट्र शब्द समाज, जाति तथा राज्य सब केलिए व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है । आधुनिक संदर्भ में "राष्ट्र" की परिभाषा देते हुए डॉ॰ सुधीन्द्र ने लिखा है - "भूमि, भूमि-वासी जन और जन संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है ।[1]" भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जन-गण की राजनैतिक एकता और जन-संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता - तीनों के समन्वय का नाम राष्ट्र है । राष्ट्र में भौगोलिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक इकाइयाँ पूंजीभूत है ।

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ॰सुधीन्द्र, पृ॰164-165

स्टालिन के अनुसार राष्ट्र वह समुदाय है जो ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित एवं स्थायी हो तथा सर्व-सामान्य भाषा, भूभाग, आर्थिक जीवन और संस्कृति में अभिव्यक्त होनेवाली विशेष मनोरचना से युक्त हो ।[1] अतः "राष्ट्र" कहलाने का अधिकारी वही जनसमुदाय है जो निश्चित भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ हो तथा जिसकी अपनी ही सभ्यता, अपनी ही संस्कृति एवं अपनी निजी चिन्तन प्रणाली तथा विचारधारा हो और जिसमें सम्पूर्णतः एकानुभूति की अटूट भावना विद्यमान हो । राष्ट्र उस जनसमुदाय का नाम है, जिसका अपना एक भूभाग हो, अपनी परम्परागत संस्कृति हो, अपनी भाषा हो, अपना रहन-सहन हो, अपने आचार-विचार हो, अपनी वेश-भूषा हो, अपने रीति-रिवाज़ हो, विदेशी आक्रामकों से सामूहिक रूप से स्वरक्षा की अनुभूति हो, अपनी भूमि के प्रति समर्पण ही अगाध एवं अटूट भावना, असीम प्यार और अपरिमित श्रद्धा हो ।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत का जन समुदाय हीनावस्था की पराकाष्ठा को पहुँच चुका था । विदेशी शासकों के पंजों में जनता पकडी पडी हुई थी । उसे दिशाओं का बोध नहीं था । उसके विश्वास की जड़ें हिल रही थीं । दासता की कडी श्रृंखलाओं में पडने के कारण उसके जीवन का उल्लास नष्ट हो रहा था । भारत की ऐसी हीन जनता को अपनी दीनावस्था से ऊपर उठाने और उसमें नई

---

1. A nation is historically evolved, stable community of language, territory, economic life and psychological make up manifested in a community of culture.

   - Marxism and the question of Nationalities.

चेतना का संचार करने केलिए उस समय एक नये राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता थी । यह कार्य मूल रूप से भारतीय नवोत्थान के फलस्वरूप हुआ । राजा-राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती एनी बसेंट, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथटागोर आदि के निरन्तर प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत की जनता जाग उठी और उसने अपने को दासता की श्रृंखला से मुक्त करने का प्रयत्न किया जिसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जाएगा ।

राष्ट्र के प्रति तीव्र अपनत्व तथा ममत्व की भावना ही राष्ट्रीयता है । राष्ट्रीयता की भावना हरेक व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न होती है । अपने देश के प्रति अगाध प्रेम में, अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म के प्रति गौरव में, अपने देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दशाओं में सुधार के प्रयत्न आदि में राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है । इसमें राष्ट्र के सभी प्राणियों के प्रति प्रेम की भावना विद्यमान रहती है । जनता की बहुमुखी समृद्धि की मंगलकामना ही इसका लक्ष्य है । इसकेलिए उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है । समाज के प्रति सहानुभूति एवं उच्च विचारों के फलस्वरूप ही इस भावना का उदय होता है । यह तो किसी महान पुरुष के हृदय की थाती है । इसके अन्तर्गत एकता की भावना भी अन्तर्निहित होती है । "राष्ट्रीयता वास्तव में मन की एक अवस्था मात्र है । वह व्यक्ति को

राष्ट्रीयता के सूत्र में तभी बाँधती है जब उसका ऐसे जनसमूह से एकत्व हो जाता है जिसका रहन-सहन, रीति-रिवाज़, संस्कार तथा अन्य जीवन की समस्यायें तथा बन्धन उसी के समान हों। वह अपने समाज से नाता तोड़कर जीवन व्यतीत नहीं कर सकता[1]।"

राष्ट्रीय भावना के पीछे समाज की भलाई भी है। राष्ट्रीयता का कार्य व्यापक समाज में चलता है, जिसकी महत्ता सामान्य नहीं कही जा सकती। राष्ट्रीयता के कारण समाज में उसी स्नेहशीलता का निर्माण हो जाता है जिस से सभी लोग एकता के सूत्र में बन्ध जाते हैं। इस से प्रेरित होकर व्यक्ति राष्ट्र केलिए अपना सब कुछ दान करनेकेलिए तैयार हो जाता है। और किसी के अनुसार "राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति को अपने राष्ट्र केलिए उच्चकोटि के शौर्य तथा बलिदान केलिए प्रेरणा देनेवाली सामूहिक भावना की एक ऐसी उच्चतम अभिव्यक्ति है जिसका संसार के इतिहास निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है[2]।"

भारत में बीसवीं सदी के प्रारंभ में एक नई राष्ट्रीयता का उदय हुआ जिससे यहाँ पर एक नये समाज का निर्माण हुआ जिसमें पौराणिक संस्कृति के आदर्श तत्वों की प्रमुखता थी और जिसने देश की सुप्त जनता को जगाने का

1· हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - विद्यानाथ गुप्त, पृ·9

2· आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - डॉ·सुधाशंकर कलवडे, पृ·22

महान कार्य किया था । दासता में अपने जीवन का उल्लास खोकर सुप्त पड़ी हुई जनता एकाएक जाग उठी और उसने एक नये समाज के निर्माण में अपना अपना योगदान दे दिया । प्राचीन संस्कृति यहाँ सजग हो उठी और अपनी चिरपुरातन सभ्यता एवं धर्म के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ गया । यही नई राष्ट्रीयता का निर्माण था जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी देखा जा सकता है । द्विवेदीयुगीन साहित्य इस नई राष्ट्रीयता का सुन्दर विवरण प्रस्तुत करता है ।

राष्ट्रीयता एक समष्टिगत चेतना

राष्ट्रीयता मनुष्य के अन्तःकरण की एक सर्वोत्तम चेतना है जो राष्ट्र के कल्याण केलिए उसे सदा उत्तेजित करती रहती है । यही मनोवृत्ति व्यक्ति में अपने राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने तथा उसे गौरवान देखने की अभिलाषा जगाए रखती है । यह ऐसा भाव होता है जिसके कारण व्यक्तिगत स्वार्थ तथा सुख को समूचे राष्ट्र के हित केलिए निछावर कर देना प्रत्येक राष्ट्र निवासी का कर्त्तव्य हो जाता है ।

राष्ट्रीयता व्यक्तिगत भावना न होकर समष्टिगत चेतना है । अतः राष्ट्र की उन्नति केलिए जनसमूह की भावना सहायक होती है । राष्ट्रीयता ने न केवल जन समुदायों की भावनाओं को प्रभावित किया बल्कि मानवता के बौद्धिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया है । ये राष्ट्रीय चेतना का विषय है ।

यह मानवजाति की मूलभूत अनुभूतियों में से एक है । राष्ट्रीयता मन की एक ऐसी चेतना है जिससे व्यक्ति जनसमूह से एकत्व स्थापित करके अपने देश और समाज की भलाई केलिए अपना सब कुछ दान कर देता है । जिन लोगों के धर्म-विश्वास, आचार-विचार तथा अन्य सामाजिक परम्पराएँ सामान्य रही है, उनमें राजनैतिक एकता के कारण जो एकानुभूति की चेतना निर्मित हुई, वही तो राष्ट्रीयता है । श्री• गिलक्राइस्ट के अनुसार "राष्ट्रीयता एक ऐसी आन्तरिक भावना है जो उन लोगों में उत्पन्न होती है जो एक ही जाति तथा स्थान से सम्बन्ध रखते हो, जिनकी भाषा, धर्म, इतिहास तथा आचार विचार सामान्य हो तथा एक ही राजनैतिक आदर्श से संगठित हो[1] ।"

राष्ट्रीयता के उत्पन्न होने के कारणों में अपने ही देश की पुण्यभूमि से अनुराग, अपने ही देशवासियों के साथ सहानुभूति एवं सहयोग युग युग से चली आ रही अपनी परम्पराओं एवं आदर्शों का अनुकरण और अपनी ही सभ्यता एवं संस्कृति का आकर्षण मुख्य है । राष्ट्रीयता का उद्देश्य देश का चरम विकास है ।

---

1. Nationality is spiritual sentiment or principle arising among a number of people usually of the same race resid ent on the same territory, Sharing a common language, the same religion, similar history and tradition, common interests with common political associations and common ideals of political unity.

2. Gil Christ, R.N. - Principles of Political Science, 6th Edition, pp.26,27

राष्ट्रीयता के प्रधान तत्व

राष्ट्रीयता केलिए कुछ तत्वों का आवश्यक होना अनिवार्य है। यद्यपि समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रीयता के स्वरूप में अन्तर आता रहता है और इन तत्वों में से कोई एक अथवा एक से अधिक भी उस स्वरूप निर्माण केलिए अनिवार्य नहीं होते परन्तु प्रत्येक तत्व की एक निजी विशेषता है जो मुख्य अथवा गौण रूप में राष्ट्रीयत्व केलिए नितान्त सहायक होती है। वे तत्व हैं - भाषा की एकता भौगोलिक एकता, संस्कृति तथा इतिहास परम्परा की एकता, जातीय एकता, धर्म की एकता, आर्थिक और राजनैतिक आकांक्षा की एकता और समान हित।

1. भाषा की एकता

राष्ट्रीयता के विकास में भाषा की एकता का महत्वपूर्ण स्थान है। एक ही भाषा का प्रयोग जो एकानुभूति का प्रमुख साधन है, सभ्यता चरित्र तथा जीवन के अन्य सामान्य आदर्शों को स्थापित करने में सहायक होता है। एक भाषा-भाषी एक दूसरे की जानकारी प्राप्त करने में तथा एक ही प्रकार का सामाजिक जीवन व्यतीत करने में आसानी का अनुभव करते हैं। भाषा राष्ट्र की आत्मा की वाणी है। एक ही भाषा के द्वारा विचार-विनिमय करनेवाले लोगों में एक होकर रहने का भाव शीघ्रता से पनप सकता है। किसी राष्ट्र का

एक ही भाषा में लिखा हुआ साहित्य तथा इतिहास भी राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों केलिए विशेष रूप से प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। भाषा की विभिन्नता राष्ट्रीय एकता को निर्बल अवश्य बनाती है। जो राष्ट्रीय जीवन एक ही भाषा के प्रयोग में विकास पाता है, वह भिन्न भिन्न भाषाओं का प्रयोग करने पर संभव नहीं है। भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का भाव विद्यमान है। यद्यपि वहाँ कई भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। फिर भी एक राष्ट्र भाषा की आवश्यकता अनुभव की जाती है जिसके कारण हिन्दी को वह स्थान देने का निश्चय किया गया। परिणाम स्वरूप प्रान्तीयता की संकुचित भावना का ह्रास होगा तथा राष्ट्रभाषा का गौरव रखते हुए भारतीय अपने देश में सर्वमान्य एवं सर्वप्रिय साहित्य तथा संस्कृति को समृद्ध बनाने में प्रयत्नशील होंगे।

2. <u>भौगोलिक एकता</u>

किसी देश की प्रकृति एवं जलवायु उसके निवासियों का समान रूप से शारीरिक एवं मानसिक विकास करते हैं तथा उनमें एक जैसा स्वभाव चरित्र और रूप-रंग निर्माण करने में योग देते हैं। यही कारण है कि एक ही देश के निवासी परस्पर सहयोग तथा सौहार्द की एक विशेष अनुभूति रखते हैं और समान रूप से सामाजिक प्रगति करने में सफल होते हैं। इसकेलिए एक निश्चित भूमि का होना आवश्यक होता है। बिना स्वदेश के राष्ट्र की कल्पना नहीं हो सकती।

भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ निर्दिष्ट प्रदेश, जिसे जनसमुदाय अपना कह सके, राष्ट्रीय भावों को जन्म देने में सहायक होता है ।

अपने भूमि-प्रदेश की जितनी समझ-बूझ किसी व्यक्ति को होगी, उतनी ही अखण्ड तथा उदार भावना उसमें विकसित होगी । यह पृथ्वी सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय विचारों की जननी है । भौगोलिक एकता का सामाजिक ही नहीं, आर्थिक तथा राजनैतिक महत्व भी है । अपने भौगोलिक सीमाबद्ध प्रदेश से निस्वार्थ प्रेम राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करने में बहुत सहायक होता है । किसी जाति के राष्ट्रीय जीवन को सदा जाग्रत तथा सजग रखनेकेलिए स्वदेश का होना नितान्त आवश्यक है । उनके धर्म, विश्वास, भाषा तथा आचार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, परन्तु एक ही मातृभूमि का सम्बन्ध उनमें एक सूत्रता उत्पन्न कर सकता है ।

3· संस्कृति तथा इतिहास-परम्परा की एकता

राष्ट्रीयता केलिए सांस्कृतिक एकता का बडा महत्व होता है । एक ही संस्कृति को अपनानेवाले लोगों में ही परस्पर एकता के भाव जाग्रत होते हैं और उनमें इसी एकानुभूति के कारण राष्ट्रीय विचारधारा का विकास होता है । साहित्य संस्कृति का ही मुख्य अंग है, जिसने राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित तथा सुदृढ करने में सदा सहायता की है । राष्ट्रीय

साहित्य राष्ट्रीय एकता केलिए सदा उपयोगी सिद्ध होता रहा है । कला, नृत्य, संगीत आदि मनोरंजन के साधन भी संस्कृति के ही अन्तर्गत आते हैं । सांस्कृतिक एकता को पुष्ट तथा स्वस्थ बनाने केलिए राष्ट्रीय शिक्षा की भी आवश्यकता होती है । इसी के द्वारा जनता के भेदभाव मिटते हैं और वह सच्ची राष्ट्रीयता के महत्व को समझने योग्य हो जाती है ।

ऐतिहासिक परम्परा भी राष्ट्रीय संस्कृति का ही एक अंग है । प्रत्येक राष्ट्र अपने प्राचीन इतिहास पर गौरवान्वित होता है । वास्तव में कोई भी जाति अथवा देश अतीत को अनायास नहीं भुला सकता क्योंकि वह सदा वर्तमान को स्फूर्ति प्रदान करता रहता है । इतिहास के तेजस्वी चरित्र जाति की सामान्य निधि होते हैं । इनके जीवनादर्शों का अनुसरण कर जनता कर्त्तव्यारूढ़ होकर अपने में जागृति के कार्य करने केलिए सन्नद्ध हुआ करती है ।

4. जातीय एकता

जाति उस समुदाय को कह सकते हैं जिसके सदस्यों में दूसरे को अभिन्न समझने की प्रवृत्ति हो । यह एक परंपरागत समाज ही है जिसकी एकता के बिना राष्ट्रीयता की धारणा दृढ नहीं होती । राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त जनसमुदाय ही राष्ट्र का रक्षक होता है । जातीय एकता राष्ट्रीयता का प्रमुख सूत्र है । परन्तु वही जाति राष्ट्रीय जाति होने का गौरव कर सकती है जिसमें राष्ट्र के हित केलिए सर्वदा एक

उमंग रहती हो और निजी सुखों का परित्याग कर सामूहिक राष्ट्रकल्याण को सर्वोपरि मानना ही जिसका ध्येय होता हो। ऐसी ही राष्ट्रीय जाति की एकसूत्रता राष्ट्रीयत्व की जननी है।

5. धर्म की एकता

एक ही प्रकार के धार्मिक विश्वास रखनेवालों तथा एक ही प्रकार के विधिविधानों का पालन करनेवालों में परस्पर बन्धुत्व का भाव अनायास ही विकसित होता रहता है। समान धर्मावलम्बियों का सामाजिक जीवन सहज ही परिपक्व हो जाता है और वे राजनैतिक एकता के सूत्र में भी सुगमता से बँध जाते हैं। धर्म की एकता ने किसी देश की राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में सदा सहायता की है। आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र में प्रचलित सभी धर्म परस्पर उदार भावना रखें तथा सभी को अपने अपने स्थान पर विकसित होने की स्वतन्त्रता हो, जो निश्चय ही राष्ट्रीय एकता में सहायक सिद्ध होगी।

6. आर्थिक और राजनैतिक आकांक्षा की एकता

एक ही प्रकार की आर्थिक आकांक्षा रखनेवाले तथा एक ही प्रकार की आर्थिक समस्याओं की पूर्ति केलिए संघर्ष करनेवालों में एकीकरण का भाव अधिक मात्रा में पाया जाता है।

सामान्य आर्थिक उद्देश्य जाति के जीवन में राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करता है । सामान्य आर्थिक आकांक्षा रखनेवाला जनसमुदाय एक ही परिवार के सामान्य सदस्य होने की भावना रखता है । उसमें सहज ही एकरूपता आ जाती है जो उसके राष्ट्रीयत्व को जाग्रत करने में समर्थ हो सकती है । अत: आर्थिक आकांक्षा की एकता का महत्व विशेषकर आज के युग में एक असाधारण स्थान का अधिकारी है ।

राष्ट्रीयता की अनुभूति केलिए राजनैतिक एकता का बडा हाथ है । देश तथा जाति को सुरक्षित रखनेकेलिए प्रत्येक राष्ट्र को समय समय पर राजनैतिक एकता का सहारा लेना पड़ता है । राष्ट्रीयता की प्रौढ़ भावना हमें राजनैतिक एकता में ही दिखाई पड़ती है ।

7· समानहित

राष्ट्रीयता केलिए राष्ट्र के हितों में समानता की आवश्यकता है । समान हित केलिए आवश्यक है सबको अर्थ की प्राप्ति हो, अर्थाभाव न हो, रक्षा का नियम भी एक सा हो, किसी एक कार्य के स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए रक्षा का नियम नहीं बन सकते ।

भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का विकास

राष्ट्रीय भावना अनादिकाल से प्रवाहित एक विशेष धारा है । राष्ट्रीयता का स्वरूप समयानुसार एवं

परिस्थितिवश परिवर्तित होता रहता है । कभी धार्मिकता, कभी राजनीति, कभी सामाजिक सुरक्षा तो कभी आर्थिकता ही राष्ट्रीयता का प्राण हो जाती है । भारतीय राष्ट्रीयता का प्रभाव सदैव हमारे साहित्य कला एवम् दैनिक जीवन पर पड़ता आया है ।

भारत में राष्ट्रीयता का स्रोत वेदकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक निर्बाध गति से निरन्तर प्रवाहित होता आ रहा है । इसकी गति कभी मन्द तो कभी तीव्र दिखाई देती है ।[1] "

वैदिक साहित्य में आर्यों की राष्ट्रीयता की व्यापक कल्पना तथा देश के चतुर्दिक विकास की कामना जगह जगह पर दिखाई देती है । आर्यों ने अपनी व्यापक राष्ट्रीयता के कारण ही भारतीयों को एक सूत्र में बाँधा है । आर्यों की राष्ट्रीय भावना अत्यन्त पुष्ट तथा विकसित थी और उसमें सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब मानने पर बल दिया गया था । ऋग्वेद में मानव मात्र को मित्रवत मानकर सब के साथ सद्व्यवहार करने तथा सबको प्रगति का सुअवसर प्रदान कर अपनी उन्नति करने की भावना व्यक्त की गई है । उसमें समानता तथा एकता का भाव स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है । आर्यों की एकमात्र भावना थी निरन्तर आगे बढ़ने तथा उन्नति करने की ।

1· दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - डॉ·शिवकांत गोस्वामी, पृ·30

राष्ट्र को ही सर्वोपरि मानकर प्रधानता दी गई है और इस सम्बन्ध में यह मंत्र कहा है "राज्यानं वरं राष्ट्रं साधर्म पालयेत् सदा ।[1]"

इस प्रकार आर्यों ने मातृभूमि के प्रति स्वभावत: कृतज्ञता तथा मातृभावना प्रकट की है । यही भावना आगे चलकर राष्ट्रीय भावना में परिणत हुई है । राष्ट्रीय भावना से समन्वित देशभक्ति, मातृभक्ति आदि विषय के मंत्र हमारे प्राचीन साहित्य में स्पष्ट रूप से प्राप्य हैं, जो बाद में राष्ट्रीय भावना के रूप में विकसित हो गये । वैदिक काल में मातृभूमि एवं देशवासियों में माता तथा पुत्र के प्रेम के समान ही परस्पर प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया गया । मातृभूमि की रक्षा तथा उसकी उन्नति केलिए सतत प्रयत्नशील रहना हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य रहा है । वेदों में जगह जगह मातृभूमि की रक्षा, उसकी उन्नति तथा मंगलभावना की अभिव्यक्ति मुक्तकंठ से की गई है । सम्पूर्ण गुणों का विकास कर, शक्तिसम्पन्न होकर मातृभूमि की सेवा और रक्षा तथा शत्रुओं का नाश करने की कामना की गई है । मातृभूमि की सेवा करना जन-जन का पुनीत कर्त्तव्य माना गया है ।

राजा और प्रजा के सत्प्रयत्नों सद्भावनाओं और सत्कर्मों पर भी राष्ट्रीय भावना अवलम्बित थी । उनकेलिए

---

1. अग्निपुराण: 23912

यह भूमि, जन्मभूमि, मातृभूमि, पुण्यभूमि तथा स्वर्गभूमि सभी कुछ है । महाभारत में श्रीकृष्ण ने तत्कालीन देश में व्याप्त असद् प्रवृत्तियों को समूल नष्ट कर तथा सत्प्रवृत्तियों को स्थापित कर जनमानस में राष्ट्र-प्रेम की जो तरंग उत्पन्न की है, वह आज भी उसी गरिमा से प्रवाहमान है तथा हमारी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकता में एक सेतु का काम करती आ रही है । जैन, बौद्ध, मौर्य, गुप्तकालीन इत्यादि प्राकृत, पालि साहित्य में यद्यपि वीरता तथा शौर्य की भावना रही परन्तु राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति काव्य-साहित्य में संकीर्ण रूप में ही दिखाई देती है ।

भारत अपनी सभ्यता, संस्कृति और आदर्श की व्यापकता तथा विशालता लिए हुए अनेक संस्कृतियों एवं भाषाओं को अपने विशाल हृदय में समाहित कर अपनी सम्पूर्ण विभिन्नताओं और विविधताओं के होते हुए भी आदिकाल से एकत्व स्थापित करता आया है । भारतीय आत्मा के स्वर को ही मुखरित करने तथा अभिव्यक्ति प्रदान करने केलिए यहाँ अनेक भारतीय भाषाओं के कवियों ने सदा ही अपने देश की विशाल परम्पराओं का व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है तथा लोक-मंगल की भावना से काव्य-सृजन किया है ।

भारतीय राष्ट्रीयता एवं गांधीजी

भारतीय राष्ट्रवाद अपनी एक अलग विशेषता रखता है । प्रथमत: वह अहिंसात्मक है । श्री• गुलाबराय के अनुसार "हमारी राष्ट्रीयता रंग-भेद, जाति-भेद, धर्म और संप्रदाय पर

आश्रित नहीं है । वह सत्य, अहिंसा, और ममता एवं स्वतन्त्रता की एकध्येयता पर आश्रित है । "जियो और जीने दो" हमारे पंचशील का मूलसूत्र है । हमारी राष्ट्रीयता ने "सर्वभूतानि पश्यतु" का पाठ पढ़ाया है और वह विश्वमैत्री पर आधारित है । हमारी राष्ट्रीयता आक्रमणशील और संकुचित नहीं है । भारत केलिए राष्ट्रीयता हमारे अस्तित्व की नींव है । हमारी राष्ट्रीयता के आदर्श शान्ति, विश्वमैत्री, अन्तर्राष्ट्रीय एकता, विश्वबंधुत्व, ममता, सहयोग इत्यादि आत्मिक गुणों पर आधारित है ।

भारतवर्ष में जब राष्ट्रीय चेतना की लहर उठी तब वह पराधीन था । भारतेन्दु काल में कांग्रेस के रूप में राजनैतिक और आर्य समाज, ब्रह्मसमाज आदि संस्थाओं के रूप में सामाजिक आन्दोलनों ने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का कार्य शुरू किया । द्विवेदीकाल में इन आन्दोलनों को अधिकाधिक शक्ति मिली । सन् 1920 के पश्चात् गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय चेतना का महाज्वार सम्पूर्ण भारत में लहरा उठा । कवियों ने गांधीजी द्वारा प्रभावित अहिंसक-राष्ट्रीयता और सत्याग्रह को वाणी प्रदान की । हमारे स्वाधीनता संग्राम को जन आन्दोलन का रूप देने में सत्याग्रह और असहयोग के सिद्धान्तों का बहुत बड़ा हाथ था । सत्याग्रही केलिए कारागृह भी कृष्ण-मंदिर हो गये और बन्धन की बेड़ियां उसका शृंगार बन गई । गांधीजी के इस कथन ने कि "इस रावण राज्य में शृंगार छोड दो, जब तक देश परतन्त्र है तब तक ऐश-आराम को शोकाग्नि में

---

1. राष्ट्रीयता - श्री. गुलाबराय, पृ.15

भस्म कर दो ।" कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया और वे राजनीतिक-जागरण में स्वदेशी-भावना का महत्व प्रतिपादित करने लगे ।

गांधीजी द्वारा प्रवर्तित हलचल से प्रेरणा ग्रहण कर वीर-पूजा के गीत, सियारामशरण गुप्त के भावुकतापूर्ण आख्यानगीत और पथिक, स्वप्न जैसी आदर्शवादी रचनायें इस काल में प्रस्तुत हुई । ठाकुर गोपालशरण सिंह की रचनायें भी नया प्रभाव लेकर आई और सनेही जी तो प्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक कविता करने लगे । इस प्रकार राजनीति में गांधीजी के प्रवेश ने हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना को उसकी इच्छित ऊंचाइयों तक पहुँचाने में अकथनीय योग प्रदान किया ।

गांधीवाद का स्वरूप

गान्धी-विचार पद्धति का व्यापक नाम है गान्धीवाद । इसके अन्तर्गत वे सिद्धान्त आते हैं, जिनका गान्धीजी ने समर्थन तथा प्रयोग किया है । गान्धीवाद सत्य की साधना का विज्ञान है । उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ ईश्वर में उसके दृढ विश्वास से उद्भूत हुई हैं । ईश्वर सर्वद्रष्टा सर्व शक्तिमान और सर्वव्यापक है । जगत उसी के कारण और उसीको लेकर रहता है ।

---

1. महात्मा गांधी - कर्मवीर, 4 दिसम्बर, 1920

गान्धीजी के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष थे । वे राजनेता थे, समाज सुधारक थे, अर्थवेत्ता थे, शिक्षा-शास्त्री थे और धर्मोपदेशक भी थे । समाज शासन के संगठन तथा जीवन के अन्य पक्षों के बारे में उनके अपने विचार थे, जिनका प्रतिपादन उन्होंने अपनी दैवी साधना से गुजरते हुए किया । गान्धीवाद का आधार स्वानुभूति है । इस विचारधारा का प्रत्येक खंड आत्मशक्ति को लेकर चलता है । इसी कारण उसमें एक प्रकार की आध्यात्मिकता और विचार-स्वातन्त्र्य है । श्री॰पट्टाभिसीतारामैया के अनुसार "गांधीवाद वस्तुतः भारत की उस आचारपरक आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि तथा सांस्कृतिक परम्परा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण है, जो शताब्दियों से सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्मसंयम आदि नैतिक आचरणों को भौतिक जीवन मानों की अपेक्षा अधिक काम्य और वरेण्य मानती आई है ।"

यद्यपि गान्धीजी ने स्वयं गान्धीवाद की कोई निश्चित रूपरेखा तथा व्याख्या नहीं की है, फिर भी यह निर्विवाद है कि उनकी दृष्टि के पीछे कोई निश्चित विचारधारा अवश्य है । उनका अपना दृष्टिकोण तथा उनके विचारों का ठोस आधार निश्चित है । इस वाद अथवा विचारधारा का संक्षिप्त अर्थ व्यक्ति तथा समाज के हित का वह दर्शन एवं विज्ञान है जिसके पुरस्कर्ता तथा प्रयोगकर्ता गांधीजी है । यह उनके जीवन का क्रियात्मक विज्ञान है, जो प्रतिक्षण परीक्षण, परिष्करण, समन्वय और साधना से पुष्ट है । गांधी-दर्शन केवल राजनीति ही नहीं है । वह जीवन का स्वस्थ दृष्टिकोण है । इसका आधार तर्क नहीं विश्वास और संस्कार है ।

गान्धीजी के अनुसार इस विश्वास के दृढ़ बनाने केलिए ईश्वरीय प्रेरणा आवश्यक है । गान्धीजी ने किसी नवीन विचारधारा जीवन दर्शन या तत्व दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया ।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि मानव सभ्यता के इतिहास में संभवतः गान्धीजी ने ही पहली बार सत्य, अहिंसा, आदि नैतिक नियमों के आधार पर विविध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं का इतने व्यापक स्तर पर व्याख्यान, विश्लेषण तथा समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया था ।

महात्मा गांधीजी के जीवन-दर्शन केलिए साधारणतः "गान्धीवाद" शब्द का प्रयोग होता है, लेकिन अनेक गान्धीवादी विचारकों ने गान्धीजी को वाद द्वारा ग्रहण करने से इनकार कर दिया है । इनमें से प्रमुख है बाबू जैनेन्द्रकुमार । लेकिन गांधीजी की विचारधारा में भी उतना ही वाद, विवाद और प्रतिवाद है जितना किसी अन्य विचारधारा में । गांधी, इर्विन समझौते के बाद एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए स्वयं महात्मा गांधी ने घोषणा की थी कि "गांधी मर सकता है पर गांधीवाद सदा जीवित रहेगा ।[1]" इसमें स्पष्ट है कि स्वयं गांधीजी भी अपनी विचारधारा केलिए गांधीवाद शब्द का प्रयोग पसन्द करते थे । लेकिन बाद में उन्होंने इसका विरोध भी कर लिया था । फिर भी गांधीजी के विचारों केलिए "गांधीवाद" नाम चलता ही रहता है ।

1· गांधी और गांधीवाद - डॉ·पट्टाभिसीतारामैया, पृ·26

गांधीवाद के प्रमुख पक्ष

गांधीजी ने अपने निरंतर कर्मशील जीवन के द्वारा जो भी किया, वह न केवल भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर बल्कि भारतीयों के मन पर अमिट रूप से अंकित है । उन्होंने अज्ञानावस्था में पड़े हुए इस देश में ज्ञान के कोटिशः दीप प्रज्वलित किये जिनके आलोक में देश ने नई दिशाएँ देखी । यद्यपि वे अब हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनकी शाश्वत विचार-धारा निरन्तर हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी । गांधीवाद के तत्व हमें हार को जीत में बदलने केलिए सहायता देता है । प्रमुख रूप से गांधीवाद के तीन पक्ष हैं - सैद्धान्तिक व्यावहारिक और सुधारात्मक । सैद्धान्तिक पक्ष के अन्तर्गत गांधीवाद का मूलमन्त्र सत्य की महिमा, अहिंसा, जगन्नियन्ता में आस्था, कर्म सिद्धान्त का माहात्म्य, युद्धविरोध और मानवता की भावना आते हैं । गान्धीवाद के व्यावहारिक पक्ष के रूप में हमारे सामने ब्रह्मचर्य की महत्ता, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, अभय, सत्याग्रह, सेवा भावना राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर आदि आते है । उसके सुधारात्मक पक्ष में प्रमुख है नारी उद्धार तथा नारी का कर्मक्षेत्र अछूतोद्धार ग्रामोद्धार, बाल विवाह विरोध, विधवा-विवाह समर्थन, सती-प्रथा की निन्दा, अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन आदि ।

1. सैद्धान्तिक पक्ष

(1) सत्य की महिमा

गान्धी विचारधारा का मूल मन्त्र सत्य है । गांधीजी का सम्पूर्ण जीवन "सत्य के प्रयोग" से पूर्ण है । सत्य

उनकेलिए कल्पना मात्र नहीं, बल्कि जीवित आदर्श है । उन्होंने अपने जीवन के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि "सत्य", सिद्धान्त नहीं, आचरण का विषय भी हो सकता है । वे सत्य को ही परमेश्वर मानते हैं । उनकी दृष्टि में सत्य के अभाव में परमेश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है । इसे ही वे आत्मसाक्षात्कार अथवा मोक्ष मानते हैं ।

गान्धीजी का सत्य किसी विशिष्ट धर्म या सम्प्रदाय का पर्याय नहीं । वह इतना व्यापक है कि उसमें विश्व के सभी धर्मों का समाहार हो जाता है । किसी के अनुसार सत्य गांधीजी के जीवन और दर्शन का ध्रुव-तारा[1] कहते हैं । गांधीजी भारतीय तत्व शास्त्र के "सत्यमेव जयते" में विश्वास रखते थे । उन्होंने सर्वव्यापक रूप में सत्य का साक्षात्कार किया है । उनके अनुसार सत्य की आराधना ही भक्ति है ।

वास्तव में गांधी-विचारधारा सत्य की साधना है । सत्य ही उसका लक्ष्य है, तथा सत्य की पूजा एवं आराधना केलिए वह संसार के समस्त दुःखों का आलिंगन करने को तत्पर है । सत्य में प्रेम तथा मृदुता मिलती है । वह सदा स्वावलम्बी होता है । यह सत्य अक्षय है, अनश्वर है और अमर भी । उसकी सेवा जितनी गहराई से की जाती है उतने ही फल के रत्न हमें मिलते हैं । गांधीजी ने स्वयं कहा है कि "सत्य एक विशाल वृक्ष है । ज्यों ज्यों उसकी सेवा की जाती है

---

1. आत्मकथा, पृ॰189

त्यों त्यों उसमें से अनेक फल पैदा होते दिखाई पड़ते हैं। उसका अंत ही नहीं होता, हम जैसे-जैसे उसकी गहराई में उतरते हैं, वैसे-वैसे उसमें से अधिक रत्न मिलते जाते हैं[1]।"

सत्य के पालन का अर्थ शरीर और आत्मा की रक्षा बताया है। कथनी और करनी में समता का पालन आवश्यक है। गांधीजी के अनुसार जो जैसा कहता है उसी प्रकार उसे करना चाहिए। उनके मन में शब्दार्थ और भावार्थ का मतलब यही है।

सत्य से भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। उन्होंने हर कहीं बताया है कि सत्य ही ईश्वर है। सत्य के बिना ईश्वर की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। सत्य का पालन जो करता है उसमें अहंकार नहीं होना चाहिए। उसे अत्यन्त विनम्र एवं क्षमाशील रहना चाहिए। सत्य का पालन विश्व प्रेम से ही संभव हो सकता है। जब ईश्वर से साक्षात्कार होता है तभी सत्य का पालन भी पूर्ण होता है। सत्य के पालन को हमेशा अन्त:करण की प्रेरणा प्राप्त होती है। वह उसी के अनुसार प्रयत्न करता है। गान्धीजी अपने अन्त:करण के आदेश के अनुसार ही सब कुछ करते थे। उनके अनुसार "निर्मल अन्त:करण को जिस समय जो प्रतीत हो, वह सत्य है। उस पर दृढ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है[2]।"

1· आत्मकथा, पृ·189

2· गान्धी विचार-रत्न, पृ·56

सत्यनिष्ठ व्यक्ति कदापि पतित नहीं होता । जहाँ सत्य रहता है, वहाँ सफलता प्राप्त होती है । उसे संकट की बेला में सन्मार्ग का बोध होता है । सत्य हमारेलिए आवश्यक है । परन्तु वह सदा प्रत्यक्ष रहता है । सत्य के पालन से ही परमात्मा को पा सकते हैं । सत्यनिष्ठा से जो काम किया जाता है, उसका फल अवश्य मिलता है । सत्यनिष्ठा से जो काम किया जाता है, वह सत्यमय ही होता है । अत: उसका फल तुरंत मिलता है । सच्चे काम या सत्कर्म से ही जगत से मुक्ति प्राप्त हो सकती है । इसलिए सत्कर्म की महत्ता और श्रेष्ठता पर अधिक बल दिया जाता है ।

सबका आधार सत्य ही है । यदि सत्य मिट जाय तो शेष सबका नाश हो जाएगा । लेकिन शेष सब के मिट जाने पर भी सत्य का नाश नहीं होगा । क्योंकि वह अनन्त, अनादि और अखण्ड है । जीवन के अन्त तक सत्य का पालन करना चाहिए । गाँधीजी ने अपने जीवन के अन्त तक सत्य का सम्यक आचरण किया था । उन्होंने सबको आजीवन सत्य का पालन करने का उपदेश दिया था । सत्य हमें चिरकाल तक आनन्द देता है । वह हमारा जीवन और ज्ञान है । ईश्वर सच्चिदानन्द मूर्ति है । इसीलिए ही गान्धीजी ने उन्हें सत्य के नाम से पुकारा है ।

प्रत्येक व्यक्ति को सत्य को अपने अपने मन के भीतर ही ढूँढना चाहिए । गान्धीजी ने बताया है कि सबसे पहले सत्य की खोज कर लेनी चाहिए और बाद में शिव और

सुन्दर को उससे मिलाना चाहिए[1]। सत्य की सृष्टि ही सबसे पहले हुई है। अत: वही सबका मूल आधार है। सत्य से ही शिव और सुन्दर का आविर्भाव हुआ है। इसलिए सत्य की खोज मे ही शिव और सुन्दर प्राप्त होते हैं। पवित्र हृदय में सत्य सचमुच रहता है। सत्य के निवास केलिए शुद्धि और पवित्रता आवश्यक है। सत्य मात्र ही यथार्थ है।

2. अहिंसा

गांधी-चिन्तन का आधार स्तम्भ है अहिंसा। गांधीजी ने हमारे सामने अहिंसा का एक नया अर्थ, एक नया रूप रखा। अहिंसा एक भावात्मक प्रक्रिया और शक्ति है जो हमें प्राणिमात्र से प्रेम करने केलिए प्रेरित करती है - ऐसा प्रेम जो किसी भी प्रकार के राग, मोह अथवा स्वार्थ से रहित हो। गांधी-दर्शन में अहिंसा और प्रेम वस्तुत: एक ही अर्थ के द्योतक शब्द है। उसके अनुसार "अनेक धर्मों में जो ईश्वर प्रेमरूप है। यह कहा गया है, वह प्रेम और यह अहिंसा भिन्न नहीं है। प्रेम का शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। पर जिस प्रेम में राग या मोह की गंध आती हो, वह अहिंसा नहीं हो सकता[2]।" गांधीजी की अहिंसा निवृत्तिमूलक या निषेधात्मक नहीं है।

---

1. "Truth he said is the first thing to be sought for and beauty and goodness will then be added into you." Gandhiji s Views of life,p.194

2. गांधी विचार दोहन, पृ.16

गांधीजी की दृष्टि में व्यक्तिगत रूप से सत्य और अहिंसा की साधना के द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर उत्कर्ष प्राप्त कर सकता है और सामूहिक रूप से इन गुणों की साधना द्वारा मनुष्यसमाज में रामराज्य की स्थापना हो सकती है । गांधीजी के जीवन की प्रयोगशाला में शोधित सत्य, अहिंसा, प्रेम और सेवा ने निखरा हुआ रूप प्राप्त किया था । महाभारत की घटनाओं को गान्धीजी प्रतीक रूप में मानते हैं और वहाँ भी अहिंसा का संदेश सुनते हैं -

"अहिंसा परमो धर्म: अहिंसा परम: तप: ।
अहिंसा परमं सत्यं ततो धर्म प्रवर्तते ।"

अहिंसा एक प्रवृत्ति है जो उदारता, प्रेम तथा सर्वोदय की भावना से पोषित होती है । गांधीजी के शब्दों में, "अहिंसा सिर्फ एक व्यक्तिगत गुण नहीं है, बल्कि एक सामाजिक गुण भी है, जिसे दूसरे गुणों की तरह विकसित करना चाहिए ।"[1] गांधीजी के इसी अहिंसा के सिद्धान्त को लेकर उन्होंने नये समाज और नये विश्व की रचना का प्रयास किया था ।

अहिंसा की महत्ता प्रकट करते हुए गांधीजी ने एक स्थान पर कहा है "मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है

---

1. युद्ध और अहिंसा - महात्मा गांधी, पृ. 14।

और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्त्तव्य नहीं है इस कर्त्तव्य को करते करते ही आदमी सत्य की पूजा कर सकता है । सत्य की पूजा का कोई दूसरा साधन नहीं है, यदि मेरा कोई सिद्धान्त कहा जाय तो वह केवल इतना ही है[1] । अहिंसा एक नकारात्मक अथवा निवेधात्मक, केवल सहन करने की व्यवस्था का जीवन दर्शन नहीं है विधेयात्मक रूप में इसकी शक्ति और भी विलक्षण है ।

गान्धीजी की अहिंसा से तात्पर्य केवल हिंसा न करना ही नहीं है । उन्होंने उसमें मानव जीवन के कल्याण केलिए उपर्युक्त विभिन्न पहलुओं को समाहित किया है । इसे क्रूरता, अधिकार-लिप्सा, अनीति आदि के विरुद्ध युद्ध करने का शस्त्र माना गया है । यह युद्ध तो शारीरिक युद्ध न होकर आत्म-युद्ध है अर्थात् आत्म बल से लड़नेवाला युद्ध । उस युद्ध की लड़ाई केलिए अहिंसा, भय, क्रोध, पाप, लोभ आदि का तिरस्कार करना चाहिए[2] ।"

अहिंसा की अभिव्यक्ति कर्म से अधिक होती है, शब्द से नहीं । केवल शब्द के द्वारा उसका प्रतिपादन करने की अपेक्षा कर्म के द्वारा उसके व्यावहारिक रूप को जनता के सामने रखने से वह तुरन्त उसे जान लेती है । अहिंसा में वैर, त्याग और निष्काम कर्म की भावना प्रधान है । अहिंसा की सफलता

1• गांधी ग्रन्थमाला का 10 वाँ खण्ड
(3 मार्च 1937 को गांधी सेवा संघ सम्मेलन के अवसर पर दिये गये भाषण से)

2• "For Gandhi non-violence involves an inner war, which requires us to defeat fear, greed, anger and guilt".
Mahatma Gandhi - 100 years, p.9

केलिए शत्रुता और कामना का तिरस्कार करना चाहिए । अहिंसा में वैर के स्थान पर प्रेम को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि देश में साधनहीन और साधनसंपन्न के बीच में संघर्ष को दूर करने केलिए यह आवश्यक है । अहिंसा के द्वारा इस संघर्ष को हटाया जा सकता है ।

3. <u>जगन्नियन्ता में आस्था</u>

गांधीजी का ईश्वर में अटूट विश्वास था । उनके अनुसार ईश्वर से प्रार्थना करना याचना नहीं है, वह तो आत्मा की आकांक्षा का दूसरा नाम है । इसे आत्मशुद्धि का आह्वान कह सकते हैं । उनका सम्पूर्ण जीवन प्रार्थनामय था । उनके अनुसार ईश्वर प्रकाश है, अन्धकार नहीं । वह प्रेम है, घृणा नहीं । हम सब ईश्वर की चरणरज है । सभी कर्मों को गांधीजी ईश्वर में ही अर्पित करते थे । उसके गुण या दोष की जिम्मेदारी भी ईश्वर पर ही अर्पित थी ।

गांधीजी ने अपने जीवन को भगवान के विश्वास पर आधारित बनाये रखा है । वे ईश्वर के बडे विश्वासी एवं अनन्य उपासक थे । इसके बारे में कहा है कि "His profound belief in God was nor intuitive and emotional than intellectual and meta-physical."[1]

उनकेलिए भगवान ही सबकुछ थे । गांधीजी भगवान श्रीरामचन्द्रजी के उपासक और आराधक थे । रामनाम की महिमा वे मानते थे ।

---

1. Mahatma Gandhi - 100years, p.357

वे पल-पल में उसकी रट करते थे। राम नाम का यह पावन मन्त्र उनके लिए दवा का काम करता था। जब उन्हें दुःख होता था, कष्ट झेलना पड़ता था, दूसरों की पीडा झेलनी पड़ती थी, तब वे रामनाम जपते थे। एक विदेशी सज्जन केलेनबैक के इस प्रकार कहने पर कि गांधीजी की रक्षा करने केलिए उसने अपने साथ पिस्तौल रखा है, गांधीजी कहते हैं - "प्यारे भाई, आप चिन्ता न करें गांधीजी के प्राण बचाने की। गांधी तो राम की गोद में है। राम ही उसका रक्षक है। जिसे राम रखे उसे कौन मारे ? जिसे भगवान पर भरोसा होता है, उसे भला किसका डर ? जब तक उसकी मर्जी है, हम जीवित रहेंगे[1]।" इस कथन से उनका भगवान पर जो विश्वास है और उनके प्रति जो भक्ति और श्रद्धा है, वह स्पष्ट होती है। बचपन से उन्होंने रामनाम का जप किया था और अपनी मृत्यु के वक्त भी अपने मुँह से हे राम ! शब्द निकला था। उन्होंने बताया है "आज रामनाम मेरेलिए अमोघ शक्ति है[2]।" उनके अनुसार राम निर्बल के बल हैं।

गांधीजी ने "तन सब दुनिया का और मन सब ईश्वर का बनाया। उनका सिद्धान्त था कि अपने शारीरिक बल से देश तथा जनता की सेवा करनी चाहिए। और अपने मानसिक बल से भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए। यही सत्य है। प्रार्थना गांधीजी के जीवन का एक प्रमुख अंग थी।

---

1. गांधी - जीवन सत्र - कल्याण, सितंबर 1970, पृ. 1152
2. आत्मकथा, पृ. 26

सबेरे और शाम को दोनों वक्त उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना की थी । यह उनके जीवन का सूत्र थी । उनका समस्त जीवन प्रार्थनामय था । प्रार्थना ही उनके जीवन का सबल और पाथेय थी । उन्होंने कहा है "प्रार्थना ने मेरे जीवन की रक्षा की है । उसके बिना मैं कभी का पागल हो जाता । .... परन्तु मुझे छुटकारा मिला तो प्रार्थना के कारण ही मिला ।[1]" अतः प्रार्थना को उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है । गांधीजी जहाँ और जिस देश में रहते थे, कभी वे प्रार्थना नहीं छोड सके । जेल-जीवन बिताते वक्त भी वे प्रार्थना अवश्य करते थे । जब बीमार रहते थे, तब भी वे लेटे हुए आँखों को बन्द करके प्रार्थना किया करते थे । उन्होंने कहा है "अपने जीवन में जो कुछ कर पाया हूँ, उसे प्रार्थना का ही चमत्कार समझना चाहिए ।[2]" उनकी यह प्रार्थना जीवन भर जारी रही है ।

4. <u>कर्मसिद्धान्त का माहात्म्य</u>

गीता के उपासक गांधीजी कर्म-सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने देशवासियों को कर्म करने का आदेश दिया । निःस्वार्थ होकर कर्म करना और किसी भी फल की इच्छा न रखना गान्धी-नीति का ज्योतिस्तम्भ है । गांधीजी के धर्म में कर्म सबसे ऊपर है । लोक सेवा और लोक कल्याण को धर्म माननेवाला व्यक्ति निरन्तर कर्मरत रहता है । उसे कर्म में ही

---

1. गांधी - जीवन सूत्र - कल्याण, जून 1970, पृ.960
2. गांधीजी से क्या सीखें, पृ.51

प्रभु के दर्शन होते हैं । कर्मवीरों की आत्मा भय रहित होती है । कर्मवीर मृत्यु की परवाह किए बिना कर्म-भूमि में निरन्तर आगे बढ़ता रहता है । गांधीजी के अनुसार कर्त्तव्यपालन करते रहने में ही मुक्ति है ।[1]

गांधीजी बडे ही कर्मठ व्यक्ति है । उनकी इस क्रियाशीलता पर भगवत्गीता का गूढ़ प्रभाव है । उनका इस पृथ्वी पर जीना ही एक प्रकार से क्रियाशील रहना था । अपनी कार्य-सिद्धि-भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति केलिए वे जिन्दा रहे और जब कार्य सिद्ध हुआ, तब वे इस संसार से चले । उनकेलिए इतना ही काफी था । गांधीजी ने कई बार यही कहा है "मेरे राम को इस शरीर से और कुछ काम लेना होगा तो वह उसे रखेगा, नहीं तो उठा लेगा ।" गांधीजी की भाग्य लेखा में विश्राम का नाम तक नहीं रहा था । वे कैसे थे, वैसा ही उनका कर्म भी था । जैनेन्द्रजी ने जो कहा है, वह गांधीजी पर लागू होता है । "राजकीय महापुरुषों का कर्म विराट किंतु व्यक्तित्व संकीर्ण होता है । मानो उस कर्म की बृहत्ता के पीछे मन प्राण की संकुचितता छिपी रहती है[2] ।" गांधीजी के कर्म ने कालांतर में बृहत फल उत्पन्न किया । वे अपना काम आत्मिक बल की प्रेरणा से करते थे । देश के सारे कार्य-क्षेत्रों में गतिशील रहे । अत: उन्हें इस दृष्टि से अनेक अनुयायी मिले । उनकी प्रवृत्तियाँ अनेक थी, पर प्रेरणा एक ।

---

1. गांधी - जीवन सूत्र - कल्याण, सितंबर 1970, पृ.1153
2. अकाल पुरुष गांधी, पृ.47

उन्होंने राजा को सेवक और प्रजा को मालिक माना ।
अपनी वाणी और कर्म से वह बराबर वातावरण में यह भावना
भरते रहते थे कि राजा तो सेवक है और प्रजा मालिक है[1] ।

गांधीजी बड़े ही व्यावहारिक श्रमिक और काम काजी व्यक्ति थे । उन्होंने मानव से संबंध स्थापित करने केलिए कर्म चाहा है । कर्म के द्वारा ही वह संभव है । यही उनका मत था । उनका कथन था "श्रम के बिना प्रेम विलास हो जाता है, यज्ञ नहीं रहता । जो प्रेम-भोगी है वह श्रमहीन है और स्वार्थमय है । श्रम से चेतना स्वाधीन होती है और व्यक्ति निर्भीक बनता है[2] ।" समस्त संसार के आगे गांधीजी कर्मवीर गांधी रहे हैं ।

5. युद्ध-विरोध

गांधीजी पहले न्याय के पक्ष में युद्ध के समर्थक थे । किन्तु बाद में अहिंसक होने पर वे युद्ध का विरोध करने लगे । गांधीजी युद्ध नहीं चाहते थे - ऐसा कहना ठीक नहीं । उनका कथन था "अपने अपने धार्मिक विचारों और संप्रदायों की सुरक्षा केलिए जो युद्ध लड़ा जाता है, वह हिंसात्मक नहीं, अहिंसात्मक है । कारण यह है कि यह धर्म-युद्ध है । गान्धीजी ने बताया है कि युद्ध तो आवश्यक है कभी कभी । लेकिन वह धर्म-युद्ध होना चाहिए । वह युद्ध जीवन का मृत्यु पर, प्रकाश का

---

1. अकाल पुरुष गांधी, पृ.56
2. वही, पृ.187

अंधकार पर, धर्म का अधर्म पर विजय प्राप्त करने का होना चाहिए । उनके ही शब्दों में "युद्ध तो अनिवार्य है, यह किन्तु वह धर्म-युद्ध हो । एक क्षण भी उस युद्ध में आँख झपकने का अवकाश नहीं है । किन्तु पल भर केलिए भी वह युद्ध वासनामूलक नहीं हो सकता । वह जीवन और मौत का प्रकाश और अंधकार और धर्म-अधर्म का युद्ध है[1] ।"

अहिंसा में किसी को कष्ट पहुँचाने की बात नहीं है । यदि किसी के मन में किसी के प्रति शत्रुता का भाव होता है तो वह उसे जबरदस्त कष्ट पहुँचाता है । उसे सताता है और उसके दुःख में स्वयं हँस लेता है । गांधीजी बताते थे कि शत्रु और मित्र दोनों भगवान की ही संतान है । अहिंसा में आत्मा की शक्ति रहती है । इसी शक्ति से शत्रु-मित्र में एकता लाना हमारा कर्त्तव्य है । शत्रु को कष्ट पहुँचाना गांधीजी के अनुसार ईश्वर तथा सारी सृष्टियों का अपमान करना है । उनके ही शब्दों में "दोष पर हमें आक्रमण करना चाहिए, उससे टक्कर लेनी चाहिए । पर बेचारे दोषी से वैर करना वह आत्म वैर सरीखा है । इसलिए किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाना मानों ईश्वर का अपमान और सारी सृष्टि को कष्ट पहुँचाने जैसी बात है[2] ।"

गान्धीजी ने अहिंसा को जीवन-निरपवादी तत्व माना है । अहिंसा में अपवाद की कोई बात नहीं है । अहिंसा किसी का

---

1. अकाल पुरुष गांधी - जैनेन्द्र कुमार, पृ.65
2. गांधीजी से क्या सीखें, पृ.12

अपवाद नहीं करती । वह सब की भलाई ही चाहती है । अत: वह जीवन का असली तत्व है । पापियों से प्रेम करना ही अहिंसा है । गांधीयुग के पहले पापियों को हमेशा ठुकरा देते थे । लेकिन गांधीजी ने इस महान संदेश "पाप से घृणा करो पापी से नहीं" को जनता के सामने रखा । उनका विश्वास था कि अहिंसा के द्वारा पापियों का हृदय बदल सकते हैं और उनसे प्रेम कर सकते हैं । उनका कथन है कि आदमी अपने आध्यात्मिक और धार्मिक विचारों से अज्ञानी रहने के कारण ही वह पाप करता है । उनको इन विचारों का ज्ञान प्रदान करना ज्ञानी लोगों का धर्म है ।

गांधीजी ने पुन: बताया है कि अहिंसा माने पाप पर पुण्य की जीत है । वास्तविक अहिंसा को हिंसा से मुक्ति मानी जा सकती है । अर्थात् शत्रुता, क्रोध, घृणा आदि से मुक्ति और सब के प्रति अबाध एवं जनांत प्रेम । किसी व्यक्ति की हिंसा पर पूर्ण विजय को अहिंसा कहा जा सकता है । कारण यह है कि यह हिंसा का मूलत: नाश कर सका है और अपने आप मुक्ति पा सका है । उसी प्रकार पाप के सर्वनाश को पुण्य माना जाता है और यही पुण्य अहिंसा की भलाई है । वैसा ही रजोगुणों से दूर रहना या उन्हें अपने मन में पैदा न करना अहिंसा का लक्षण है । गान्धीजी जन-सेवा को ही ईश्वर सेवा माननेवाले थे। अत: उसे कष्ट देना उनकेलिए असह्य था ।

अहिंसा में मारने की अपेक्षा मरने की भावना निहित है । अहिंसा हमेशा स्वयं मरने अथवा आत्मबलिदान करने का पाठ पढ़ाती है । गान्धीजी ने भी स्वयं मरने पर अधिक प्रमुखता दी है । दूसरों को मारना उनकेलिए वेदना-जनक है । अत: उन्होंने मृत्यु को बडे सन्तोष के साथ स्वीकार किया है । अहिंसक व्यक्ति मृत्यु से नहीं डरता । वह उसे ससन्तोष स्वागत करता है ।

6. मानवता की भावना

गांधीजी मानवतावाद के समर्थक एवं प्रचारक थे । उन्होंने ऐसे मानवतावाद की प्रतिष्ठा की है जिसमें अपने ही सिद्धांतों और विचारों को निरूपित किया गया है । यही बाद में गांधीवादी मानवतावाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ है । गांधीजी सच्चे मानव थे । उनकी मानवता में एकत्व की भावना थी[1]।" वे मानवता के पुजारी माने जाते थे । मानव के प्रति उनमें श्रद्धा, भक्ति, प्रेम सब कुछ था[2]।

---

1. "His humanism was rooted in the realisation and spiritual experience of his whole being that all life was one and that life was but the manifestation and reflection of the reality itself."
   Mahatma Gandhi - 100 years, p.79

2. "Bapu was intensively human, essentially a lover of mankind and not of mere ideas."

   Ibid, p.96

संसार के प्रति गांधीजी का दृष्टिकोण मूलत: मानवतावादी रहा है । वे मनुष्य अथवा मानव की सुख-सुविधाओं के अभिलाषी थे । मानव का सुख और संतोष ही गांधीजी का सुख और संतोष रहा है । उन्होंने गीता के सत्य और अहिंसा आदि तत्वों को मानवतावाद के रूप में जन-जीवन में प्रस्तुत किया और उन्हें सारी जनता ने निस्संदेह अपना लिया । वे इतने पूज्य इसलिए बन गये कि उनका यह सुधार संबंधी मानवतावाद सर्वग्राह्य बन गया । श्री· सि·वी· रामन ने कहा है "इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधीजी के उत्सर्ग पर संसार के हर कोने में जो स्वेच्छित श्रद्धांजलियाँ उन्हें अर्पित की गई हैं, वे वास्तव में महात्मा गांधी के अपने मूलभूत मानवतावाद की स्वीकारोक्ति हैं, जिसने देश, विचार और जाति की सीमाओं को लांघ दिया था ।" [1] गांधीजी में प्रेम, करुणा, सहानुभूति परसेवा आदि अनेकों मानवीय गुणों का दर्शन है । गांधीजी के इसी मानवतावाद ने भारत को स्वाधीनता प्रदान कराई । मानवतावादी दृष्टि से उनमें एक विशेषता द्रष्टव्य थी । जब मानव की बात आती थी, तब वे अपनी कोई परवाह किये बिना उसकी सहायता केलिए दौड पडते थे । आहतों शरणों जैसी निस्सहाय जनता की सेवा वे बिना किसी संकोच के करते थे । यह उनकेलिए बडे ही संतोष की बात थी । आप चाहे जितने थके होते थे, फिर भी जनता की मदद की चिंता में थकावट का अनुभव नहीं करते थे । यह कहना अनुचित न होगा कि गांधीजी और मानव दोनों हिलमिल कर रहते थे और इस प्रकार अपनी और जनता के बीच में अटूट सम्बन्ध बनाये रखते थे ।

1· गांधी - व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव, पृ·106

2. व्यावहारिक पक्ष

गांधीजी ने अपने सत्य, अहिंसा आदि सिद्धांतों के निर्बाध अनुसरण केलिए व्यक्ति के जीवन में संयम एवं कुछ तत्वों के निरंतर पालन की आवश्यकता पर बल दिया है। इनमें ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, अभय आदि का विधान रखा गया है। इन्हीं का पालन गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत आता है।

1. ब्रह्मचर्यव्रत की महत्ता

ब्रह्मचर्यव्रत के पालन पर गांधीजी ने बहुत बल दिया है। उनके अनुसार जिस प्रकार अहिंसा के बिना सत्य की सिद्धि संभव नहीं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्यव्रत के बिना सत्य और अहिंसा दोनों की सिद्धि असंभव है। गांधी विचारधारा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। श्री. रामनाथ सुमन के अनुसार "ब्रह्मचर्य का आत्यन्तिक अर्थ मन को ब्रह्म में नियोजित करने की चेष्टा है, इसकेलिए मन, वचन और शरीर में पवित्र रहना और अपनी शक्तियों को लक्ष्य (सत्य साधना या ब्रह्म साधना) में केन्द्रित कर देना है।"[1] गांधीजी उसे मन, वचन और कर्म से इन्द्रियों का दमन मानते हैं।

---

1. गांधीवाद की रूपरेखा - रामनाथ सुमन, पृ. 189

संयत वैवाहिक जीवन गांधीजी के अनुसार ब्रह्मचर्य का एक अंग है । गांधीजी ने ब्रह्मचर्य का अर्थ सन्यासी का जीवन नहीं बताया है । वे वैवाहिक जीवन की आवश्यकता और सार्थकता को महत्व देते हैं । उनकी दृष्टि में जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य के पालन का प्रयत्न करते हैं, उनकेलिए किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती ।

देश की सेवा केलिए गांधीजी को ब्रह्मचर्य स्वीकार करना था । वे उसका पालन निष्ठा से करते थे । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्मचर्य पालन के बिना पूरे मन से सेवा कार्य संभव नहीं है - आत्मोपलब्धि तो बहुत दूर की बात है । इसके अनुसार उन्होंने सन् 1908 में ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया । ब्रह्मचर्य के व्रती होकर भी गांधीजी नारी से दूर रहना नहीं चाहते थे । उनके इस व्रत की महिमा यह न मानी जाती है कि घर की नारियाँ अपने पति-धर्म को भूल कर बलि-धर्म के अनुयायी बनें। उनके ब्रह्मचर्य का व्रत एक अमोघ व्रत था । उनके अनुसार "ब्रह्मचर्य के संपूर्ण पालन का अर्थ है, ब्रह्म-दर्शन ।"[1] ईश्वर साक्षात्कार केलिए भगवान की उपासना की चर्या, वही ब्रह्मचर्य था । इसके द्वारा ब्रह्म अथवा परमात्मा का दर्शन - यही उनका लक्ष्य था ।

ब्रह्मचर्य माने मनसा, वाचा, कर्मणा इन्द्रियों को संयमित रखना है ।

---

1. आत्मकथा, पृ. 179

"Brahmacharya consists in the fullest control over all the senses in thought word and deed. Thus Brahma charya means self - control in all directions."[1]

इन्द्रियों का दमन ब्रह्मचर्य केलिए आवश्यक है । ब्रह्मचर्य के वास्तविक और शुद्ध पालन केलिए सुखदायक अनेक वस्तुओं और कर्मों को त्यागना पड़ता है । ब्रह्मचारी हमेशा ईश्वर की चिंता में अपना दिन बिताता है और विरागी होकर जीवन यापन करता है । वह अपने मन में किसी की कोई बुराई नहीं चाहता वाणी से किसी को अनिष्ट नहीं सुनाता और हाथों से किसी का द्रोह भी नहीं करता ।

सत्याग्रही केलिए ब्रह्मचर्य का व्रत सत्य-व्रत के समान अनिवार्य है । ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का व्रत लेना ही चाहिए । सत्याग्रही का ईश्वर-साक्षात्कार होता है । अत: उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए । सत्य का आग्रह अर्थात् परमेश्वर का दर्शन करने की इच्छा जिसमें है, वही सत्याग्रही है । जिसमें ब्रह्मचर्य का पालन करने की योग्यता रहती है, वही सत्याग्रह कर सकता है । जो ब्रह्मचर्य का सच्चा व्यवहार करता है, वही सत्याग्रह के द्वारा ईश्वर को पा सकता है ।

व्युत्पत्ति के अनुसार ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है कि ब्रह्म को पहचानने का व्यवहार ।"[2]

---

1. The political philosophy of Mahatma Ghandhi,p.76

2. "Etymologically Brahmacharya means the dispute which leads to the realisation of the Brahma. So Gandhiji defines Brahmacharya as that correct way which leads to Brahma"
The Plitical Philosophy of Mahatma Gandhi,p.76

अतः गांधीजी ने भी उसका अर्थ यही बताया है । उनके अनुसार ब्रह्मचर्य केलिए उपवास भी आवश्यक है । उसकेलिए त्याग और तपस्या ज़रूरी है । सुख भोग में लीन व्यक्ति ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं ले सकता । उसका कारण यह है कि सांसारिक सुख में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता । इसकेलिए वैराग्यपूर्ण जीवन ही उचित है ।

गांधीजी ने जीने केलिए ब्रह्मचर्य को इतना आवश्यक माना था कि उसके बिना उन्हें जीवन नीरस तथा पाशविक लगता था । ब्रह्मचर्य का पालन करते करते गांधीजी ने बताया है कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेने के पहले उन्होंने आनंद का जैसा भोग किया था, उससे बहुत अधिक आनंद का रस ब्रह्मचर्य-व्रत लेने के बाद लूटा था । उनके ही शब्दों में "संयम पालने की वृत्ति तो मुझ में सन् 1901 से ही प्रबल थी, और मैं संयम पाल भी रहा था, पर जिस स्वतन्त्रता और आनंद का उपभोग मैं अब करने लगा, सन् 1906 के पहले उसके वैसे उपभोग का कोई स्मरण मुझे नहीं है [1] ।" अगर ब्रह्मचर्यव्रत न होता तो समस्त लोग हिंसक बन जाते । ब्रह्मचर्य के अभाव में पाशविक कृत्यों की अधिकता होती है । ब्रह्मचर्य में उनको रोकने की शक्ति है । गांधीजी तो संसार में व्याप्त हिंसा और पाशविकता को दूर करने के पक्ष में थे । अतः उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया ।

---

1. आत्मकथा, पृ. 179

अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है परद्रव्य की इच्छा न करना और उसका अपहरण न करना । परजनों की किसी भी चीज़ की चोरी न करना अस्तेय है । गांधीजी ने अपने एकादश व्रत के अन्तर्गत अस्तेय का उल्लेख भी किया है । उन्होंने अस्तेय का व्यवहार भारत की राजनीति में इस उद्देश्य से किया कि देश में प्राप्त होनेवाली चीज़ों का ठीक उपयोग हो अर्थात् उनकी किसी प्रकार चोरी या अपहरण न हो, इस प्रकार चीज़ों की अनावश्यक बरबादी भी न हो । चोरी की सभी प्रवृत्तियाँ जो किसी प्रकार की भी हो अस्तेय हैं ।

जिस वस्तु की आवश्यकता हमें नहीं है, उसकी इच्छा न करना ही अस्तेय है[1] । इसके अलावा आवश्यकता न होने पर भी उसे उस व्यक्ति की आज्ञा से लेना भी अस्तेय है । जिसके पास वह चीज रहती है, जिसकी हमें ज़रूरत नहीं है, उसे न माँगना ही अच्छा है । यही अस्तेय का गुण है । गांधीजी ने इसी पर बल दिया है । अनावश्यक चीज़ के लेने से दूसरों को बड़ी कठिनाई होगी जिनकेलिए वह आवश्यक होती है । वह व्यक्ति जो ईश्वर में विश्वास रखता है कदापि चोरी नहीं करता और उसे यह विश्वास अवश्य रहता है कि वह जो चीज़ जब माँगता है, आसानी से वह प्राप्त हो सकती है । अत: अस्तेय के पालन में भी ईश्वर विश्वास का होना अनिवार्य है ।

---

1. गांधी - विचार रत्न, पृ.72

अस्तेय का पालन वही कर सकता है जो दूसरों के कष्ट जानता है । इस प्रकार का व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को घटाकर शेष से दूसरों की सहायता करने को तैयार होता है । गान्धीजी ने कहा है कि अस्तेय का व्रती दूसरों का दु:ख जाननेवाला है, ईश्वर पर अटूट विश्वास रखनेवाला है और इसलिए वह दूसरे की आज्ञा के बिना अपनी आवश्यकताओं को कम करके दूसरों की सहायता करने में उत्सुकता दिखाता है ।

जो व्यक्ति आत्मा की निन्दा करते हुए उसका तिरस्कार करता है, वह स्वभावत: चोर होता है । आत्मज्ञानी कदापि चोर नहीं बनता । वह हमेशा अपनी आत्मा की पुकार एवं आज्ञा का पालन करता रहता है । वह सदा ईश्वर का ध्यान भी करता रहता है । इसलिए उसका मन चोरी जैसी दुष्प्रवृत्तियों की ओर मुड़ता नहीं । गान्धीजीने भी यहाँ आत्मा को अधिक महत्वपूर्ण बताया है और उसका ध्यान करना अनिवार्य बताया है ।

अस्तेयी जिस प्रकार आगामी फल की इच्छा किये बिना अपना काम करता है, उसी प्रकार वह भविष्य में मिलनेवाली चीज़ों की पूर्व-प्रतीक्षा नहीं करता । अस्तेय-व्रतों केलिए सद्गुणों का होना आवश्यक है, उसे बहुत नम्रताशील, विचारशील, सावधान और सादगी से युक्त होना चाहिए ।" अस्तेय का आचरण अत्यन्त कठिन है और जो अहिंसा, अपरिग्रह आदि बडे बडे

---

1. गांधी - विचार रत्न, पृ.73

कठिन व्रतों का पालन कर सकता है, वही अस्तेय का पालन भी कर सकता है। इसके लिए शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मबल की आवश्यकता है ।

अस्तेय के पालन में यह बात माननीय है कि जो चीज़ हम किसी विशेष काम केलिए खरीदते हैं उसे उसी काम केलिए उपयोगी बनाना है, दूसरे काम केलिए नहीं । इसी प्रकार जो चीज़ें हमें जितने समय केलिए दी हैं, उसका प्रयोग उस सीमित समय ही में करना है ।

अस्तेय में वसुधैककुटुम्बकम् की भावना अवश्य रहती है । प्रत्येक व्यक्ति को सांसारिक वस्तुओं को ईश्वर की मान लेना चाहिए[1] । संसार के सभी लोगों को सांसारिक वस्तुओं का भोग करने का अधिकार है । पर जब वह अधिकार असीम हो जाता है तब वह चोरी, परिग्रह, हिंसा आदि प्रवृत्तियों को जन्म देता है । जब सब लोग अपने अधिकार का ध्यान रखते हुए सांसारिक चीज़ों का उपयोग करते तो परिग्रह आदि का प्रश्न ही नहीं उठता । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उसे जितना अधिकार दिया गया है, उसका ध्यान रखना चाहिए ।

अस्तेय में चीज़ों के ठीक उपयोग पर बल दिया गया है । गान्धीजी ने अस्तेय का सामुदायिक भंग पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि जब हम प्राकृतिक वस्तुओं का नाश करते हैं और कच्चे माल को नालायक समझते हैं तो वह अस्तेय का सामुदायिक भंग कहलाता है[2] । अतः हमें प्रकृतिक चीज़ों का

---

1. गान्धी विचार रत्न, पृ.11
2. गांधी - विचार दोहन, पृ.12

निरंतर फलदायी उपयोग, कच्चे मालों का सदुपयोग आदि पर ध्यान देना चाहिए । इससे भविष्य के जीवन में एक प्रकार की संतृप्ति आती है ।

अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है वस्तुओं के संग्रह की इच्छा न रखना । इसमें भोग की अपेक्षा त्याग को, प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति को, ग्रहण की अपेक्षा दान को और संग्रह की अपेक्षा अपरिग्रह अथवा असंग्रह को स्थान दिया गया है । महात्मा गान्धीजी ने अपरिग्रह को बडी व्यापक दृष्टि से अपनाया । उन के युग में अपरिग्रह का प्रयोग विश्व-कल्याण की दृष्टि से शुरू हुआ था ।

गांधीजी के मत में अपरिग्रह आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं, क्योंकि भौतिक वातावरण भोग-प्रधान है और उसमें प्रयोग और विकार संभव नहीं । उस का प्रयोग करने केलिए मनुष्य को वस्तुओं पर अधिकार जमाने की लालसा को दूर करना चाहिए । ऐसी चीज़ों के मोह से, जो मनुष्य से संबन्ध रखती हैं हमेशा दूर रहना चाहिए । अपरिग्रह को सत्य और अहिंसा की रक्षा का मार्ग बताया है । इसके द्वारा जनता में समानता और एकता की भावना फूट पड़ती है । ऐसी स्थिति में ही सत्य और अहिंसा की रक्षा भी हो सकता है । अपरिग्रह की भलाई में ही सत्य और अहिंसा सुरक्षित रह सकती है ।

डॉ॰ सत्येन्द्र ने बताया है कि "त्याग और तप का दूसरा अर्थ है आवश्यकताओं को कम करना और अपने को दूसरों केलिए, दूसरों में तादात्म्य भाव से समर्पण।[1]" इस से उन्होंने यही बताने का प्रयास किया है कि त्याग और तप ही अपरिग्रह है और अपरिग्रह ही त्याग और तप। गांधीजी ने त्याग और तप के द्वारा अपरिग्रह का निर्वाह किया और इसे जनता के सम्मुख आर्थिक सुधार की दृष्टि से रखा। अपरिग्रह में परोपकार, पर-चिंता, परोन्नति आदि की भावनाओं के जागृत होने का अवसर मिलता ही है।

अपरिग्रह ट्रस्टीशिप पर बल देता है जिसमें आवश्यकता से अधिक संपत्ति को सुरक्षित रखा जाता है और जनता की उन्नति केलिए खर्च किया जाता है। इससे अपरिग्रह का एक और अर्थ है भौतिक वस्तुओं पर निर्भर न रहना। वह इस विचार पर बल देता है कि किसी भी व्यक्ति को जो अपने पास बहुत अधिक धन रखता है, उसे स्वयं न भोगकर अपनी आवश्यकता के बाद बचनेवाले धन को दूसरों की आवश्यकता केलिए उपयोगी बनाना चाहिए।

अपरिग्रह को गांधीजी ने समाज के आर्थिक सुधार के अन्तर्गत रखा है। स्वदेशी भावना और शारीरिक परिश्रम को बढ़ाने में वह साधन सिद्ध होता है। अपरिग्रह से प्रत्येक देश की आर्थिक दशा सुरक्षित रहती है और इससे यह लाभ हो सकता है

---

1. समीक्षात्मक निबन्ध - डॉ॰ सत्येन्द्र, पृ॰143

कि देश की तथा वहाँ की जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए प्रस्तुत देश की निजी संपत्ति पर्याप्त है । अर्थात् उसे दूसरे देश की शरण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती । इतना ही नहीं प्रतिदिन कमाने की आवश्यकता पड़ने से शारीरिक श्रम की महत्ता और मूल्य बढ़ता जाता है ।

अस्वाद

मनुष्य-शरीर के स्वादेन्द्रिय अर्थात् रसना को जीत लेना अस्वाद कहा जाता है । अगर रसना को जीत लिया जाय तो शेष सब जीता हुआ माना सकता है[1] । स्वाद के पीछे न जाने और स्वाद के वश में न होने को अस्वाद व्रत बताया जा सकता है[2] ।

गान्धीजी ने ही अस्वाद का उल्लेख पहले पहल किया है । गान्धीजी के मतानुसार ब्रह्मचर्य व्रत के ठीक पालन केलिए अस्वाद-व्रत आवश्यक है[3] । उन्होंने बताया है कि जीभ अथवा रसना पर संयम से विषय प्राप्त करना दूसरी वस्तुओं पर भी विजय प्राप्त करने के समान है । रसना के द्वारा हम वस्तुओं या चीज़ों का स्वाद जान लेते हैं । स्वादिष्ट वस्तुएँ तो सुख और संतोष को पैदा करनेवाली होती हैं । लेकिन ब्रह्मचर्य के पालन में उनका त्याग अनिवार्य है । अतः अन्य

---

1. गान्धी विचार दर्शन, पृ.124
2. गान्धी जी का जीवन-दर्शन, पृ.124
3. "मैं ने स्वयं अनुभव किया है कि यदि स्वाद को जीत लिया जाय, तो ब्रह्मचर्य का पालन बहुत सरल हो जाता है"
 – आत्मकथा, पृ.180

इन्द्रियों के साथ स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण पाने का आदेश दिया गया है ।

अभय

अभय शब्द का अर्थ है निडरता । जिसका भय नहीं होता, वही निडर है । गान्धीजी ने अपने सिद्धान्तों में अभय को बडा स्थान दिया है । गांधीजी अपने जीवन में कभी किसी से नहीं डरे । गांधीजी ने भारत का जो शासन किया था उस समय वे छल, कपट, धोखा, भीषणता आदि से नहीं डरते थे । उन्होंने यह समझ लिया कि अभय अथवा निर्भयता से एक व्यक्ति सब कुछ कर सकता है । अत: उन्होंने अपने देश की जनता को सदा निडर रहने का उपदेश दिया ।

गान्धीजी ने अभय का मतलब यही बताया है कि बाह्य जगत के भय से मुक्ति प्राप्त करना । जब तक ईश्वर और आत्मा पर पूर्णत: विश्वास रहता है तब तक एक व्यक्ति बाह्य जगत से नहीं डरता, क्योंकि ईश्वर की कृपा तथा अनुग्रह उसे हर प्रकार के भय से अनजाने बचाता है । अभय की दशा मोहहीन स्थिति की पराकाष्ठा मानी गयी है[1] । मोह और इच्छा से भय उत्पन्न होता है । निडर व्यक्ति मोह के जाल में कदापि नहीं फंसता ।

---

1. गान्धी साहित्य - धर्म - नीति - भाग 5, पृ.110

"डरो मत", "धीरज धरो" यही गांधीजी का अभय विषयक नारा था[1]। जो व्यक्ति निर्भय होता है, उसी में बल रहता है। अभय से अन्य गुणों की उत्पत्ति होती है। निर्भय व्यक्ति हमेशा प्रशंसनीय और आदरणीय होता है। निडरता से ही मानव गुण विकास होता है। इसीलिए गांधीजी ने इस पर बहुत अधिक बल दिया।

सत्याग्रह

सत्याग्रह शब्द सत्य और आग्रह के मेल से बना है। इसका अर्थ यह होता है कि जो सत्य है या ईश्वरीय है उसे पाने के आग्रह की पूर्ति केलिए दूसरों को हानि पहुंचाये बिना भक्ति, प्रेम और न्याय के ढंग से किया जाने वाला आत्मिक प्रतियोग। सत्याग्रह का आविष्कार गांधीजी ने ही किया है[2]।" गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह की रीति शारीरिक कष्टों का सहन करते हुए खूब प्रयत्न करना और अपनी आत्मा को किसी के सामने भी न नमाना है[3]। जीवन के रहस्य को ही गांधीजी ने सत्य की संज्ञा दी है[4]। प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने सत्य का आग्रह रहता ही है और जब वह उसे पाने केलिए संघर्ष करता है तब सत्याग्रह होता है।

गांधीजी ने सत्याग्रह करने केलिए चार सोपानों का समर्थन किया है। पहला सोपान यह है जिसमें पारस्परिक विचार विनिमय और समझौते का कार्य होता है। इससे

---

1. Mahatma Gandhi 100 years, p.252
2. He invented the term satyagraha which unfortunately has been widely used as afair label to cloak every form of indiscipline and has even violence for enforcing ones demand.
   Ibid, p.389
3. गांधीजी का जीवन दर्शन, पृ.21
4. वही, पृ.22

काम नहीं चलता तो दूसरे सोपान पंचायत का सहारा लेना है उससे भी असन्तुष्ट हो तो तीसरा कदम है न्यायालय । यदि यहाँ भी असन्तोष पैदा होता है तो चौथे सोपान को अपनाना है जहाँ मनुष्य अपने सत्य पर दृढ रहकर सब कुछ सह लेने का वादा कर लेता है । अंतिम सोपान को सत्याग्रह का उग्र रूप बताया गया है । लेकिन सत्याग्रही हमेशा समझौते का कदम ही अपनायेगा ।

गांधीजी ने अपने व्यक्तिगत जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन में कई बार विविध उद्देश्यों की पूर्ति केलिए सत्याग्रह किया है । अपने सत्याग्रह सम्बन्धी विचारों को कार्यान्वित करने केलिए उन्होंने सन् 1915 मई में 25 तारीख को सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की । आश्रम के नामकरण केलिए पहले सेवाश्रम, तपोवन आदि नामों को सुझाया गया । मगर इन्हें गांधीजी ने पसन्द न किया । उन्होंने यह आग्रह प्रकटकिया कि "हमें सत्य की पूजा और शोधकरना चाहिए । दक्षिण अफ्रीका में जिस सत्याग्रह की सफलता हुई, उसे भारत की जनता को भी समझाना चाहिए ।[1]" इसी उद्देश्य से ही गांधीजी ने सत्याग्रह आश्रम की संज्ञा देने की इच्छा प्रकट की ।

सत्याग्रह का प्रयोग गांधीजी ने देश की परतन्त्रता हटाने और स्वतन्त्रता प्रदान करने केलिए राजनीति के क्षेत्र में किया था और उनका यह राष्ट्रीय हथियार था । भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में इस हथियार का बडा महत्वपूर्ण स्थान

1· आत्मकथा, पृ·344

रहा है । सत्याग्रह का व्यावहारिक अर्थ बताते हुए गांधीजी ने कहा है कि उसका अर्थ अपने जीवन लक्ष्य को पाने केलिए शारीरिक शक्ति का प्रयोग न करके खुद प्रयत्न करना और कष्ट सहना है[1] । गांधीजी ने सारी जनता के कल्याण केलिए सत्याग्रह को उनके सामने रखा । सत्याग्रह एक तरह से देखने पर कर्म ही है । यह गांधीजी के कर्म का व्यावहारिक रूप है जिसके द्वारा उन्होंने सत्य को पाने का प्रयास किया था ।

गांधीजी ने सत्याग्रह को मनुष्य केलिए ईश्वरीय बताया है । सत्याग्रह आत्मीय कर्म है, सांसारिक नहीं । गांधीजी का सत्याग्रह युद्ध के समय और विद्वेष के समय में भी अपनी अहिंसात्मक और प्रेमपूर्ण प्रकृति को छोड़ता नहीं था । यही उसकी विशेषता भी मानी जाती है[2] । गांधीजी के सत्याग्रह ने इस संसार में होनेवाले हिंसात्मक और पाशविक युद्ध को हटाते हुए अपना स्थान जमा कर दिया है । सत्याग्रह उस युद्ध का प्रतिनिधित्व करता है जो सत्य, प्रेम सहनशीलता आदि पर अवलम्बित है[3] ।

---

1. गांधीवाद की शवपरीक्षा, पृ. 143
2. विरोध अथवा युद्ध करते हुए भी अहिंसात्मक बने रहना प्रेम का दावा करते रहना अथवा अहिंसा का दम भरते रहना, गांधीवादी सत्याग्रह की विशेषता है ।
   गांधीवाद की शव परीक्षा, पृ. 143
3. Sathyagraha is his substitute for war and is based on absolute adherence to truth, practice of love and self suffering by the resister in case of conflict.
   Mahatma Gandhi 100 years, p. 141

वह हिंसा, असत्य, विद्वेष आदि के प्रति अहिंसा, सत्य, प्रेम का पाठ पढ़ाता है जिसके द्वारा आदर्शात्मक भाईपन की प्रतिष्ठा हो सकती है।[1]"

सत्याग्रही को हमेशा असत्य को सत्य से, द्वेष को प्रेम से पाप को पुण्य से और हिंसा को अहिंसा से हटाना चाहिए। सत्याग्रही हमेशा अपने अन्त: करण की प्रेरणा एवं आदेश के साथ प्रयत्न करता है। वह बाह्य प्रेरणा या दूसरों के आदेश को नहीं सुनता।

सत्याग्रह एक ऐसी चीज़ है जिसका प्रयोग सब कहीं हो सकता है। उसके प्रयोग केलिए व्यक्ति-विशेष, स्थान विशेष या कालविशेष की कोई ज़रूरत नहीं है। सत्याग्रह बलवानों का शस्त्र है, दुर्बलों का नहीं। गांधीजी ने सत्याग्रह को इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया कि वह हिंसा और संघर्ष को दूर करे और अनीति निर्दयता आदि को मिटावे। सत्याग्रह कदापि हार नहीं सकता, वह चिरजयी है। वह भौतिक होने पर भी शाश्वत है और अक्षय है। सत्याग्रह में कार्य सिद्धि की जो योग्यता रहती है वह अद्भुत है।

उसके द्वारा जितनी भी छोटी या बड़ी समस्याओं को सुलझा सकते हैं। सत्याग्रह इस बात का समर्थन करता है कि

---

1. Sathyagraha is the practical application of truth, non-violence and love to fight social evils and march to-words the ideal of human brotherhood."
Mahatma Gandhi 100 years, p.353.

शत्रु का मन एक सत्यव्रती के अथक परिश्रम से परिवर्तित हो सकता है । वहाँ गाँधीजी के हृदय-परिवर्तन की बात आती है । उन्होंने अपने सिद्धान्तों के द्वारा शत्रुओं, कुमार्गियों एवं अज्ञानियों का दिल परिवर्तित करने का मार्ग बताया है । उनका सत्याग्रह इसी विश्वास पर आधारित है[1] । सत्याग्रह के अंतिम फल का निर्णय उसके आरंभ में नहीं उसके अंतिम परिणाम में ही हो सकता है । सत्याग्रही को फल की कामना नहीं करनी चाहिए, । उसके मूल में निष्काम कर्म की अनिवार्यता आवश्यक है ।

सेवा-भावना

गाँधीजी का पूरा जीवन ही देश सेवा की महत्ता का द्योतक है । उनकेलिए भारत भूमि अपनी माँ जैसी थी । भारत माता को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करने केलिए वे अपने प्राणों तक को निछावर करने केलिए तैयार थे । उनकेलिए देश की सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य था । इसी देशभक्ति से ही उन्होंने सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन आदि द्वारा अंग्रेज़ों के क्रूर शासन से अपने देश को मुक्ति प्रदान की । इस संदर्भ में उन्हें कई तरह की मानसिक पीड़ाओं और शारीरिक यातनाओं को भोगना पड़ा । फिर भी वे अडिग रहे ।

---

1. The whole conception of sathyagraha rests on the psychological assumption that the innate goodness of the most brutal opponent can be aroused by the pure suffering of a truthful man."
The political philosophy of Mahatma Gandhi,p.110

देशसेवा में गांधीजी ने बलिदान को अधिक महत्व प्रदान किया है । उनके अनुसार "जिस राष्ट्र में असीम बलिदान की योग्यता है, उसी में असीम ऊँचाई तक उठने की क्षमता है । बलिदान जितना अधिक शुद्ध होता है, उतनी ही अधिक तीव्र उन्नति होती है[1] । उन्होंने दूसरों का रक्त बहाने के बदले अपना रक्त दान देने का उपदेश दिया है । भारत-भूमि केलिए स्वयं अपने प्राण को त्यागना महत्वपूर्ण माना है । आत्म-बलिदान से दूसरों की हानि नहीं होती, प्रत्युत भलाई ही होती है । अहिंसक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों का सामना अहिंसा के द्वारा ही करना चाहिए । गांधीजी इस नियम पर अधिक बल देते थे । अपनी भलाई केलिए हमें दूसरों की सेवा भी करनी चाहिए । लेकिन उसकेलिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए और दूसरों से हमारा शोषण भी कराना नहीं चाहिए । देश-प्रेमी भारत-पुत्र गांधीजी भारत की स्वतन्त्रता केलिए मर मिटे और देश की स्वतन्त्रता का श्रेय भी उन्हीं को ही है । उनका देश-प्रेम अटूट एवं अगाध था । सच्चा देश-प्रेमी ही गांधीजी के समान देश का कार्य-संचालन कर सकता था । अतः उन्होंने बताया है कि देश-प्रेम दूसरों को एकता के सूत्र में मिलाता है । वह किसी प्रकार से दोषी नहीं है । उनके ही शब्दों में, "देश-प्रेम दूसरों का बहिष्कार नहीं करता । वह सारे जगत् को अपने भीतर समा लेनेवाला है[2] ।

---

1. गांधी - विचार रत्न, पृ.191

2. वही, पृ.162

गांधीजी ने देश-सेवा को स्वतन्त्रता पाने केलिए आवश्यक माना। उनके अनुसार देश की स्वतन्त्रता के साथ व्यक्ति-व्यक्ति की स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी हर आवश्यकता की पूर्ति केलिए स्वतन्त्र रहना चाहिए। गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त की और इसी पर उन्होंने स्वयं बताया "सत्य और अहिंसा के द्वारा पूर्ण स्वातन्त्र्य का अर्थ जाति, रंग तथा सम्प्रदाय के भेद-भाव के बिना हर एक इकाई का स्वातन्त्र्य है, चाहे वह राष्ट्र का सबसे छोटा व्यक्ति ही हो। यह स्वातन्त्र्य कभी भी विघटनकारी नहीं होता।"[1] व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है। इसीलिए गांधीजी ने अहिंसा को स्वराज्य प्राप्ति का मुख्य साधन बनाया। व्यक्ति-व्यक्ति की स्वाधीनता में ही देश का कल्याण निहित है और इसीलिए उन्होंने इस पर अधिक ज़ोर दिया।

गांधीजी की देश-सेवा उनके जीवन की साधना का एक अंग है। वह स्वतः ध्येय नहीं है, साधन मात्र है। उनका देश-प्रेम राजनीति की अपेक्षा अधिक नैतिक है। उनकी देश-सेवा में अहंकार का, दूसरी जातियों पर जबरन बैठने का, अपने राष्ट्रीय स्वार्थ केलिए दूसरे दुर्बल देशों का उपयोग करने का भाव नहीं है। गांधीजी ने कहा है, "मेरा देशप्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं बल्कि अतिशय व्यापक वस्तु है।

---

1. गांधी - विचार रत्न, पृ. 193

और मैं उस देश प्रेम को वर्ज्य मानता हूँ जो दूसरे राष्ट्रों को तकलीफ देकर या उनका शोषण करके अपने देश को उठाना चाहता है। देश प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह हमेशा बिना किसी अपवाद के हर एक स्थिति में मानव-जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत रहे।[1]"

2· राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर

अन्य जातीय शासन की समाप्ति केलिए शासितों द्वारा किया गया विद्रोह राष्ट्रीय क्रान्ति है। गांधीजी महान क्रान्तिकारी थे। वे संसारव्यापी संस्कृति और जीवन के किसी भी अंग की जर्जरता के विरुद्ध खड़े हुए। गांधीजी की क्रान्ति सत्याग्रह और असहयोग के रूप में ही हुई हैं। उन्होंने इस आधार पर क्रान्ति कर सजीव, मूर्त और अधिक संवेदनशील समाज-व्यवस्था की स्थापना की। रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से उन्होंने नयी समाज 'व्यवस्था कायम की। गांधी ने सत्याग्रह और रचनात्मक कार्यक्रमों को साथ-साथ चलाया। इस प्रकार संघर्ष और विनाश के साथ संगठन और निर्माण की प्रक्रिया भी होने के कारण उनकी क्रान्ति भावना विशिष्ट हो गई।

गांधीजी ने अहिंसा के माध्यम से विचारों में परिवर्तन कर संघर्ष और निर्माण को साथ-साथ चलाया और उसमें वे पूर्णतः सफल हुए। हिंसक क्रान्ति अधिकार सत्ता और अधिकार-शक्ति को साधन बनाकर रचनात्मक कार्य करती है। गांधीजी ने अधिकार प्राप्ति को लक्ष्य नहीं किया। रचनात्मक कार्यों के माध्यम से निर्माण की सुदृढ पृष्ठभूमि उन्होंने क्रान्ति की पूर्णता के पहले ही स्थापित कर ली थी। इसीलिए

1· यंग इंडिया, ता·4·4·1929

अहिंसात्मक क्रान्ति के उपरान्त अधिकार सत्ता प्राप्त होने पर व्यवस्था की नयी दिशा में प्रगति हो सकी । उन्होंने जनता के विचार और चिंता, मानव के बीच के पारस्परिक संबंध, शिक्षा, समाज विश्व-व्यापक आर्थिक स्थिति आदि के पुनर्निमाण में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया[1]। जनता के कल्याणार्थ जो हलचल उन्होंने मचायी, वे क्रान्ति का रूप धारण करने पर भी शान्तिमय थे ।

सुधारात्मक पक्ष

गांधीजी ने अपने सिद्धान्तों के पालन एवं बह्मचर्य, अपरिग्रह आदि के व्यवहार केलिए उस समय के समाज में कुछ सुधार लाना चाहा । उनके अनुसार पुरुष और स्त्री दोनों समाज रूपी रथ के दो पहिये रहे हैं । तत्कालीन समाज में नारी एवं शूद्रों की जो हीन अवस्था थी उसे देखकर वे अत्यधिक दुःखी थे । गांधीजी जानते थे कि ऐसे समाज में उनके सिद्धान्तों का पालन असंभव है । इसलिए उन्होंने अहिंसा, सत्य आदि के महत्व, बह्मचर्य, अपरिग्रह आदि के पालन के साथ साथ सामाजिक कुरीतियों को दूर करते हुए उसमें नये प्राण लाने का निरंतर प्रयत्न किया । नारी उद्धार, अछूतोद्धार आदि इसी प्र यत्न के सुफल है ।

---

1. He advocated revolutionary changes in our ways of thinking in the relation ship between man and man in the educational system, the social set-up and the world economy, because he recognised the un-goodly and untruthful and therefore unnatural course of life, human society he adopted.[1]

Mahatma Gandhi 100 years, p.74

1. नारी उद्धार तथा नारी का कर्मक्षेत्र

स्त्रियों की हीन अवस्था देखकर गांधीजी अत्यन्त व्यथित थे। उन्होंने स्त्रियों को मानसिक बल धारण करने का आदेश दिया और कहा कि यदि वे अपने आपको निर्बल मानने की प्रवृत्ति का त्याग दें तो उनका उद्धार हो सकता है। गान्धी विचारधारा में नारी उद्धार की भावना का अत्यधिक महत्व है। गांधीजी नारी को अबला न मानकर लोकहित करनेवाली शक्ति के रूप में देखते हैं। वे स्त्रियों में सादगी को महत्व देते थे। सादगीके साथ साथ आत्मबल और निर्भयता की आवश्यकता पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किया है।

महात्मा गांधी नारी का सभी प्रकार से उद्धार करना चाहते थे। उन्होंने अपनी समाज-सुधारवादी प्रवृत्तियों में नारी-उद्धार की परिकल्पना की और उनका उद्धार भी किया है[1]। गांधीजी की इस स्थिति ने आधुनिक भारतीय समाज में नारी को समानाधिकार का पद प्रदान किया। वे कहते थे कि पुरुष और नारी में समता चाहिए, दोनों मिलकर ही समाज की प्रवृत्तियों को संभाल सकते हैं। गांधी युग में आकर नारी की इतनी स्वतन्त्रता बन गई थी कि वह आन्दोलनों और विप्लवों में भाग लेने लगी। इस युग में यह स्पष्ट रूप से

---

1. In the various constructive programmes he launched, and in the social, economic and educational institutions he founded, women always found a place of equal responsibility and importance with men.
Mahatma Gandhi 100 years, p.219

दिखाई पड़ता है । पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी कार्य-क्षेत्र में बलिदान किया था ।

गांधीजी नारी को उच्च शिक्षा देने के समर्थक थे । उनका मत था कि नारी को किंचित शिक्षित रहना चाहिए । वे उसको समाज में ऊँचा पद देना चाहते थे । गांधीयुग की नारियाँ सूत कातती थी और चरखा चलाती थी । वे बड़ी कर्त्तव्यशील और राष्ट्र-सेविकाएँ बन गयी थीं । नारी के उद्धार में गांधीजी को ब्रह्मचर्य अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ । ब्रह्मचर्य का व्रती रहने पर भी गांधीजी नारी से अलग नहीं रहे थे । उनके प्रभाव से नारियों ने पति-धर्म को भी त्यागकर बलि-धर्म को अपनाया । नारी का उद्धार करने में गांधीजी से बढ़कर किसी दूसरे व्यक्ति का मिलना असंभव है । यही जैनेन्द्रजी का भी मत है "स्त्री को स्त्रीत्व से आगे व्यक्तित्व देने में गांधीजी से बढ़कर शायद ही कोई इतिहास का चरित्र ठहर सके ।[1]" उनमें नारी के प्रति किसी प्रकार की घृणा नहीं थी । इस प्रकार गांधीजी ने स्त्री का उद्धार ही समाज का उद्धार मानकर, उसकेलिए खूब प्रयत्न किया ।

स्त्रियों के उद्धार में गांधीजी ने वेश्याओं के उद्धार केलिए भी खूब प्रयत्न किये । उनके अनुसार वेश्यावृत्ति हमारे समाज का एक अभिशाप है । यदि नारी जाति का उद्धार करना है तो यह आवश्यक है कि पहले वेश्याओं का उद्धार किया जाय ।

---

1. अकाल - पुरुष गांधी, पृ.85

गांधीजी परदा प्रथा के घोर विरोधी थे। उनका यह स्पष्ट विचार था कि परदा प्रथा स्त्रियों की उन्नति में सबसे बड़ी बाधा है। परदा प्रथा का अन्त ही गांधीजी का उद्देश्य था। उनके अनुसार यह प्रथा हर तरह से अकल्याणकारी है।

बाल-विवाह इस देश की अत्यन्त प्रचलित प्रथा है, विशेषकर छोटी समझी जानेवाली जातियों में गांधीजी ने इस प्रथा को अभिशाप के रूप में देखा। उनके अनुसार यह प्रथा हमारे आचारों की जड़ को काटती है और हमारे बल का नाश करती है।

विधवा की समाज में करुणाजनक दशा देखकर गांधीजी ने "विधवा-विवाह" का समर्थन किया। गांधीजी मानते थे कि जिस प्रकार विधुर पुरुष केलिए पुनर्विवाह का अधिकार है, उसी प्रकार विधवा केलिए भी पुनर्विवाह का अधिकार होना चाहिए।

गांधीजी ने सती-प्रथा को भी उचित नहीं माना। वे यह मानते थे कि स्त्रियों के सती हो जाने से समाज का कल्याण कभी नहीं हो सकता। जीवित रहकर वे अपने समाज, देश और विश्व की सेवा कर सकती है। सती हो जाना पवित्रता की कसौटी नहीं है। यह पवित्रता तो जीवित रहकर अनवरत प्रयत्न करने से प्राप्त होती है।

गांधीजी की प्रबल आकांक्षा थी कि विवाह के मामले में जाति की दीवार खडी नहीं करनी चाहिये । वे चाहते थे कि भारत में अन्तरजातीय विवाहों को पूरा-पूरा प्रोत्साहन मिलना चाहिये ।

गांधीजी ने मादक द्रव्यों के सेवन का सम्बन्ध नैतिकता से जोड्कर उनका निषेध करने केलिए प्रेरणा दिया । वे यह मानते हैं कि शराब पीनेवाला व्यक्ति नैतिक दृष्टि से गिर जाता है और उसकी आत्मा मर जाती है ।

<u>अछूतोद्धार</u>

गांधीजी तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों को समाप्त करने में दत्तश्रद्ध रहे थे । छुआ-छूत को समाप्त करने में उन्होंने बडा योगदान दिया । गान्धीजी के मत में जाति-भेद या वर्ग-भेद के अभाव में ही समाज का उद्धार संभव हो सकता था । वे "जन्मना जायते शूद्र: कर्मणा जायते द्विज:" वाले सिद्धान्त को मानकर चलते थे ।

गांधीजी सबको जाति-विहीन और एक मानना चाहते थे । इसलिए वे बताते थे कि ईश्वर, आत्मा और मानव सब एक है और प्रत्येक व्यक्ति को आपस में एक दूसरे को अपनाना चाहिए । गान्धीजी हमेशा जाति-भेद का विरोध करते थे और इसी दृष्टि से वे हरिजनों को दरिद्र-नारायण कहकर

पुकारते थे । अस्पृश्यता निवारण का अर्थ गान्धीजी ने समस्त संसार के साथ मित्रता रखना और सब की सेवा करना बताया है । अस्पृश्यता के अस्तित्व से शत्रुता बनी रहती है । जीव-मात्र के प्रति पूर्ण प्रेम को गान्धीजी ने अहिंसा बताया है और उसी को अस्पृश्यता निवारक भी कहा है । अहिंसा के पालन के समान अछूतोद्धार केलिए भी प्रेम की आवश्यकता है ।

गान्धीजी ने भारत को स्वतन्त्र बनाने केलिए अछूतोद्धार या हरिजनोद्धार की प्रथा चलायी । उन्हें यही सूझा कि भारत की मुक्ति पाने केलिए हरिजनों को भी अपनाना चाहिए । उनका कथन यह है कि जो हिन्दू अस्पृश्यता को अपने धर्म का अंग मानता है और अछूतों को छूना पाप समझता है, वह स्वतन्त्रता का सुख भोगने योग्य नहीं है । अछूतों को सुधारने केलिए उनकी परंपरागत रूढियों से उन्हें ऊपर उठाने या उनके प्रति अरुचि हटाने की आवश्यकता है । यही अछूतों के सम्बन्ध में गांधीजी के विचार थे । उनके उद्धार के लिए उन्होंने जी जान से प्रयत्न किया ।

ग्राम सुधार

अछूतों के उद्धार से ही गाँवों का उद्धार हो सकता है । ग्राम-सुधारक के रूप में गांधीजी "सेगाँव का सन्त" कहलाते थे । ग्रामीण जनता की उन्नति केलिए वे "सेगाँव" नाम गाँव में बसते थे जो बाद में सेवाग्राम नाम से प्रसिद्ध हुआ । उन्होंने वर्धा और सेवाग्राम में रहकर ग्रामोन्नति का रचनात्मक कार्य आरंभ किया । वे गाँव-गाँव में पैदल जाते थे और वहाँ की जनता की आवश्यकताओं की जाँच करते थे । इसका उद्देश्य था ग्रामीण जनता को भी स्वराज्य संग्राम में सक्रिय बनाने केलिए शक्ति प्रदान करना । गाँव में साधारणतः

गंदगी होती है । गांधीजी ने उनकी सफाई व सुधार स्वयं किया था । ग्राम-सुधार केलिए उन्होंने "गांधी-सेवा-संघ" की स्थापना की । गांधीजी केलिए ग्रामवासियों की सेवा ही भारत की सेवा थी ।

निष्कर्ष

राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद वास्तव में एक दूसरे के पूरक रहे हैं । गांधीजी के बिना भारतीय राष्ट्रीयता अधूरी है और गांधीवाद भारतीय राष्ट्रीयता का सशक्त माध्यम रहा है । हिन्दी काव्य के विकास में द्विवेदी युगीन कविता भारतीय राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद का सन्देश लेकर आगे बढ़ी है । राष्ट्रीयता मन की एक ऐसी चेतना है, जिससे व्यक्ति जनसमूह से एकत्व स्थापित करके अपने देश और समाज केलिए अपना सब कुछ दान कर देता है । राष्ट्रीयता के विकास में कुछ तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान हैं । वे तत्व हैं - भाषा की एकता, भौगोलिक एकता-संस्कृति तथा इतिहास परम्परा की एकता, जातीय एकता, धर्म की एकता, आर्थिक और राजनैतिक आकांक्षा की एकता और समान हित । भारत में राष्ट्रीयता वेदकालीन साहित्य से लेकर आज तक निर्बाध गति से प्रवाहित होती आ रही है । भारतीय राष्ट्रीयता सदैव अहिंसात्मक रही है । राष्ट्रीयता के संदेश को फैलाने में गांधीजी का बहुत बडा योगदान है ।

गांधीवाद का तात्पर्य उन सिद्धांतों से है जिनका प्रचार-प्रसार महात्मा गांधी ने सामूहिक जीवन में किया है । प्रमुख रूप से गांधीवाद के तीन पक्ष हैं - सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और सुधारात्मक । भारत की नई राष्ट्रीयता में गांधीवाद से प्रभावित इन्हीं तत्वों का विशेष महत्व रहा है । द्विवेदी युगीन काव्य में इनका प्रतिफलन देखा जा सकता है ।

द्वितीय अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य की पृष्ठभूमि

द्वितीय अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य की पृष्ठभूमि

सन् 1857 की क्रान्ति के बाद अंग्रेज़ी शासन भारत में अपनी जड़ें मज़बूत करने के प्रयास में विशेष रूप से लग गया । इसके लिए उसने प्रशासनिक सुधार के साथ देशी राज्यों को शक्तिहीन करने का भी प्रयत्न किया । लार्ड केनिंग ने प्रशासनिक सुधार की दिशा में प्रयास किया, साथ ही शिक्षा और न्याय के क्षेत्रों में भी सुधार किये । केनिंग ने ही मैकाले की नवीन शिक्षा पद्धति को कार्यान्वित किया जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग और अनेक राजकीय विद्यालय खोले गये । लार्ड केनिंग के बाद जान लारेंस (सन् 1868 से 1869 ई० तक) लार्ड मिन्टो (1869 से 1872 ई० तक) लार्ड नार्थ कुक (सन् 1972 से 1876 ई० तक) लार्ड लिटन (सन् 1876 से 1880 ई तक)

लार्ड रिपन (सन् 1880 से 1884 ई॰ तक), लार्ड डफरिन (सन् 1884 से 1888 तक) और लैंस डाउन (सन् 1888 से 1901 तक) भारत के वाइसराय हुए । इन वाइसरायों ने शान्ति बनाये रखने और उत्तेजक कार्यवाही न करने की नीति का अनुसरण किया, किन्तु इन वाइसरायों के समय में अफगानिस्तान से बराबर संघर्ष होता रहा जिसका सारा व्यय भारतीय जनता को उठाना पड़ रहा था । इसी स्थिति को लक्ष्य करके भारतेन्दु ने लिखा -"फसि भारत जर्जर भयो, काबुल युद्ध अकाल" या "भारत - कोष विनास को हिय अति ही अकुलात ।"

महाराणी विक्टोरिया के घोषणा पत्र ने भारतीयों में एक विश्वास उत्पन्न किया जिसके परिणामस्वरूप भारतेन्दु जैसे सजग कवियों ने भी स्वामिभक्ति या राजभक्ति प्रकट की । मिस्र और अफगान युद्धों में विजय को उन्होंने यवनों पर आर्यों की विजय माना । 22 सितंबर सन् 1882 में मिस्र-विजय के सम्बन्ध में "विजयिनी विजय पताका या वैजयन्ती में उन्होंने इस प्रकार अपने भावोद्‌गार प्रकट किए -

"स्वामिभक्ति किरतज्ञता दरसावन हित आज,
छाडि प्रान देखहिं खरो, आरज-बस समाज ।"

इसी प्रकार ड्यूक आॅफ एडिनबरा और प्रिंस आॅफ वेल्स के स्वागत में भी उन्होंने कवितायें लिखी[1] ।

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली - ब्रजरत्नदास, पृ॰804

प्रिंस आँफ वेल्स के भारत आगमन पर उन्होंने इन शब्दों में स्वागत किया -

"मन मयूख हरखित भये भये दुरित तब दूरि,
राज कुँवर नवघन सरस भारत जीवन मूरि ।"[1]

राजभक्ति का यह स्वर कितना प्रबल था, यह इसी बात से समझा जा सकता है कि राजकुमार के आगमन की तुलना भारतेन्दुजी ने रामचन्द्र के अयोध्या वापस आने से की है -

"जिमि रघुवर आये अवध जिमि रजनी लहि चंदा
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यो अनन्द ।।"[2]

वस्तुत: इस राजभक्ति का उद्देश्य प्रशंसा द्वारा भारतवर्ष और उसके नागरिकों केलिए सुख और सुविधा पाना था, किन्तु इसके साथ ही वे आर्थिक शोषण और देश-दुर्दशा से अनभिज्ञ नहीं थे । इसलिए इस राजभक्ति के साथ देशभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है । उन्हें बाद में लगने लगता है कि सुख-सुविधाओं का नाटक और आश्वासन आर्थिक शोषण का बहाना मात्र है । उनकी प्रसिद्ध व्यंग्यात्मक पहेली इसका उदाहरण है -

"भीतर भीतर सब रस चूसे, हँसि हँसि
के तन मन धन मूसे ।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन
नहिं अँगरेज ।"

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली - ब्रजरत्नदास, पृ.804
2. सुमनांजलि और बालबोधिनी, खंड 3, संख्या 6,
आषाढ सं. 1933

तात्पर्य यह कि अंग्रेज़ों से सुख-सुविधा पाने का भ्रम टूटते ही असन्तोष की भावना बढ़ने लगी ।

अंग्रेज़ी शिक्षा से देश में नवचेतना

ब्रिटिश राज्य की स्थापना व उसकी आर्थिक नीतियों के कारण कुछ ऐसी समस्यायें सामने आने लगी थीं जिनके निराकरण केलिए नए-नए दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस होने लग गई थी । अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली द्वारा जो ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि हुई, उससे इस दिशा में पर्याप्त मदद मिली । हमारे ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक व पारलौकिक था, तो अंग्रेज़ी शिक्षा का ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य इहलौकिक था और सब केलिए सुलभ था । जातीयता इसमें बाधक नहीं थी ।

भारत में सर्वप्रथम अंग्रेज़ी का प्रचार बंगाल से शुरू हुआ । यहाँ पर अंग्रेज़ अपनी जड़ें काफी पहले से जमा चुके थे । इसलिए अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग व्यापारिक संस्थानों और सरकारी कार्यालयों में छोटी-मोटी नौकरियाँ पाने लग गए थे । अंग्रेज़ अधिकारी अपने अधीन देशी बाबू रखना पसन्द भी करते थे ताकि उनका व्यवसाय व प्रशासन निर्बाध गति से चल सके । ईसाई धर्म प्रचारक अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से लोगों को ईसाई बनाकर अधिक से अधिक पुण्य लूटने के चक्कर में थे । इस तरह शिक्षा का प्रभाव भारत के मध्य वर्ग व निम्न मध्य वर्ग पर विशेष रूप से पड़ा । इसने वैयक्तिक स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित किया ।

अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार और प्रभाव से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग हुई । ज्यों-ज्यों भारतवासियों का सम्पर्क अंग्रेज़ी शिक्षा तथा साहित्य से बढ़ता गया त्यों-त्यों उनका बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिवर्तित एवं विकसित होता गया । अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन देश में पहले ही हो चुके थे । शतियों से रूढ़िग्रस्त तथा शिथिल हुए समाज को सांस्कृतिक नेताओं ने झकझोर दिया था, जिसके फलस्वरूप भारतवासियों में एक नवीन जीवनादर्श को अपनाने की तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न होने लगी थी । इसकी छाप इस युग के काव्य पर भी पडी और कवियों में भी अपने साहित्य के पुनरुद्धार की रुचि बढने लगी । उन्होंने अपनी कला द्वारा जनकल्याण का बीडा उठाया और वे अपनी कृतियों में एक नवीन उत्साह, एक अपूर्व आदर्श तथा एक अद्भुत जागृति का संदेश लेकर अग्रसर होने लगे ।

साहित्यिक रुचि को विकास देने केलिए साहित्यिक संस्थाएँ स्थापित होने लगीं । "कविता वर्धिनी सभा", "हिन्दीवर्धिनी सभा", "रसिक समाज" आदि अनेक सभाओं द्वारा साहित्य को प्रोत्साहन मिलने लगा । इन सभाओं के द्वारा साहित्यविस्तार में बहुत सहायता मिली तथा राष्ट्रीय भावों का प्रचार भी हुआ । भारतेन्दु द्वारा स्थापित हुआ "तदीयसमाज" यद्यपि एक धार्मिक संस्था थी परन्तु "उस समाज के बहुत से लोगों से यह भी प्रतिज्ञा कराई गई थी कि यथासंभव देशीय पदार्थों का व्यवहार करेंगे । हरिश्चन्द्र आदि भी यथा-साध्य इस नियम का पालन करते रहे ।"[1]

---

1. शिवनन्दन सहाय हरिश्चन्द्र, पृ.87 , बाँकीपुर, 1905

इस समय तक भारत में मुद्रणालय भी खुल चुके थे, जिन्होंने साहित्यिक विकास में एक महत्वपूर्ण कार्य किया । देश के भिन्न भिन्न भागों में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रादुर्भाव हुआ । इनमें प्रकाशित हुए लेखों तथा कविताओं द्वारा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि समस्याओं पर प्र काश डाला जाने लगा और जनता में समाज-सुधार, देशभक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम की भावना का प्रचार होने लगा । प्रारंभ में भारतेन्दु द्वारा संचालित "कविवचनसुधा", बालकृष्ण द्वारा सम्पादित "हिन्दी प्रदीप", प्रतापनारायण मिश्र की "ब्राह्मण", बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन" की "आनन्दकादम्बिनी" आदि अनेक पत्रिकाएँ भारतेन्दु-युग में प्रकाशित हुई । धीरे-धीरे इनकी संख्या में वृद्धि होने लगी और इनके द्वारा साहित्यिक प्रगति के साथ-साथ जनता में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने केलिए नूतन विचारों का खूब प्रसार हुआ ।

इतना ही नहीं एक ओर जहाँ भारतीयों में अंग्रेज़ी शिक्षा तथा नवीन विज्ञान में आकर्षण बढ रहा था वहाँ उन्हें प्राचीन भारतीय गौरव को भी अपनाने की रुचि उत्पन्न होने लगी । अपने वीरपुरुषों का ओज, अपने प्राचीन दर्शनों के सिद्धान्त एवं अपने प्र ाचीन कलाकारों की कृतियाँ उनमें उत्साह भरने लगी । भारतवासी अतीत गौरव को फिर से प्राप्त करने केलिए उतावले होने लगे और साथ ही उनमें स्वाधीनता प्राप्त करने की मनोवृत्ति बलवती होने लगी । सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता का भाव विकसित होने लगा ।

सांस्कृतिक पुनर्जागरण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है अंग्रेज़ी शिक्षा से देश में जो नवचेतना की लहर उठी, उसी से सांस्कृतिक पुनर्जागरण की नींव भी स्थापित हो गई। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव की शुरुआत जो बंगाल में हुई, उसी तरह सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आन्दोलन भी बंगाल से ही प्रारंभ हो गया। इस पुनरुत्थान का नेतृत्व करनेवालों में लोकनायक राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, न्या॰ रानडे, आगरकर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सांस्कृतिक आन्दोलनों के नायक सांस्कृतिक और सामाजिक परतन्त्रता के बन्धनों को शिथिल कर रहे थे। ब्रह्मसमाज के माध्यम से भारतीय जनता के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में परिवर्तन लाकर, उनमें युगानुरूप नई चेतना उत्पन्न कर दी। राममोहनराय के महत्वपूर्ण नेतृत्व में यह कार्य संपन्न हो गया। स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज ने देश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रांति उत्पन्न करके राष्ट्रीय भावना के विकास का कार्य किया। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन के द्वारा धर्म के माध्यम से मानव और राष्ट्रीय अभ्युत्थान केलिए प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने सेवा, निष्ठा एवं भारतीयता को परम्परावादी ढंग से स्थापित कर दिया। थियोसोफिकल सोसाइटी के माध्यम से श्रीमती एनी बसेण्ट ने भारतीय अध्यात्म के प्रचार के साथ सर्व धर्म समन्वय को भी स्थापित कर दिया। इस प्रकार ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि सांस्कृतिक एवं वैचारिक आन्दोलनों ने भारत में नवयुग का प्रारंभ किया।

ब्रह्मसमाज

सन् 1828 में राजा राममोहनराय ने "ब्रह्मसमाज" की स्थापना की । धार्मिक प्रयास होते हुए भी सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण की दिशा में इस समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही । ईसाई बनाने का जो अभियान अंग्रेज़ मिशनरियों ने आरम्भ किया, उस पर इस समाज ने अंकुश लगाने का कार्य किया । उन्होंने बहुत विवेक के साथ ईसाई धर्म से हिन्दू धर्म की रक्षा का दायित्व निभार लिया ।

राजाराममोहन राय का उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक कल्याण था । इसलिए उन्होंने उपनिषदों के ब्रह्मवाद का सहारा लेकर एकेश्वरवाद का प्रचार किया । साथ ही ईसाइयों की प्रार्थना-पद्धति अपनाई । राजा राम मोहन राय धार्मिक रूढियों और अंधविश्वासों के कट्टर विरोधी थे । उनके "ब्रह्मसमाज" की धार्मिक मान्यतायें तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक भी थी । उन्होंने मूर्ति-पूजा तथा हिन्दू धर्म की अन्य बुराइयों का विरोध किया । वास्तव में वे धार्मिक नेता न होकर धर्म के माध्यम से सामाजिक जीवन में परिवर्तन ले आनेवाले मनीषी थे । बाल-विवाह, सती प्रथा को समाप्त करने की दिशा में उन्होंने महत्वपूर्ण प्रयास किया । अंग्रेज़ी साहित्य, पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का उन्होंने गहन अध्ययन किया था, इसलिए उनके दृष्टिकोण में पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप दिखलाई पड़ता है । भारतीय जनता को शिक्षित करने और उनमें

युगानुरूप नई चेतना उत्पन्न करने की दिशा में उन्होंने कई महत्व-पूर्ण कार्य किये । आधुनिक शिक्षा प्रणाली को प्रतिष्ठित करने में इनका योग है । कलकत्ता के आस-पास विभिन्न श्रेणियों के विद्यालयों की स्थापना में उनका सर्वाधिक योगदान रहा । इस प्रकार ब्रह्मसमाज के माध्यम से न केवल धर्म के क्षेत्र में बल्कि समाज, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में भी नयी चेतना उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया ।

आर्य-समाज

राजा राममोहन राय के बाद भारतीय सांस्कृतिक चेतना को नयी दिशा और नयी गति देकर पुन: जागृत करने का कार्य स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना द्वारा किया । उन्होंने वेदों का गहन अध्ययन किया उनकी नयी व्याख्या की और वैदिक धर्म के उद्धार केलिए आन्दोलन किया । सन् 1975 में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की । स्वामी दयानन्द का धार्मिक आन्दोलन भी तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर चलाया गया सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन था । अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक राजनीतिक चेतना से भी यह युक्त था । ब्रह्म समाज के आन्दोलन पर पश्चिमी प्रभाव होने के कारण जनता में उसका प्रचार-प्रसार अधिक नहीं हो सका, किन्तु आर्य समाज का जनता पर व्यापक प्रभाव पडा । वस्तुत: आर्य समाज हिन्दू आदर्शों का प्रतिष्ठापक था और इसे व्यापक बनाने केलिए स्वामी दयानन्द ने इसे आर्यधर्म कहा । आर्य समाज को एक क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलन कहा जा

सकता है । हिन्दू धर्म को उसकी संकीर्णता से बाहर निकालने का मुख्य श्रेय इसे प्राप्त है । ब्रह्म की एकता, जातिगत समानता आत्मा की स्वतन्त्रता, स्त्री-पुरुष की समानता विधवा विवाह आदि का उपदेश देने के साथ ही स्वामीजी ने छुआछूत, जन्मजात जातिप्रथा, अवतारवाद, भाग्यवाद, मूर्ति-पूजा, बाल-विवाह आदि धार्मिक और सामाजिक रूढियों पर प्रहार किया और उन्हें समाप्त करके हिन्दू जाति में जातीय गौरव की भावना उत्पन्न करने का प्र यास किया । ज्ञान को रूढियों की संकुचित सीमा में बाँधने के वे विरोधी थे, पाश्चात्य ज्ञान स्रोतों के ग्रहण के वे विरोधी नहीं थे, किन्तु उनका मत था कि उन्हें ग्रहण करते हुए भी शिक्षा-पद्धति भारतीय होनी चाहिए, भारतीयता और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का त्याग उन्हें ग्राह्य नहीं था । यद्यपि वे गुजराती थे, पर उन्होंने अपनी पुस्तकें हिन्दी में लिखी, हिन्दी को राष्ट्र की भाषा माना, स्वदेश-धर्म, स्वदेशी वस्तु के ग्रहण और प्रयोग पर ज़ोर दिया । आत्मा की स्वतन्त्रता का उद्घोष करते हुए उन्होंने स्वराज्य का महत्व बतलाया । इस प्रकार आर्य समाज ने सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण के माध्यम से राष्ट्रीयता के प्रचार का महत्वपूर्ण कार्य किया । आर्य समाज ने धार्मिक और सामाजिक सुधार केलिए संगठित और व्यवस्थित आन्दोलन किया जो हिन्दुओं में जातीय गौरव की भावना और एकता उत्पन्न करने में सहायक हुआ ।

रामकृष्ण मिशन

ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज ने जातीय भावना, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य अवश्य किया, किन्तु वे परम्परावादी हिन्दू जाति की

धार्मिक-सांस्कृतिक भावना को बहुत संतुष्ट नहीं कर सके । यह कार्य स्वामी विवेकानन्द {सन् 1862-1902} ने किया । उन्होंने हिन्दू धर्म और भारतीय वेदान्त दर्शन को उसके मूल रूप में पुनरुज्जीवित किया । धार्मिक परम्पराओं में विश्वास रखनेवाले हिन्दुओं में आत्मविश्वास उत्पन्न करने में स्वामी विवेकानन्द के विचारों और व्याख्यानों ने बहुत योग दिया । अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के आदर्शों के प्रचार केलिए उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसने आर्य समाज की तरह ही सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के साथ राष्ट्रीय भावना को उद्बुद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । इन्होंने साधना और त्याग द्वारा मानव कल्याण और समाज सेवा का उपदेश दिया । विवेकानन्द ने विश्व में भारतीय अध्यात्म और दर्शन की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का व्रत लिया । उन्होंने अंग्रेज़ी का ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही संस्कृत के ग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था । अत: देश-विदेश सर्वत्र भ्रमण करते हुए उन्होंने हिन्दू-धर्म और भारतीय दर्शन के महात्म्य की जैसी प्रस्थापना की वह कोई अन्य नहीं कर सका । आत्मा को ईश्वर का स्थान देकर उन्होंने मानव मात्र की एकता का उपदेश दिया । जातिगत संकीर्णता और साम्प्रदायिकता से हिन्दू धर्म को मुक्त करके उन्होंने मानव धर्म के रूप में उसे प्रतिष्ठित किया । वे समग्र भारत से हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठित करनेवाले ऐसे मनीषी थे जिन्होंने भारत के गौरव और आत्मविश्वास को परम्परावादी ढंग से पुन:स्थापित किया । लोकमंगल उनका लक्ष्य था और उनका धर्म मानव मात्र के अभ्युदय में विश्वास रखता था । आत्मा की मुक्ति के साथ भौतिक स्वातन्त्र्य, शारीरिक स्वतन्त्रता के महत्व की भी उन्होंने आवाज़ उठाई । स्वदेश-प्रेम और

देश-भक्ति के लिये उनके विचार प्रेरणा-स्रोत बन गये। उग्रवादी और क्रान्तिकारी नेता भी उनके विचारों से प्रभावित हुए। राष्ट्रभक्ति को उन्होंने ईश्वरीय माहात्म्य का पद दिया और रामकृष्ण मिशन के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सेवा, निष्ठा और भारतीयता की जो परम्परा चली वह युगों तक धर्म के द्वारा मानव और राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिये प्रेरणा प्रदान करने का कार्य करती रही।

थियोसोफिकल सोसाइटी

सन् 1879 में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना से भी भारतीय अध्यात्म के प्रचार के साथ सर्वधर्मसमन्वय का महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हुआ। ईसाई मिशनरियों की तरह विवेकानन्द और थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी सारी दुनिया में भारतीय आदर्श और उसके आध्यात्मिक माहात्म्य का प्रचार किया। साम्प्रदायिकता से मुक्त यह संस्था भी मानव मात्र के कल्याण में विश्वास रखती थी। श्रीमती ऐनी बसेण्ट ने इस संस्था को प्राणशक्ति दी। भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अभ्युत्थान में इस संस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐनी बेसण्ट आध्यात्मिक नेता ही नहीं रही, उन्होंने कांग्रेस का भी सन् 1910 से 1920 ई० तक नेतृत्व किया। इस प्रकार यद्यपि यह संस्था ब्रह्म-विद्या के ज्ञान के लिये स्थापित हुई, किन्तु यह भारतीय बुद्धिजीवियों को जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रेरणा देती रही। शिक्षा के क्षेत्र में भी इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

विभिन्न व्यक्तियों, क्षेत्रों और सम्प्रदायों द्वारा चलाये गये इन धार्मिक आन्दोलनों ने भारतीय मानस को बहुत दूर तक प्रभावित किया । इन धार्मिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों ने राष्ट्रीय जागरण की ऐसी लहर उत्पन्न की जिसने उत्तर से लेकर दक्षिण तक समस्त भारत भूमि को आप्लावित कर दिया ।

द्विवेदीयुगीन काव्य की पृष्ठभूमि

द्विवेदीयुगीन धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियां बहुत अंशों तक 19 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों का ही विकसित और विस्तृत रूप हैं । इसीलिए द्विवेदीयुगीन दृष्टिकोण और काल प्रवृत्तियों को समझाने केलिए 19 वीं शती के अन्तिम वर्षों की परिस्थितियों और काव्यदृष्टियों की जानकारी आवश्यक है । तत्कालीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप जो जागरूकता और लोकवादी दृष्टि भारतेन्दु युग के अन्तिम वर्षों में उत्पन्न हुई थी, वह 19 वीं शती का अन्त होते-होते सजग भारतीयों केलिए प्रेरणास्रोत बन गई और 20 वीं शती में उसका सुदृढ और विकसित रूप सभी क्षेत्रों में दिखलाई पड़ने लगा । भारतेन्दु युग में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति की जो गूंज सुनाई पड़ती थी, वह द्विवेदी युग का प्रमुख स्वर बन गई । जातीय भावना और स्वाभिमान इस युग के कवि मानस को आन्दोलित करने लगा ।

1. सामाजिक परिस्थितियाँ

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति हीनावस्था की पराकाष्ठा को पहुँच गई। देश गहरा सोया हुआ और अन्ध रूढ़ियों से ग्रस्त था।[1] समय की प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने के स्थान पर हिन्दू रूढ़िवाद के अन्ध-भक्त बने हुए थे। अँग्रेजों के आधिपत्य में हिन्दू धर्म शिथिल हो चुका था। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के शब्दों में, "ब्राह्मण अपने उच्च आसन से पतित हो चुके थे। और जिस धर्म के तत्वज्ञान के आगे संसार सिर झुकाता है, वे उसी को भूलकर दान लेने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठे थे। लेकिन अज्ञान और अंधकार से संवेष्ठित अशिक्षित भारतीय जनता अब भी उनके आगे माथा टेक रही थी[2]।" तत्कालीन भारत में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह जाति-पाँति का ढोंग, बालिकाओं का वध आदि कुरीतियाँ प्रचलित थीं। अछूतों की स्थिति शोचनीय थी, उन्हें सामाजिक अधिकार प्राप्त न थे। यद्यपि विधवाओं का करुण क्रन्दन असह्य था तथापि उन्हें पुनर्विवाह करने का अधिकार न था। परिणामतः विधवायें विधर्मियों के चंगुल में फँसती जा रही थीं। दहेज की प्रथा ने भी लोगों के नाक में दम कर दिया था। इसी कारण प्रायः बालिकाओं के वध की कुप्रथा चल रही थी। हरिदत्त वेदालंकार के अनुसार "मध्य तथा पश्चिमी भारत के राजपूतों, जाटों, मेवातों में कन्या का जन्म होते ही उसे

---

1. जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास प्रवेश, पृ. 718
2. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -: आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850-1900 ई.), पृ. 80

अफीम आदि देकर या अन्य उपायों से मार दिया जाता था, ताकि कन्या के विवाह के समय दहेज आदि के कारण जो अपमान सहन करना पड़ता है, तथा परेशान होना पड़ता है, उससे मुक्ति हो जाय ।[1] उन दिनों भारतीय स्त्रियों की अवस्था अत्यन्त हीन थी । बाल्यावस्था से वृद्धावस्था पर्यन्त उन्हें कष्ट ही कष्ट उठाना पड़ता था । उनके लिए आवश्यक शिक्षा और पठन-पाठन वर्जित था । शिक्षा के क्षेत्र में देशी भाषा, साहित्य, इतिहास, कला, धर्म, सांस्कृतिक आदर्शों की उपेक्षा थी । अंग्रेज़ी सभ्यता, भाषा और साहित्य की उच्चता का प्रचार करने केलिए लार्ड मैकाले ने जिस अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन करवाया था उससे भारतीय शिक्षित समाज अंग्रेज़ी सभ्यता के रंग में बुरी तरह से रंगा जा रहा था । पाश्चात्य शिक्षा देश के जीवन में एक शून्य सा उत्पन्न करती जा रही थी जो भावी राष्ट्रीय जीवन केलिए अहितकर थी । ऐसे समय में राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानंद, रामकृष्ण तथा विवेकानन्द प्रभृति महापुरुषों ने देश की सामाजिक एवं धार्मिक दुरवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट कर देश के जीवन का पुनरुद्धार करने का महान प्रयास किया । ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज ने अनेक प्रकार की कुरीतियों और कुप्रथाओं का खण्डन कर नूतन सुधारवादी विचारधारा को जन्म दिया । सामाजिक रूढियों का तिरस्कार होने से जीवन के मूल्य बदले तथा सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप व्यक्त हुआ । विभिन्न समाजों द्वारा आयोजित आन्दोलनों के फलस्वरूप अनेक सामाजिक कुरीतियों का सुधार हुआ । लोगों में मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रचार हुआ ।

---

1. भारत का सांस्कृतिक इतिहास हरिदत्त वेदालंकार, पृ.273

2. आर्थिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक चेतना और सामाजिक अवस्था के मूल में देश की जनता की आर्थिक स्थिति रहती है । अँग्रेज़ों के शासन के पूर्व और चाहे जो परिवर्तन हुए हों, भारत वर्ष की आर्थिक इकाई बराबर बनी रही । लेकिन ब्रिटिश आर्थिक व्यवस्था में भारतवर्ष एक उपनिवेश"मात्र और कच्चा माल देनेवाले देश के रूप में रह गया । भारत में अँग्रेज़ी राज्य एक अभूतपूर्व घटना थी । इस राज्य के आविर्भाव से वैश्यों की प्रभुता स्थापित हुई । डा॰ श्रीकृष्णलाल लिखते हैं "अँग्रेज़ी राज्य वस्तुत: व्यापारी-वर्ग का राज्य है और इसके फलस्वरूप इस युग के समाज में वैश्य-वृत्ति और वैश्य -वर्ग का प्रभुत्व स्थापित हो गया ।[1]" द्विवेदी-युग के प्रारम्भ में भारतीय जनता ब्रिटिश साम्राज्यवादी पूँजीवादी और औपनिवेशिक शोषण नीति का पूर्णतया शिकार बन चुकी थी । देशी रियासतों, राजाओं, नवाबों और ज़मींदारों के अन्तर्गत प्रजा की निर्धनता अत्यधिक बढ गयी थी । शिक्षित नवयुवक कृषिकार्य में रुचि नहीं लेते थे और उद्योग धंधों के अभाव के कारण नौकरियाँ भी दुर्लभ थीं । आलोच्य काल में वैधानिक सुधार तो अवश्य हुए, किन्तु उनका व्यावहारिक उपयोग बहुत कम हुआ । अत: उनसे देश की आर्थिक परिस्थिति में कोई अन्तर न पडा । सन् 1911 ई॰ में जब टाटा ने जमशेदपुर में लोहे और फौलाद का कारखाना खोला तथा अन्य उद्योग-धन्धों की नींव डाली तो सरकार ने

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास डा॰ श्रीकृष्णलाल, पृ॰7

उन्हें कुदृष्टि से ही देखा । प्रथम महायुद्ध तथा उसके पश्चात् भारतीय उद्योग धंधों से जो लाभ हुआ उसका अधिकांश भाग विदेशी पूँजीपतियों को प्राप्त हुआ । शेष भाग से भारतीय मिल-स्वामियों और श्रमिकों का कोष बढ़ा । लेकिन जिन मज़दूरों के कारण यह लाभ हुआ था उनकी दशा दयनीय ही रही । कांग्रेज़ ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के द्वारा अंग्रेज़ों की औद्योगिक नीति तथा आर्थिक शोषण का विरोध किया । देश में स्वदेशी आन्दोलन चलाया गया । इन आन्दोलनों के कारण देशी उद्योग-धंधों और व्यवसायों की कुछ प्रगति हुई । इस प्रकार द्विवेदी-युग के अन्तिम चरण में आर्थिक समस्या भी राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रधान अंग बन गयी । इस विषम आर्थिक स्थिति ने जन-जीवन और तत्कालीन साहित्यकारों को प्रभावित किया जिसका स्वरूप हम तत्कालीन साहित्य में देख सकते हैं ।

3· राजनीतिक परिस्थितियाँ

द्विवेदीयुगीन साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य की स्थापना प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम, भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, इंडियन-नेशनल कांग्रेस की स्थापना, बंग-भंग, मार्लेमिण्टो सुधार द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, प्रेस-एक्ट, प्रथम विश्व-युद्ध, जापान द्वारा रूस की पराजय, रौलेट एक्ट, जालियावाला बाग-हत्याकाण्ड, खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन आदि तथा उनसे उद्भूत अनेक देशी समस्यायें हैं ।

द्विवेदी-युग के प्रारम्भ की राजनीतिक परिस्थिति का बीजारोपण कुछ वर्ष पूर्व हो चुका था । अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी, औपनिवेशिक तथा पक्षपातपूर्ण नीति के फलस्वरूप अन्त में सन् 1857 का विद्रोह हुआ । सन् 1885 ई॰ में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से भारतीयों की बिखरी हुई राजनीतिक आकांक्षायें संगठित हुई । शीघ्र ही यह संस्था भारतीय राजनीति का मानदण्ड बन गई । अंग्रेज़ों की भेद-नीति अर्थनीति, कर नीति तथा शिक्षा नीति से असन्तोष की अग्नि भड़कती गयी । देश की ऐसी विपन्नावस्था में लोकमान्य गंगाधर तिलक ने राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण किया और उन्होंने अदम्य साहस और प्रतिभा के बल पर देश तथा कांग्रेस की राजनीति का स्तर ऊँचा करने का प्रयास किया । उन्होंने अंग्रेज-विरोधी-आन्दोलन चलाने केलिए जनवादी परम्पराओं का सूत्रपात किया । तिलक द्वारा प्रवर्तित राजनीति से अंग्रेज़ सरकार भयभीत हो उठी और उसने अनेक दमनकारी कानून बनाये ।

20 जुलाई सन् 1905 ई॰ को लार्ड कर्ज़न द्वारा आयोजित बंग-भंग की सरकारी घोषणा के प्रकाशित होते ही एक व्यापक जन-आन्दोलन प्रचलित हुआ । बंगाल-विभाजन की भारत विरोधी नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भारतीय जनता की आँखें खुल गई । वे अंग्रेज़ों को बडे संदेह की दृष्टि से देखने लगे । भीतर ही भीतर अंग्रेज़ी राज्य को उलटने केलिए क्रान्तिकारी संस्थाओं का निर्माण एवं विकास होने लगा । विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी का विकास और प्रचार आरम्भ हुआ । सन् 1906 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के

अवसर पर दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में स्वदेशी-आन्दोलन के पक्ष में प्रस्ताव पारित किया गया ।

सन् 1907 में सूरत कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस गरम दल और नरम दल में विभक्त हो गयी । गरम दल के नेता तिलक और नरम दल के गोखले हुए । गरम दल में क्रान्तिकारियों ने देश में हिंसात्मक तोड़फोड़ गुप्त संगठन चलाना आदि कार्यवाहियाँ शुरू कर दीं । साथ ही "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" यह घोषणा भी कर दी गई । सन् 1908 के सभाबन्दी कानून सन् 1909 में मार्लेमिन्टो सुधार कानून तथा सन् 1910 के प्रेस कानून तथा अन्य कारणों से विद्रोह की अग्नि और भी भड़क उठी ।

सन् 1914 से सन् 1918 तक प्रथम महायुद्ध चलता रहा । इस समय भारतवासियों ने युद्ध में ब्रिटेन का तन, मन तथा धन से साथ दिया जिसकेलिए अंग्रेज़ों ने भारत के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की । किन्तु युद्ध समाप्त होते ही पुनः भारतवासियों पर वही अत्याचार आरम्भ हो गये । उन्होंने डिफेंस आफ इण्डिया ऐक्ट बनाकर बिना अभियोग भारतीयों को कारावास में बन्द करना आरम्भ कर दिया । सन् 1919 ई० के गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट से भारतीयों को बड़ी निराशा हुई तथा उनकी आकांक्षाओं को आघात पहुँचा । उसी वर्ष रौलट एक्ट स्वीकृत होने से भारतीयों की स्वतन्त्रता का अधिकार छीन लिया गया । इस एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया । मार्शल ला के साथ-साथ अमृतसर के जालियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड से सारे विश्व के रोंगटे खड़े हो गये ।

सन् 1920 में कांग्रेस की बागडोर गांधीजी ने संभाली। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को संगठित करके असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। इस आन्दोलन के मुख्य सूत्र सरकारी उपाधियों का त्याग, सरकारी उत्सवों, न्यायालयों और सरकारी स्कूलों का बहिष्कार कौंसिल के निर्वाचन आदि कामों से सम्बन्ध-विच्छेद थे। सरकार ने बडे-बडे नेताओं - मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय आदि को कारागृह में फेंक दिया।

इस प्रकार द्विवेदी युग राजनीतिक उथल-पुथल का युग था। भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस युग की राजनीतिक स्थिति गंभीरतर हो गई। जीवन की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के मध्य द्विवेदी-युग की राजनीति ने एक ऐसे नवीन युग की अवतारणा की जिसमें पाश्चात्य आघात पाकर भारतीय आत्मा अपने को व्यक्त करने केलिए विचलित हो उठी।

4. धार्मिक परिस्थितियाँ

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के लोग नाना प्रकार के अन्धविश्वासों, रूढियों, आडम्बरों, शुष्क कर्मकाण्ड तथा भ्रान्त विचारों के मोह-जाल में फँसे हुए थे। उस समय नवीन दृष्टिकोण ने उनकी आँखें खोल दीं। पराधीनता की पीडा अनुभव करनेवाले विज्ञ भारतीयों ने निज देश की दुरवस्था देखी। उन्हें इसमें संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हुई। उसीके परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल समाज, रामकृष्ण समाज, आर्यसमाज आदि विभिन्न

धार्मिक आन्दोलनों का जन्म हुआ । आधुनिक भारत में नवयुग की अवतारणा इन धार्मिक आन्दोलनों के द्वारा प्रकट होती है । इससे भारत को प्राचीन गौरव का ज्ञान, वर्तमान अधोगति तथा भविष्य में विश्वास उत्पन्न हुआ । अंधविश्वासों और कुरीतियों के स्थान पर बुद्धिवाद और तर्क को प्रमुखता मिली । इस जागृति के मूल में नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण था । इसके फलस्वरूप भारत में प्रचलित मूर्तिपूजा, तीर्थ-यात्रा, पंडो-पुरोहितों का दान तथा उनके द्वारा प्रचलित कर्मकाण्ड और आडम्बरों में भी लोगों का विश्वास कम हो गया । शिक्षित वर्ग में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का त्याग और प्राचीन संस्कृति गौरव की भावना का प्रचार हो रहा था ।

यद्यपि हिन्दू धर्म विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त था, बहुदेववाद प्रचलित था, तथापि उस समय एक सर्वशक्तिमान ईश्वर में विश्वास हो चला था । शिक्षा-प्रसार के साथ-साथ लोग आर्यसमाजी विचारधारा को स्वीकार कर रहे थे तथा विशुद्ध अध्यात्मवाद जीवन का प्रधान संबल बनता जा रहा था । स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ने जो आध्यात्मिक प्रकाश विकीर्ण किया था वह अब जन-जीवन को आलोकित कर धार्मिक पुनर्संस्कार का मार्ग निर्देशन कर रहा था । इस आध्यात्मिक प्रकाश ने लोगों में विश्व प्रेम और जन सेवा की भावना और मानवतावाद के आदर्शों की प्रतिष्ठा की । बुद्धिवाद के विकास के कारण राम, कृष्ण और बुद्ध जो वीर-पूजा युग में अवतार माने जाते थे, अब महापुरुषों की श्रेणी में उतर आये । पश्चिम की भौतिकता पर विजय प्राप्त करने केलिए इस युग की भारतीय मनीषा अपने चिरपरिचित आत्म

ज्ञान का ब्रह्मास्त्र लेकर आगे बढ़ी । लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने भी भारतीय धर्म को सभी प्रकार की कुरीतियों और कुप्रथाओं से मुक्त कर उसका विशुद्ध-विश्व-कल्याणकारी रूप प्रस्तुत करने केलिए उन्हें प्रेरणा प्रदान की ।

नवोत्थान की परिस्थितियों ने भारत के रूप को बदल दिया । नयी आर्थिक व्यवस्था, पाश्चात्य शिक्षा और नवागत जीवन पद्धति के कारण इस देश की पहचान खो गयी थी । पर इस अवरोध ने ही यहां के प्रबुद्ध वर्ग को नये सिरे से अपनी पहचान करने केलिए बाध्य किया । यह पहचान नवीन और प्राचीन के अन्तर्विरोध में की गयी । अतः नवजागरण के अग्रदूतों ने पश्चिमीकरण के विवेक सम्मत परिवेश में अपनी संस्कृति को नये ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया । इसके फलस्वरूप भारतीय साहित्यकारों ने अतीत को सामने रखकर अपने को पुनः गौरवान्वित अनुभव किया और देश में उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना को ठोस रूप दिया । इस काल का अधिकांश साहित्य अपने को पहचानने तथा पाश्चात्य बन्धनों से छुटकारा पाने का इतिहास है । अतीत के गौरव को भारत की सभी भाषाओं में अभिव्यक्त किया गया । इस गौरव के मूल में नवोत्थान ही क्रियाशील था । इस काल के भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता दूसरा प्रमुख स्वर बन गया । हिन्दी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा ।

भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय कविताधारा

भारतेन्दु युग के कवियों ने जनता में नवीन दृष्टिकोण का प्रोत्साहन दिया । उन्होंने देश की राजनैतिक, सामाजिक,

धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर राष्ट्रीयता से सम्बन्धित विभिन्न स्थितियों को अपने काव्य का विषय बनाया । उनकी कविताओं में प्राचीन संस्कृति के प्रति गौरव देश-प्रेम, देश की आर्थिक दुर्दशा आदि भाव स्पष्ट व्यंजित होते हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने अतीत के प्रेरणादायी प्रसंगों और व्यंग्योक्तियों के माध्यम से भारतीय नवयुवकों में पुनर्जागरण का मंत्र फूंका था । राष्ट्रप्रेम से प्रेरित होकर इन्होंने हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान का राग आलापा है । इन्होंने अपने परिश्रम से राष्ट्रीय जीवन से पराङ्मुख हुई जनता को फिर से सजग कर देश तथा जाति के प्रति कर्त्तव्यशील बनाया । यह नवजागरण उन्होंने अनेक साधनों द्वारा प्रस्तुत किया । उनमें प्रमुख थे देश के प्रति ममता, अतीत का गौरव, वीर पूजा, आर्थिक दुर्दशा, राजभक्ति, वर्तमान के प्रति क्षोभ विदेशी शासन का विरोध आदि ।

1. देश के प्रति ममता

भारतेन्दु युग के कवियों ने अपने देश की प्राचीन संस्कृति का गौरवगान किया तथा अपनी जन्मभूमि की विशालता एवं गरिमा का वर्णन कर जनता के हृदय में देश के प्रति अटूट आकर्षण उत्पन्न किया ।

अपनी मातृभूमि की प्रशंसा "प्रेमघन" मुक्तकण्ठ से करते हैं । उन्हें अपने स्वर्ग समान देश पर गर्व है । वे रत्नों के भण्डार, शोभा के पुंज सरससुहावने देश का विजय-गान करते हैं

और इसकी अलौकिक विभूतियों की पुण्य-स्मृति करते है[1]। राधाकृष्ण गोस्वामी अपने देश की भौगोलिक सुन्दरता को व्यक्त करते हुए उसको अर्चना के पुष्प अर्पित करते हैं[2]।"

इस युग की कविताओं में जन्मभूमि के प्रति अनुराग भी झलकता है। "प्रेमघन" को अपनी जन्मभूमि के समान विश्व भर में कोई भी स्थान सुन्दर एवं सुखकर दिखाई नहीं देता[3]।

2· अतीत का गौरव

देश की वर्तमान परिस्थितियां अनुकूल न होने के कारण कवियों की दृष्टि अतीत की ओर गई। उस अतीत की ओर जो उज्ज्वल एवं गौरवपूर्ण था और जिस पर देशवासियों की आशाएं अभी भी केन्द्रित थीं। कवियों ने भव्य अतीत को जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर उसे वर्तमान काल की शोचनीय दशा का बोध कराया। कवियों को अपनी प्राचीन सभ्यता संस्कृति तथा कला कौशल सभी पर अभिमान है। आज उन सबके नष्ट-भ्रष्ट हो जाने के कारण उनकी आत्मपीडा की कोई सीमा नहीं रहती। उन्हें विचार है कि एक समय था कि यह देश जगद्गुरू कहलाता था और इसकी सभ्यता तथा संस्कृति जगन्मान्य थी। परन्तु वही अग्रगण्य देश आज सबसे पिछडा हुआ दुर्दशा की अवस्था में पडा अपने पर स्वयं आँसू बहा रहा है[4]।"

1· भारत वन्दना, प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ·629
2· आधुनिक काव्य धारा, पृ·67
3· प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ·7
4· भारत दुर्दशा - भारतेन्दु नाटकावली, पृ·597

3· वीर पूजा

भारतेन्दु की कविता में राष्ट्रीय भावों का एक स्रोत सा उमड़ता दिखाई देता है । वे भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करनेवाले सजग कलाकार थे । इसीलिए उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वत्र मिलता है । भारतेन्दु युग के कवियों ने अपनी जन्मभूमि की ही प्रशस्तियाँ प्रस्तुत नहीं की वरन् इस भूभाग पर जन्म लेनेवाले अनेक युद्धवीर, धर्मवीर तथा दयावीर भी उनकी लेखनियों द्वारा प्रशंसित हुए । भारतेन्दु का कवि अपने पूर्वकालीन वीरों को आकुल होकर खोजता फिरता है । वह भारत की भूमि पर पुन: उनके दर्शन करना चाहता है जिन्होंने अपने अपार बाहुबल अनुपम दानशीलता तथा विचित्र बुद्धिचातुर्य के कारण विश्वभर में अमर ख्याति पाई थी । परन्तु वे सब आज कहाँ ।"[1]

4· आर्थिक दुर्दशा

भारतेन्दुयुगीन कवि अपने प्राचीन भारत की आर्थिक झलक भी देते हैं । यह वही भारत है जहाँ एक समय कंचन की वर्षा होती थी । यहाँ का वाणिज्य-व्यापार तथा कलाकौशल विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र हुआ करता था । परन्तु वह सारा वैभवशाली सुन्दर दृश्य न जाने कहाँ लुप्त हो गया ?

1· भारतेन्दु ग्रन्थावली - द्वितीय खंड, पृ·684

दूसरों की भूख की ज्वाला को शान्त करनेवाला यही देश आज स्वयं निराश्रय है । प्रतापनारायण मिश्र क्रन्दन की कविता पंक्तियों में इस आर्थिक अधोगति का करुणात्मक दृश्य प्रस्तुत करते हैं[1] ।"

5· राजभक्ति

भारतेन्दु युग के कवियों की कविता में राजभक्ति की भावना प्रकट होती है । इन कवियों की राजभक्ति शासकों की कोरी चाटुकारिता नहीं थी वरन् उनकी राजभक्ति भी देशभक्ति से प्रेरित थी । उनकी कविताओं में यद्यपि ब्रिटिश शासन की प्रशंसा विद्यमान है परन्तु उनमें भी देश-प्रेम झलकता है । वे ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई सुविधाओं का तो स्वागत करते हैं परन्तु अपने देश की आर्थिक दुर्दशा का वर्णन करना भी वे नहीं भूलते ।

बदरीनारायण चौधरी अंग्रेज़ी राज्य की बरकतों से प्रभावित हैं और अनेक सुख सुविधाओं को देनेवाले राज्य के प्रति आभार प्रकट करते हैं[2] ।

वे ब्रिटिश राज की प्रशंसा मात्र ही नहीं करते, उन्हें तो क्षोभ है कि विदेशियों के अन्याय एवं अत्याचार के कारण भारतीय जन-जीवन का पतन हो गया । वे शासकवर्ग की अर्थ

1· क्रन्दन, कविता कौमुदी, पृ·65

2· हार्दिक हर्षादर्श - प्रेमघन सर्वस्व §प्रथम भाग§,पृ·273

शोषण की नीति की भी आलोचना करते हैं । जिसके परिणाम-स्वरूप भारतवासी दो जून भोजन को भी तरसते हैं[1] ।

6· वर्तमान के प्रति क्षोभ

भारतीय जनता को अपनी वर्तमान हीनावस्था से पूर्ण परिचित कराने केलिए भारतेन्दु युग के कवियों ने देश की निर्धनता तथा विवशता के यथार्थ चित्र सबके सम्मुख प्रस्तुत किए । वे चाहते थे कि जनसाधारण तक को यह अनुभूति हो सके कि उनकी परतन्त्रता का कारण क्या है, ताकि वे भी प्रबुद्ध होकर स्वतन्त्रता केलिए संघर्ष करने के योग्य हो सकें ।

विदेशियों ने इस देश में वाणिज्य-व्यापार का ही सर्वनाश नहीं किया वरन् कृषकों की खेती बारी तक की व्यवस्था भी भंग हो गई थी । उनके कुशासन में चारों ओर महँगाई भूख तथा अकाल का साम्राज्य था । "प्रेमघन" भारत की दयनीय दशा का यथार्थ वर्णन करते हैं[2] ।

7· विदेशी वस्तुओं का विरोध

भारतेन्दु युग के कवियों ने भारतवासियों को स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी पदार्थों के बहिष्कार की आवश्यकता का महत्व बताया । कवियों ने विदेशियों के

1· हार्दिक हर्षादर्श - प्रेमघन सर्वस्व §प्रथम भाग§, पृ·285-86
2· कविता कौमुदी - प्रेमघन, पृ·38

अनुकरण को दासता का कारण बताकर समाज में एक ऐसा वातावरण निर्माण कर दिया कि प्रत्येक भारतवासी में एक उत्तेजना सी आने लगी और वह सजग तथा सचेत होकर राष्ट्रीय भावों से प्रेरणा प्राप्त कर अपने कर्त्तव्य को पहचानने में समर्थ होने लगा ।

भारतेन्दु विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी सभ्यता के प्रति विरोध की भावना प्रकट करते हैं । यहाँ तक कि उन्होंने आवेग में आकर विदेशी वस्तुओं पर जान देनेवाले भारतवासियों को "विदेशी जुलाहों के गुलाम" कहकर उनकी कड़ी आलोचना की है -

"मारकीन मलमल बिना चलत कछु नहिं काम
परदेसी जुलहान के मानहुँ भए गुलाम ।
परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस,
परबस ह्वै कब लौं कहौ रहिहौ तुम ह्वै दास[1] ।"

प्रेमघन ने विदेशी वेष-भूषा को अपनानेवालों तथा विदेशी सभ्यता का आचरण करनेवालों पर कटु व्यंग्य किए हैं । उन्होंने पश्चिमी सभ्यता के पुजारियों की खूब खबर ली है जो भारतीय होकर भी अपने देश तथा अपनी सभ्यता के प्रति घृणा प्रकट करते हैं[2] ।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन कवियों ने एकता के उन सभी तत्वों की ओर भी संकेत किया जिनके द्वारा राष्ट्रीयता की भावना सुदृढ हो सकती है । भारतेन्दु युग के कविगण कभी

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ.735-737
2. आर्याभिनन्दन - प्रेमघनसर्वस्व, पृ.385

आर्थिक दुर्दशा, कभी स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार कभी औद्योगिक उन्नति और इसी प्रकार जातीय एकता, देश-प्रेम आदि विविध रूपों में अपने राष्ट्रीय विचारों की अभिव्यक्ति करते रहे । उनका हृदय राष्ट्रीय उमंग से भरपूर था और वे जनता तक भी एक राष्ट्रीय संदेश पहुँचाना चाहते थे । उनकी कविताओं में देश की वास्तविक दशा झलकती है और राष्ट्रीय जीवन को उन्नति की ओर ले जाने केलिए पर्याप्त उपकरण विद्यमान हैं ।

कांग्रेस की स्थापना

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 ई॰ में भारतीयों को एक मंच पर गठित करने के उद्देश्य से की गई थी । इसके संस्थापक "श्री ह्यूम नामक अंग्रेज़ थे । वे चाहते थे कि भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से एक होकर इस संस्था के अन्तर्गत कार्य करें । आरंभ में इस संस्था का कार्य केवल भाषण देने और कुछ प्रस्ताव पारित करने तक ही सीमित रहा । बाद में बाल गंगाधर तिलक सरीखे लोगों के आगमन से इस संस्था में प्राण आ गए । इस संस्था के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्षों में आमूल चूल परिवर्तन आ गया । सन् 1905 ई॰ में बंगाल विभाजन के समय यह संस्था और ज्यादा सतर्क हो गई । इसने बंग-विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन चलाकर तत्कालीन भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की चेतना भर दी । अब इसका लक्ष्य स्वाधीनता की प्राप्ति हो गया था । इसके लक्ष्य को देख कर आज़ादी के परवाने इस संस्था में सम्मिलित हो गए । "महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने अहिंसा और आन्दोलनों के बल पर चलकर इसके लक्ष्य को पूरा किया ।

बंगाल विभाजन के समय पर कांग्रेस के नेतृत्व में जो हलचल मची उसकी देखादेखी सम्पूर्ण भारत में विदेशी सरकार के विरुद्ध रोष बढ़ने लगा और एक देशव्यापी "स्वदेशी आन्दोलन" प्रारम्भ हो गया जिसका मुख्य लक्ष्य विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार पर बल देना था। कलकत्ता, बम्बई तथा अन्य बडे-बडे नगरों में विदेशी माल के बडे-बडे गोदाम जलाए गए और जनता में अपने देश की बनी वस्तुओं के प्रति अनुराग उत्पन्न किया गया। विदेशी वस्तुओं का विच्छेद अपने देश की राजनैतिक एकता तथा स्वतन्त्रता का सफल साधन सिद्ध हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा के विकास केलिए "बंग जातीय परिषद् (Bengal Council of National Education) की स्थापना हुई। इस परिषद् के परिश्रम से राष्ट्रीय जागृति में बहुत सहायता मिली।

विभिन्न राजनैतिक आन्दोलन तथा अन्य परिस्थितियाँ

बंग-भंग आन्दोलन के पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ती उग्रता का एक परिणाम यह हुआ कि लार्ड कर्जन को भारत छोड़कर वापस जाना पडा। उसके स्थान पर लार्ड मिण्टो नये वाइसराय बनाये गये। उधर स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है का नारा भारतीय स्वातन्त्र्य प्रेमियों का महामंत्र बन गया। कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन में स्वतन्त्रता के इस मंत्र की घोषणा के बाद तो कांग्रेस की एकमात्र माँग "स्वराज्य प्राप्ति ही हो गई। सुविधा, शासन सुधार, प्रशासन में भाग आदि माँगें महत्वहीन हो गई। "स्वदेशी" और "स्वराज्य", भारतीय

राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक बन गये । कांग्रेस में उदारपंथियों और उग्रपंथियों का मतभेद बढ़ता गया । यह मतभेद इतना बढ गया कि कई बार अवांछित संघर्ष होते होते बचे । इस स्थिति का लाभ उठाकर अंग्रेज़ों ने नरम दल के लोगों का महत्व बढ़ाने केलिए "मिण्टो मारले सुधार कानून द्वारा शासन में सुधार किये । वाइसराय और प्रान्त की प्रबन्ध समिति में एक-एक भारतीय प्रतिनिधि लिया गया । किन्तु इस प्रतिनिधि के चुनाव में ही साम्प्रदायिकता का विष बो दिया गया । इसके साथ ही उग्रपंथियों और क्रांतिकारियों का कठोरता से दमन किया गया । इस दमन चक्र की प्रतिक्रिया के रूप में सन् 1912 लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया । क्रान्तिकारियों की उग्रता और अंग्रेज़ों का प्रतिरोधात्मक दमन निरन्तर बढ़ता ही गया । सन् 1915 में गोखले की मृत्यु के बाद से कांग्रेस में भी उग्रदल का प्रभाव बढ़ता गया । तिलक और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने "होमरूल लीग" की स्थापना की जिसने भारतीयों में नये उत्साह का संचार किया । अंग्रेज़ जितनी नृशंसता से आन्दोलन को कुचलने का प्रयास करते रहे, उतनी ही उग्रता और तीव्रता से भारतीय स्वाधीनता का आन्दोलन बढ़ता रहा ।

इस बीच अंग्रेज़ों की साम्प्रदायिक फूट की नीति के परिणामस्वरूप सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और सन् 1907 में करांची में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ । सन् 1911 ई• में भारत की राजधानी कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली हो गई और बंग-भंग समाप्त कर दिया गया ।

सन् 1914 में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया । इसी समय अफ्रीका से सत्याग्रह आन्दोलन का अनुभव लेकर गांधीजी भारत आये । गांधीजी ने महायुद्ध में अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों के सहयोग की मांग का समर्थन किया । उन्होंने भारतीय जनता से युद्ध में सहयोग का अनुरोध किया । अंग्रेज़ों ने भी अपनी स्वार्थ-पूर्ति केलिये इस समय उदार और नरम नीति का अनुसरण किया । इस नरम-नीति ने फिर यह भ्रम उत्पन्न किया कि सम्भवत: अंग्रेज़ों का हृदय-परिवर्तन हो गया है । सन् 1916 में गांधीजी और पं० मदनमोहन मालवीय ने मज़दूरों को बाहर भेजने की प्रथा का विरोध किया, 1917 ई० में अपनी नरम-नीति का परिचय देते हुए अंग्रेज़ों ने इसे मान लिया । इसी बीच सन् 1916 में खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ । तुर्की के विरुद्ध अंग्रेज़ों के युद्ध के कारण भारतीय मुसलमान नाराज़ थे । इस आन्दोलन में अंग्रेज़ों ने मौलाना शौकत अली और मौलाना मुहम्मद अली को गिरफ्तार कर लिया । सन् 1916 में लखनऊ में हुई मुस्लिम लीग की सभा ने हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया किन्तु यह एकता की भावना सामयिक समझौता मात्र थी । अंग्रेज़ों ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व देकर जो साम्प्रदायिक विष बो दिया था, वह बढ़ता ही गया ।

हिन्दुओं की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना के साथ अंग्रेज़ों की फूटनीति के कारण मुसलमान पृथकतावादी दृष्टिकोण अपनाने लगे । उन्होंने अपना अलग राजनीतिक संगठन ही नहीं बनाया, वे स्वतन्त्र साहित्यिक, धार्मिक और शैक्षणिक संस्थाओं की भी मांग करने लगे । अलीगढ में उनके लिये अलग विद्यालय

इसी का परिणाम था । इस साम्प्रदायिक पार्थक्य के कारण कांग्रेस में मुसलमानों की संख्या घटती गई और इसी के कारण सन् 1916 में कांग्रेस को मुस्लिम लीग से समझौता करना पड़ा ।

प्रथम महायुद्ध (सन् 1914-1918 ई॰) में अंग्रेजों की सहायता इस आशा से की गई थी कि अंग्रेज भारत को स्वतन्त्र कर देंगे । सन् 1919 में युद्ध समाप्त हुआ । स्वराज्य के स्थान पर उपहार स्वरूप मिला "रौलेट एक्ट" जिसके अनुसार बिना मुकदमा चलाये किसी को गिरफ्तार किया जा सकता था । इन कानूनों को वापस लेने का गांधीजी का सारा प्रयास निष्फल रहा । तब उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन चलाया और 6, अप्रैल सन् 1919 को सारे देश में यह आन्दोलन फैल गया । सन् 1914 में ही तिलक भी माण्डले जेल से छूटकर आये और उन्होंने पूना में होमरूल लीग की स्थापना की । ऐनी बसेन्ट ने मद्रास में इसका अखिल भारतीय केन्द्र स्थापित किया । इंग्लैण्ड में "सहायक होमरूल लीग" गठित किया गया । स्वराज्य प्राप्ति की चेतना बढ़ती गई, सारे देश के युवकों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा । होमरूल लीग ने भाषा के आधार पर प्रान्तों का विभाजन स्वीकार किया । प्रान्तों का पुनर्निर्माण और तिरंगा इसी की देन है ।

सन् 1919 में अपने व्यापक सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा गांधीजी ने भारतीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रारम्भ की । सत्याग्रह आन्दोलन जितना व्यापक और तीव्र होता गया उतना ही अंग्रेजों का प्रतिशोधात्मक, दमनात्मक रवैया भी उग्र होता गया । देशभर में दंगे होने लगे ।

सन् 1919 में अमृतसर में गांधी तिलक विवाद हुआ और वे एक दूसरे से अलग हो गये । भारतीय राजनीति पर गांधीजी का प्रभाव पडा और यही से गांधी-युग की शुरूआत होती है । आन्दोलनों और दमनात्मक कार्रवाई की उग्रता के परिणामस्वरूप जालियांवाला हत्याकाण्ड हुआ जिसमें पंजाब के गवर्नर डायर ने कई हज़ार निहत्थे लोगों को गोलियों से भुनवा दिया । अगस्त सन् 1920 में तिलक दिवंगत हो गये । सन् 1920 में ही असहयोग आन्दोलन ने सार्वजनिक रूप ले लिया जिसे कांग्रेस ने सन् 1919 में देशभर में नयी कौंसिलों के विरोध द्वारा प्रारम्भ किया था । असहयोग आन्दोलन की घोषणा 1, अगस्त सन् 1920 को की गई और सितम्बर के कांग्रेस अधिवेशन में उसे स्वीकार कर लिया गया । विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और सरकारी उपाधियां लौटाने का कार्यक्रम इसके अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया ।

इस प्रकार सन् 1920 तक भारतीय राजनीति में संघर्ष और आन्दोलन का रूप उग्र होने के साथ ही व्यापक भी हो गया । स्वतन्त्रता केलिये प्राणों की आहुति देनेवालों की संख्या बढ़ती गई और "स्वदेशी" तथा "स्वराज्य" की चेतना जनता की नस-नस में इस तरह व्याप्त हो गई कि किसी भी दमन द्वारा उसे समाप्त करना असम्भव हो गया । दमन के साथ यह चेतना और बढती ही गई । इसी राजनीतिक वातावरण में द्विवेदी युग का साहित्य लिखा गया । राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस ने जो कार्य प्रारम्भ किया, जन-मानस को आन्दोलित करने में जो भूमिका अदा की, वहीं भूमिका "सरस्वती" पत्रिका को प्रमुख साहित्यिक-मंच बनाकर द्विवेदी-युग के कवियों और साहित्यकारों ने की । पं॰महावीर प्रसाद द्विवेदी इस साहित्यिक आन्दोलन के नेता और सूत्रधार बने ।

गाँधीजी का आगमन

गाँधीजी का आगमन भारतीय राजनीति में एक विशेष महत्व रखता है । 1915 में जब वे देश में लौटे तो कुछ समय केलिए कांग्रेस से बाहर रहकर अपनी सत्य तथा अहिंसा की शक्ति से महत्वपूर्ण कार्य करते रहे । "गिरमट-प्रथा" का बन्द करना गाँधीजी का एक सफल कार्य था । उन्होंने देश भर में भ्रमण करने के उपरान्त इस प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाने की अन्तिम तिथि 31 जुलाई, 1917 निश्चित की । परन्तु इस तिथि के पूर्व ही सरकार ने इस प्रथा को बंद करने की घोषणा कर दी । इसके पश्चात् 'तीन कठिया' की प्रथा को भी समाप्त करने का बीडा गाँधीजी ने उठाया । यह प्रथा चम्पारन में नील की खेती के सम्बन्ध में थी । गाँधीजी ने बिहार प्रान्त की जनता की अवस्था का स्वयं निरीक्षण किया तथा उनकी पुकार को सुना । परिणामत: सरकार की ओर से अनेक बाधाओं के होते हुए भी वे इस प्रथा को समाप्त करवाने में सफल हुए । सन् 1918 में खेड़ा और अहमदाबाद के पीड़ित कृषकों तथा मज़दूरों को भारी कष्ट से मुक्ति दिलवाई । इन्हीं विलक्षण सफलताओं के कारण गाँधीजी की प्रतिष्ठा एवं सम्मान समस्त जनता में बढ़ने लगा ।

सन् 1919 ई० में युद्ध समाप्त हो गया । लाखों की संख्या में भारतीय जी - जान से लडे और करोडों रुपया इन्होंने युद्ध के व्यय केलिए दिया । इसके उपलक्ष्य में वे स्वराज्य के स्वप्न ले रहे .थे परन्तु उन्हें अपनी वीरता तथा उदारता केलिए कुछ

और ही उपहार मिला, वह था "रोलट ऐक्ट" जिसके अनुसार सरकार किसी को भी मुकदमा चलाए बिना गिरफ्तार कर सकती थी । गांधीजी ने इसके विरुद्ध सत्याग्रह का शंखनाद करने की ठानी । देश के कोने कोने में 30 मार्च तथा 6 अप्रैल को हड़तालें हुई, कई स्थानों पर विद्रोह की ज्वाला भड़की तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया । सरकार ने भी इसको दबाने में कोई कसर न छोड़ी । मार्शल ला लगाए गए तथा अनेकों अमानवीय उपायों का प्रयोग किया गया । इस दमन-नीति को अपनाते हुए जर्नल डायर ने जालियांवाला बाग में गोली चलवा कर भारत माता के सैकड़ों प्रि य सपूतों को आन की आन में मौत की नींद सुलवा दिया । ब्रिटिश सरकार के क्रूर कृत्यों की कोई सीमा नहीं थी अतः इसके अत्याचारों के कारण देश में हाहाकार मच गया । इधर सरकार का विनाशकारी दमनचक्र भारतीय जनता पर तीव्रता से चलता जा रहा था तो उधर जनता का मुँह बन्द करने केलिए सन् 1919 में कुछ शासन-सुधारों की घोषणा की गई । परन्तु जनता कुछ और ही अरमान लिए बैठी थी अतः इन सुधारों से उसे सन्तोष न हुआ वरन् इन सुधारों ने हिन्दुस्तानियों के जले घाव पर नमक लगा देने का काम किया । सारा देश अंग्रेजों के विरुद्ध क्रोधाग्नि से भड़क उठा । हिन्दुस्तान का यह राष्ट्रीय अपमान था ।

यह सब देखकर गांधीजी ने 1, अगस्त 1920 को वायसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपील की कि भारतीय जनता पर नृशंसकारी दमन नीति को बंद किया जाए, जालियांवाला हत्याकांड की जाँच करवाई जाए, खिलाफत के सम्बन्ध में कोई सन्तोषजनक नीति अपनाई जाए तथा अन्य कई

कानून तथा प्रतिबन्ध हटाकर भारतीय जनता को आश्वस्त किया जाए । परन्तु वायसराय की ओर से इन सभी बातों की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया गया । वास्तव में यहीं से असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ समझना चाहिए । देश के कोने कोने से हिन्दू तथा मुसलमान बिना किसी भेदभाव के बलिवेदीपर अपना सर्वस्व निछावर करने केलिए उमड पडे । जन-जन में देश प्रेम तथा राष्ट्रभक्ति का समुद्र हिलोरे ले रहा था । सहस्रों व्यक्ति जेल भेजे गये । कितने ही स्थानों पर निहत्थे भारतवासी लाठियों तथा गोलियों की बोछार सहन कर चुके थे किन्तु देश की स्वतन्त्रता के इच्छुक दीवानों में उत्साह क्षीण नहीं हुआ । पहले से भी अधिक उत्साह के साथ असंख्य स्त्री तथा पुरुष बाल तथा वृद्ध इस स्वतन्त्रता के महायज्ञ में स्वाहा होने केलिए अग्रसर होने लगे ।

गांधीजी का नेतृत्व पाकर कांग्रेस का स्वरूप परिवर्तित हो चुका था । अब वह केवल शिक्षित वर्ग की संस्था न होकर प्रत्येक भारतवासी का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक सार्वजनिक संस्था बन चुकी थी । निर्धन मजदूर - किसान से लेकर धनी-शिक्षित सभी इसमें सम्मिलित थे । गांधीजी का सत्य तथा अहिंसा का संदेश सबने अपनाया । जनता में गांधीजी के सिद्धांतों के अनुसार विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग बढने लगा । समस्त देश राष्ट्रीय भावों की उमंग से मचल उठा ।

13, मार्च सन् 1922 को गांधीजी पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें 6 वर्ष का कारावास दे दिया गया। यद्यपि गांधीजी का पथ शान्ति का पथ था परन्तु इनके विचारों का जनता पर जो प्रभाव पडा वैसा कभी भी किसी नेता का नहीं पडा था। उनके बन्दी किए जाने पर उनकी इच्छानुसार शान्ति का वातावरण ही बना रहा परन्तु जनता के हृदय में वेदना का ही साम्राज्य था। यद्यपि वे थोडे समय केलिए कार्यक्षेत्र से पृथक कर डाले गए परन्तु जिस राष्ट्रीय एकता का सूत्रपात उन्होंने किया वह उत्तरोत्तर दृढ होती गई।

द्विवेदीयुगीन काव्य पर राष्ट्रीयता का प्रभाव

वर्णित राजनीतिक वातावरण का सम्पूर्ण प्रभाव द्विवेदी युगीन कविता पर देखा जा सकता है। भारतेन्दु में तो राष्ट्रीयता के बीज बोये ही जा चुके थे जो द्विवेदीयुग में आकर पनपते थे। इसके अलावा इस वातावरण का सामाजिक प्रभाव भी इस युग की कविता पर देखा जा सकता है। वीरपूजा की भावना, प्राचीनता की ओर झुकाव सुधारात्मक प्रयत्न, गान्धी और गान्धीवाद इस साहित्य में दिखाई पडनेवाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं। इस समय की विभिन्न द्विवेदीयुग की विविध परिस्थितियों ने भारतीय जीवन में मानस क्रान्ति उपस्थित की। फलस्वरूप जन मानस का क्षेत्र विस्तृत हो गया। भारतेन्दुयुगीन साहित्य की अपेक्षा द्विवेदीकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वर और भी अधिक तीव्र तथा प्रखर हो उठा। राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत कविताएँ सर्वाधिक मात्रा में इसी युग में लिखी गई। राष्ट्रीय भावना की

उत्तेजना में राजभक्ति का स्वर अब मंद पड गया था । अंग्रेज़ों की नीति और शोषण के प्रति लोगों में अब मात्र उदासीनता ही नहीं रह गई, वरन् उससे मुक्ति का उपाय भी सब मिलकर सोचने लगे । फलत: इस युग के कवियों में राष्ट्रीय चेतना अत्यधिक सशक्त एवं सबल रूप में परिलक्षित होती है। आर्य-समाज, रामकृष्णमिशन थियोसोफिकल सोसाइटी आदि भारतीय संगठनों तथा बुद्धिवाद, जनवाद, मानवतावाद, स्वच्छन्दतावाद आदि की पश्चिमी लहर ने विचारों में युगान्तर उपस्थित किया । जन-मानस को प्रतिबिम्बित करनेवाले काव्य विषय में उनकी सहज एवं सफल अभिव्यक्ति हुई । भारतेन्दु-युग में काव्य के विषय में क्रान्ति तो अवश्य हुई थी, लेकिन जीवन की यथार्थता का वर्णन उतना खुलकर नहीं हो सका । द्विवेदीयुग में जीवन की विविध घटनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को काव्य-विषय में नया स्वरूप प्राप्त हुआ । वह स्वरूप भारतेन्दु युग के काव्य की तरह अल्प व्याप्त नहीं था, बल्कि वह इस युग में विस्तृत हो उठा । राष्ट्रीय चेतना के उस रूप को द्विवेदीयुगीन कवियों ने विभिन्न अभिव्यक्तियों के रूप में प्रकट किया ।

द्विवेदीयुग के सबसे उल्लेखनीय कवि हैं अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और मैथिलिशरण गुप्त । हरिऔध ने अपने प्रियप्रवास, वैदेहीवनवास, आदि काव्यों द्वारा स्वराष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, जाति-सेवा, लोकहित आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति की । हरिऔध ने अपने काव्य में जाति-विनाशक, धर्म-विनाशक, देशद्रोहियों एवं छुआछूत फैलाने वाले समाज कंटकों को

यथेष्ट मात्रा में फटकारा है । जहाँ एक ओर उन्होंने समाज-सुधारक, देशभक्त, जाति का उद्धार करनेवाले धर्मोपदेशक तथा सच्चे शूर वीरों की प्रशंसा की है वहीं उन्होंने देश-द्रोहियों, राष्ट्र विरोधियों एवं समाज को कलंकित करनेवालों की तीव्र शब्दों में भर्त्सना भी की है । इस प्रकार उन्होंने देशद्रोहियों का स्पष्ट विरोध करके जनजागरण का ऐसा प्रभावी मंत्र फूंका है कि उससे पाठकों के हृदय में क्रांति एवं विद्रोह की भावना अनायास जागृत होती है ।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने अनेक काव्यों में राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावों का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार किया । जनजीवन में राष्ट्रीय भावों को जगाने का प्रयास करनेवालों में पं॰रामचरित उपाध्याय, पं॰नाथूराम शंकर शर्मा, पं॰गयाप्रसादशुक्ल "सनेही", लाला भगवानदीन, पं॰रामनरेशत्रिपाठी आदि उल्लेखनीय हैं ।

<u>द्विवेदीयुगीन काव्य पर गाँधीजी का प्रभाव</u>

हिन्दी साहित्य की क्षिप्र प्रगति एवं विकास में गाँधीजी की व्यापक विचारधारा का महत्वपूर्ण योग है । उनके नेतृत्व में असंख्य देशवासियों ने स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने केलिए बलिपथ पर चढना स्वीकार किया था । उनके द्वारा संचालित

इस अपूर्व क्रान्ति ने कवियों को भी क्रियात्मक क्षेत्र की ओर प्रेरित किया । इन सब की अमिट छाप उनकी कृतियों में अंकित है ।

द्विवेदीयुग की कविता जीवन की भूमि पर चलती है, उसमें जीती है । वह सामूहिक कर्म-पथ पर अग्रसर होने की वास्तविक प्रेरणा जागृत करती है । निस्सन्देह इस रूप में द्विवेदी युग के काव्य की प्रमुख धारा राष्ट्रीयता है । कवियों का विशेष आग्रह साम्प्रदायिक सामंजस्य और सदिच्छा में दिखाई पड़ता है । इस समय सामूहिक चेतना की जागरूकता का आविर्भाव हुआ । राष्ट्र केलिए मर मिटने की भावना गान्धी विचारधारा से प्रेरित अहिंसक राष्ट्रीय भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण आदि राष्ट्रीयता के नये रूप इस युग में उभर कर आये । इस युग की राष्ट्रीयता प्रमुख रूप से राजनैतिक रही । इस काल में देश के राजनैतिक आन्दोलन ने वस्तुत: जन आन्दोलन अर्थात् अपने पूर्ण अर्थ में राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ग्रहण किया । इसी जन-आन्दोलन को इस युग की कविता ने अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

निष्कर्ष

अंग्रेज़ों के सम्पर्क के फलस्वरूप भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से एक नवचेतना की लहर फैल गई । अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार और प्रभाव से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग हुई । सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के परिणामस्वरूप

देश में एक नया सांस्कृतिक मोड आया । सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता का भाव विकसित होने लगा । तत्कालीन सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भारतेन्दु युगीन कवियों में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति की गूंज सुनाई पड़ने लगी । उन्होंने राष्ट्रीयता से सम्बन्धित विभिन्न स्थितियों को अपने काव्य का विषय बनाया । यह नवजागरण उन्होंने कई साधनों द्वारा प्रस्तुत किया । कांग्रेस की स्थापना एवं अन्य विभिन्न राजनैतिक आन्दोलन ने इस धारा को आगे बढा दिया । इनमें गांधीजी के नेतृत्व का असर स्पष्ट लक्षित होता है । भारतेन्दुयुगीन राष्ट्रीयता द्विवेदीयुग में अधिक तीव्र एवं प्रखर हो उठी । गान्धी विचारधारा से प्रेरित अहिंसक राष्ट्रीय भावना इस युग में उभर कर आयी । अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", मैथिलिशरण गुप्त जैसे कवियों ने इस राष्ट्रीयता को वाणी प्रदान की ।

तृतीय अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य और राष्ट्रीय चेतना

तृतीय अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य और राष्ट्रीय चेतना

द्विवेदीयुग

हिन्दी साहित्य में द्विवेदीयुग सन् 1900 से 1920 तक माना जाता है । आधुनिक हिन्दी कविता के विकासक्रम में भारतेन्दुयुग के परवर्ती और छायावादी युग के पूर्ववर्ती रचनाकालको द्विवेदीयुग के नाम से अभिहित किया गया है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अपने आधुनिक साहित्य में भारतेन्दु युग सन् 1900 तक मानते हैं । छायावादी युग के सम्बन्ध में कहे तो उनके मतानुसार इसकी शुरुआत 1920 से होती है[1] ।

---

1. आधुनिक साहित्य - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

तो बीच का समय 1900 से 1920 तक महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का शासनकाल था जिनकी छत्रछाया में अनेक कवियों ने कविता के नये मानों का अनुसरण करते हुए पुरानी लीक पर चलते हुए भी आधुनिक हिन्दी को एक नया मोड प्रदान कर दिया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अतिरिक्त अन्य कई विद्वानों ने भी द्विवेदीयुग की चर्चा करते समय करीब इसी समय को इस विशेष युग का आधार माना है[1]। स्पष्ट है कि सन् 1900 के आसपास से लेकर 1920 तक हिन्दी के आधुनिक कालीन साहित्य में पं.महावीरप्रसाद द्विवेदी और उन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध द्विवेदीयुग का विशेष महत्व रहा था।

पं.महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व द्विवेदीयुग के कवियों केलिए एक मूल प्रेरणास्रोत रहा। ये इन कवियों के मार्ग दर्शक एवं साहित्यिक गुरु थे। "संवत् 1960 में वे सरस्वती के सम्पादक हुए। उन्होंने एक प्रभविष्णु और सफल सेनापति की भाँति हिन्दी के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। यहीं से अराजकता-युग का अन्त और द्विवेदीयुग का प्रारम्भ हुआ[2]। हिन्दी साहित्य पर पं.महावीरप्रसाद द्विवेदी का प्रभाव बडा ही व्यापक था। सन् 1906 में सरस्वती का सम्पादक बनकर उन्होंने सरस्वती की बागडोर अपने हाथों में ले ली और सरस्वती के लक्ष्यों की पूर्ति के ज़रिये

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ.सुधीन्द्र प्रास्तविक
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ.उदयभानु सिंह, पृ.265

हिन्दी साहित्य की अटूट सेवा की । "सत्रह वर्ष तक सरस्वती का सम्पादन करते हुए उन्होंने हिन्दी साहित्य के अभावों की सुन्दर पूर्ति की । सम्पत्ति शास्त्र, शिक्षा, स्वाधीनता आदि से सबन्धित विविध विषयक मौलिक एवं अनूदित रचनाओं की रचना करके उन्होंने हिन्दी के रिक्त कोश की पूर्ति की । ऐतिहासिक और पुरातन साहित्य के लेखों के द्वारा उन्होंने विदेशी संस्कार और संस्कार से अभिभूत भारत की हीनानुभूति को दूर करके उनके हृदय में आत्मगौरव को भर देने का प्रयास किया ।[1]" महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य में असल में युगान्तर ही उपस्थित किया । कवि कर्त्तव्य रसज्ञ रंजन आदि लेखों के द्वारा उन्होंने कवियों को अपना कर्त्तव्य बतलाया[2] । सरस्वती में प्रकाशित तीव्र आलोचनाओं के द्वारा उन्होंने कवियों को प्रेरणा तथा सहायता प्रदान करके उन्हें आगे बढाने का प्रयत्न किया । उन्होंने कवियों को भारत की प्राचीन भाषा की ओर और उसके प्राचीन साहित्य की ओर बराबर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया । अपने निबन्धों में स्वयं उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव पर बल देते हुए लिखा है कि "अतीत स्मृति, प्राचीन चिह्न पुरावृत्त आदि लेखों में उनकी यही प्रवृत्ति स्पष्टत: परिलक्षित होती है ।

द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

नवोत्थान के फलस्वरूप हिन्दी कविता के क्षेत्र में द्विवेदीयुग तक आते आते एक युगान्तर ही उपस्थित हुआ ।

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ॰उदयभानुसिंह, पृ॰33

2. मैथिलीशरणगुप्त के काव्यों का अध्ययन (संस्कृत स्रोत के के संदर्भ में) - डॉ॰सुनीता बाई, पृ॰92

द्विवेदीयुग के कवि जनध्वनि को लेखनीबद्ध करने केलिए व्याकुल थे और उन्होंने अधिकांशतः सामाजिक कविता की रचना की । इन कवियों का स्वर लोक हितायः बना/राष्ट्रहित इनका मूल लक्ष्य था । जनता उपदेशात्मकता के आदर्श चरित्रों का उपयोग करते थे ।

आदर्श एवं नीति

द्विवेदीयुग में आदर्शवादी एवं नीतिपरक अनेक प्रबन्ध काव्य रचे गए । इन प्रबन्ध काव्यों में अधिकांशतः इतिहासपुराण से सम्बन्धित कथा प्रसंग हैं । कुछ कल्पनाओं पर आधारित आदर्शपरक कथानक भी हैं । इन सभी में अच्छाई की बुराई या सत् की असत् पर विजय दर्शायी है । कर्त्तव्यनिष्ठा, आत्मगौरव और परोपकार आदि उच्चादर्शों की प्रेरणा दी गई हैं । ऐसे आदर्शवादी काव्यों में प्रियप्रवास, वैदेहीवनवास, साकेत, रंग में भंग, जयद्रथ वध, किकट भट, गांधी गौरव, मिलन आदि उल्लेखनीय है । इनके आलावा अनेक लघु पद्य कथाएं "सरस्वती" में प्रकाशित होती रही थीं । नीतिपरक तथा उपदेशात्मक कविताओं की भी भरमार रही । इनके रचनाकारों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि प्रमुख हैं ।

इनके अलावा द्विवेदीयुगीन कवि प्रेम के आदर्श स्वरूप से भी अछूतें नहीं रहे । हरिऔधजी के प्रियप्रवास, गुप्तजी के साकेत और त्रिपाठीजी के मिलन आदि में प्रेम के इस आदर्श

स्वरूप को देखा जा सकता है । राधा सम्पूर्ण जगत् में श्रीकृष्ण की शोभा के दर्शन कर विश्व प्रेयसी तथा विश्व सेविका बन जाती है । लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला अपने चित्त को "प्रिय पथ का विघ्न" बनने से रोकती है ।

मानवतावाद

द्विवेदीयुगीन काव्य में मानवतावाद की स्पष्ट झलक मिलती है । इस युग के कवियों ने मानव मात्र के सुख दुःख तथा उसकी परिस्थितियों का विशद वर्णन अपने काव्यों में किया है । इस युग के कवियों ने किसान की दीन-हीन अवस्था और कष्टमय जीवन पर भी खूब लेखनी चलायी है । भारतीय किसान की स्थिति पर सन् 1917 ई॰ में रचित मैथिलीशरणगुप्त की रचना "किसान" सियारामशरण गुप्त की "अनाथ और गया प्रसाद शुक्ल सनेही की "कृषक क्रन्दन" उल्लेखनीय है । कविवर नाथूरामशर्मा शंकर ने अपनी कृति "गर्भरण्डारहस्य" में जन्म के पूर्व ही विधवा हो जानेवाली विधवाओं के दुःखभरे जीवन का बड़ा ही मार्मिक चित्रांकन किया है । इतना ही नहीं, अशिक्षित स्त्रियों की दुर्दशा का उल्लेख भी इन कवियों ने किया है । इस तरह की कविताओं की प्रेरक भावना मानव की सुलभ सहानुभूति ही है ।

विश्वबंधुत्व की भावना

द्विवेदीयुगीन कविताओं में विश्व के प्राणिमात्र की मंगलकामना करते हुए उनके हित में लीन रहने तथा उनका कल्याण करने के विषय पर अत्यधिक बल दिया गया है ।

इसी सर्व-भूत हित को ध्यान में रखकर कवियों ने सभी के कल्याण की कामना की है । इसी से लोगों में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का प्रसारण होता रहता है । द्विवेदीयुग में जो काव्य को मंगलवादी उद्देश्य से सतबद्ध कर देने का प्रयास है, वह इसी विचारधारा का प्रतिफलन है । प्राय: सभी कवियों ने इस विषय पर अपनी लेखनी चलाई । हरिऔध जी ने प्रियप्रवास के माध्यम से जगत्-हित, आत्मत्याग आदि लोक-संग्रही भावना के प्रसार का संदेश सुनाया है । इसी प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति उनके "पद्यप्रमोद और 'पद्यप्रसून में भी देखी जा सकती है । इसी प्रकार की विश्वकल्याण की भावना का प्रसार करनेवाले काव्यों की श्रेणी में सर्वप्रमुख हैं - मैथिलीशरणगुप्त का 'साकेत, 'विश्ववेदना' रामनरेशत्रिपाठी द्वारा रचित 'पथिक' तथा 'मिलन, शंकर जी का शंकरसर्वस्व आदि । इनके अलावा लोचनाप्रसाद पाण्डेय, रामचरित उपाध्याय, श्रीधर पाठक, गोपालशरणसिंह आदि के काव्यों में भी विश्वबंधुत्व की भावना की स्पष्ट झलक हमें मिलती है ।

नारी का उद्धार

द्विवेदीयुग के साहित्य में नारी उद्धार का मूर्तिमान प्रतिफलन हुआ है । नारियों के उचित समादर और समान अधिकारों केलिए कवियों ने प्रयत्न किए हैं । यह तथ्य स्मरणीय है कि उपेक्षित नारियों पर जितने आँसु द्विवेदी मण्डल के कवियों ने बहाये हैं, उतने दूसरों ने नहीं । मैथिलीशरणगुप्तजी ने मुख्य रूप से कवियों द्वारा उपेक्षित नारी को ही अपने काव्य में चित्रित किया है । उनका "साकेत" इसका

ज्वलंत प्रमाण है, जिसमें उपेक्षिता उर्मिला का ही गुणगान है । 'भारत-भारती' में भी स्त्री की दयनीय स्थिति का वर्णन है । द्विवेदीयुगीन काव्यधारा में नारी भारतीय संस्कृति की मूर्ति है । इसलिए उसमें तपस्या, संयम, त्याग एवं आत्मोत्सर्ग की भावनायें कूट-कूटकर भरी हैं । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, श्रीधर पाठक, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि सभी कवियों ने उसके गौरव के प्रतिष्ठापन का उल्लेख किया है । 'प्रियप्रवास', 'काव्य-कुब्ज', 'अबला-विलाप', 'साकेत', 'भारत-भारती' आदि इसके सबूत हैं ।

राष्ट्रीयता

द्विवेदीयुग में जागरणसुधार काल की बयार बहने के कारण राष्ट्रीयता इस युग की प्रधान काव्य धारा थी । फलत: इस युग की कविता का मुख्य स्वर भी राष्ट्रीयता का ही है । आत्माभिमान तथा देशाभिमान की प्रेरणा देने में कविगण सबसे आगे रहे । इस युग के अधिकांश कवियों ने देशभक्ति सम्बन्धी रचनाएं तात्कालीन समाज को दीं । उनकेलिए पराधीनता सबसे बड़ा अभिशाप था और स्वतन्त्रता प्राप्ति की राह दर्शाना लक्ष्य था । उन्होंने देश की तात्कालीन आर्थिक स्थिति, सामाजिक कुरीतियों और प्राचीन आडम्बरों पर भी खुल कर लिखा है । विदेशी वस्तुओं के प्रति मोह त्यागने और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर ज़ोर दिया है । मातृभूमि की महिमा का गान भी अनेक शैलीकारों ने गाया है ।

द्विवेदीयुगीन कवि और काव्य

द्विवेदीयुग में आचार्य महावीरप्रसादद्विवेदी से प्रेरणा पाकर नवीन विषयों को लेकर काव्य जगत में अनेक कवियों का पदार्पण हुआ । उनमें से निम्नलिखित कवियों के नाम सर्वप्रमुख है ।

नाथूरामशर्मा शंकर (सन् 1859-1932 ई०)

श्री० नाथूरामशर्मा शंकर का जन्म हरदुआगज, अलीगढ में सन् 1859 में हुआ था । उनकी रुचि शैशव काल से ही काव्य सृजन की ओर रही है । उनकी काव्य रचनाएँ "ब्राह्मण" और "सरस्वती" पत्रिकाओं में छपा करती थीं । उनके शंकर सर्वस्व, "शंकर सरोज" और "अनुराग रत्न" आदि काव्य संग्रह है । उनके प्रबन्ध काव्य "गर्भरण्डारहस्य" में विधवाओं की दुरवस्था तथा आराधनालयों के अनाचार का तथा आराधनालयों के अनाचार का यथार्थ चित्रण है । वे "कामिनीकांत", भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु और साहित्य सुधाकर उपाधियों से विभूषित किए गए थे । उनकी गणना द्विवेदीयुगीन प्रमुख कवियों में की जाती है । उनकी रचनाओं के शीर्षक व्यंग्यात्मक और हास्यपूर्ण हुआ करते थे । वे अपने युग के प्रसिद्ध आर्यसमाजी और समाज सुधारक कवि थे । उनकी अधिकांश रचनाएँ भक्ति, वेदान्त और समाज सुधार से सम्बन्धित हुआ करती थीं । उन्होंने देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान दिया था । उनकी भाषा ब्रज और खड़ीबोली थी । उन्होंने अपनी रचनाओं में सम्प्रदायवाद और पुरोहितगिरी पर करारी चोट की है ।

उन्होंने श्रमिकों की दयनीय स्थिति को उजागर किया है।

पं॰श्रीधर पाठक (सन् 1859 - 1928 ई॰)

श्रीधर पाठक का जन्म आगरा जिले के जोन्धरी गाँव में हुआ था। हिन्दी के अतिरिक्त इन्होंने अँगरेज़ी और संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। आजीविका केलिए पाठकजी ने सरकारी नौकरी की। नौकरी के प्रसंग में ही इन्हें कश्मीर और नैनीताल भी जाना पडा, जहाँ इन्हें प्रकृति के निरीक्षण का अच्छा अवसर मिला। इन्होंने ब्रजभाषा और खडीबोली दोनों में अच्छी कविता की है। खडीबोली के तो वे प्रथम समर्थ कवि भी कहे जा सकते हैं। देश-प्रेम समाज-सुधार तथा प्रकृति चित्रण इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। उन्होंने बडे मनोयोग से देश का गौरव-गान किया है किन्तु देशभक्ति के साथ साथ इनमें भारतेन्दुकालीन कवियों के समान राजभक्ति भी मिलती है। एक ओर इन्होंने "भारतोत्थान", "भारत-प्रशंसा ~~प्रशंसा~~" आदि देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी हैं तो दूसरी ओर "जार्ज-वन्दना" जैसी कविताओं में राजभक्ति का भी प्रदर्शन किया है। समाज सुधार की ओर भी इनकी दृष्टि बराबर रही है। "बाल-विधवा" में इन्होंने विधवाओं की व्यथा का कारुणिक चित्रण किया है। परन्तु इनको सर्वाधिक कुशलता प्रकृति-चित्रण में प्राप्त हुई है।

पाठकजी कुशल अनुवादक भी थे - कालिदास-कृत "ऋतु-संहार और गोल्डस्मिथ कृत "हरमिट", "डेज़र्टेड विलेज" तथा "द ट्रेवेलर" का ये बहुत पहले ही "एकान्तवासी योगी,

"ऊजड़ग्राम" और "श्रान्त पथिक" शीर्षक से काव्यानुवाद कर चुके थे। इनकी मौलिक कृतियों में काश्मीर सुषमा (1904) देहरादून" (1915) और भारत गीत (1928) विशेषतः उल्लेखनीय है।

पं॰ महावीरप्रसादद्विवेदी (सन् 1864 - 1938)

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म जिला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ था। सरस्वती के सम्पादक के रूप में इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान केलिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। इनके प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन के परिणामस्वरूप कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। खड़ीबोली को परिष्कार तथा स्थिरता प्रदान करनेवालों में ये अग्रगण्य हैं। ये कवि, आलोचक, निबन्धकार, अनुवादक तथा सम्पादकाचार्य थे। इनके लिखे हुए मौलिक और अनूदित गद्य-पद्य ग्रन्थों की संख्या लगभग 80 है। मौलिक काव्य रचना की ओर इनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं थी, अनूदित काव्य-कृतियाँ अधिक सरस है। गद्य-लेखन एवं सम्पादन के क्षेत्र में इन्हें विशेष सफलता मिली। 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'काव्यकुब्ज', 'अबला-विलाप' (मौलिक पद्य) 'गंगालहरी', 'ऋतु तरंगिणी', 'कुमारसम्भवसार' (अनूदित) आदि द्विवेदीजी की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध (सन् 1865 - 1947 ई॰)

द्विवेदीयुग के प्रसिद्ध कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का जन्म आजमगढ़ प्रान्त के ग्राम निजामाबाद में हुआ था।

वे कवि के साथ साथ द्विवेदीयुग के उपन्यासकार, आलोचक और इतिहासकार भी थे। उन्होंने आदर्श व्यक्ति का जीवनयापन किया। उनमें हिन्दू संस्कृति और स्वदेश प्रेम की भावना बड़ी प्रबल थी। अतः उन्होंने पुरातन संस्कृति का पुनरुत्थान भारत के वर्तमानयुग का उचित मार्गदर्शन और काव्य में उपदेशात्मक वृत्ति को शुरू से ही अपना ध्येय बना रखा था। उनके काव्य ग्रन्थों में सन् 1914 ई॰ में रचित "प्रियप्रवास", 1925 ई॰ में लिखित 'पद्यप्रसून', सन् 1932 में रचित "चुभते चौपदे" और चोखे चौपदे" तथा "बोलचाल", 'रसकलश' और 'वैदेही वनवास' उल्लेखनीय हैं। उन्होंने व्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में ही काव्य रचनायें की हैं। उन्होंने चोखे चौपदे और चुभते चौपदे और बोलचाल आदि में लोक एवं सामाजिक शिष्टता की बातों को सहज एवं कहीं-कहीं पर व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इस तरह उनके काव्य में युगानुरूप जागरूकता, चेतना और सामाजिक मान्यताओं को प्रमुख स्वर दिया गया है।

जगन्नाथदास रत्नाकर (सन् 1866 - 1932 ई॰)

आधुनिक युग में कथ्य और कथन शैली दोनों ही दृष्टियों से मध्यकालीन आदर्शों को स्वीकारनेवाले कवियों में जगन्नाथदास रत्नाकर प्रमुख थे। उनके काव्य क्षेत्र का आधार पौराणिक है। उनकी प्रथम काव्य कृति हिंडोल 1894 ई॰ में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् "हरिश्चन्द्र" और श्रृंगार लहरी आई। सन् 1927 ई॰ में रचित गंगावतरण में शापित सागर पुत्रों के उद्धार हेतु स्वर्ग से धरा पर गंगा के आगमन की कथा है।

सन् 1929 ई॰ में रचित "उद्धव शतक" पुरातन युग के आदर्श एवं मनोरम प्रसंगवाला प्रबन्ध काव्य है । यह भक्ति युग के भ्रमर गीत का ही एक रूप है । इनके अलावा उन्होंने "समालोचनादर्श "साहित्य रत्नाकर", घनाक्षरी, नियम रत्नाकर, गंगा विष्णु लहरी, रत्नाष्टक, कलकाशी मौलिक काव्य रचे हैं और बिहारी रत्नाकर शीर्षक से उन्होंने बिहारी सतसई की समालोचनात्मक टीका भी लिखी है जो सतसई की टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ है । उनकी काव्यधारा वास्तव में रत्नाकर के ही समान बहुमूल्य मुक्ताओं से सम्पन्न है । उन्होंने सूर से माधुर्य भाव और तुलसी से प्रबन्ध कल्पना लेकर उत्कृष्ट काव्यों की रचना की । उनके इस साहित्य सेवाकार्य केलिए हिन्दी जगत् सदैव कृतज्ञ रहेगा ।

राय देवीप्रसादपूर्ण (सन् 1868 - 1915 ई॰)

राष्ट्रीय भावधारा के प्रबल समर्थक राय देवीप्रसादपूर्ण का जन्म जबलपुर में हुआ था । वे संस्कृत के विद्वान थे और उनका वेदान्त में विशेष रुचि थी । व्यावसायिक तथा सामाजिक कार्यों में अधिक व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने साहित्य सृजन में अपना पूरा योगदान दिया । उनकी रचनाएँ भावपूर्ण तथा सरस हैं । उनका ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली पर समानाधिकार था । उन्होंने श्रृंगारिक परम्परागत विषयों पर ब्रजभाषा में और देश भक्ति आदि विषयों पर खड़ीबोली में काव्य रचे हैं । उनकी प्रमुख मौलिक कृतियों में 1904 ई॰ में रचित मृत्युंजय", 1906 ई॰ में लिखित "राम रावण विरोध", 1910 ई॰ में रचित "स्वदेशी कुण्डल तथा 1912 ई॰ के 'वसन्त वियोग' उल्लेखनीय हैं ।

इन मौलिक रचनाओं के अलावा उन्होंने सन् 1902 ई॰ में महाकवि कालिदास कृत मेघदूत का अनुवाद "धारा धर धावन" शीर्षक के अन्तर्गत किया था । उन्होंने अपने काव्य में देश की दुर्दशा अतीत के गौरव की स्मृति पराभव की दीनता तथा साम्प्रदायिक एकता का सुन्दर चित्रांकन लिया है । उनकी स्वदेशी कुण्डल में राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक जागरुकता के संदेश की छाप दिखायी पड़ती हैं ।

रामचरित उपाध्याय ‖सन् 1872 - 1938 ई॰‖

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रभावित होकर व्रजभाषा का पल्ला छोड खडीबोली को अपनानेवाले कवियों में "रामचरित उपाध्याय का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । उनका जन्म 1872 ई॰ में गाजीपुर में हुआ था । उनकी प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत में हुई, तत्पश्चात् उन्होंने थोडे ही समय में व्रजभाषा एवं खडीबोली पर भी पूर्ण अधिकार पा लिया था । उनकी मौलिक कृतियों में "राष्ट्रभारती", देवसभा, विचित्र विवाह, देवदूत, भरतभक्ति और भव्य भारत आदि उल्लेखनीय है । इनके अलावा उन्होंने रामचरित चिन्तामणि नामक महाकाव्य भी रचा था । वे द्विवेदीयुग के प्रसिद्ध सूक्तिकार है । उनकी रचनाएँ सामाजिक बुराइयों का पदाफाश करने में पूर्णतया सक्षम थीं । इनमें प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों काव्य शैलियों का सम्यक् निर्वाह हुआ है ।

सत्यनारायण कविरत्न {सन् 1880 - 1918 ई॰}

श्री॰ सत्यनारायण कविरत्न का जन्म अलीगढ प्रान्त के सराय नामक ग्राम में हुआ था । उनके 'भ्रमर दूत' नामक खण्ड काव्य विशेष उल्लेखनीय है । इस खण्डकाव्य के अलावा उनके 'प्रेमकली' और हृदय तरंग नामक दो काव्य संग्रह उपलब्ध है । उन्होंने संस्कृत के 'मालती माधव तथा उत्तर रामचरित' नामक दो नाटकों का अनुवाद भी किया था । उन्होंने लार्ड मेकाले की प्रसिद्ध कृति होरेशस का भी सुन्दर अनुवाद किया था । उनके 'भ्रमरदूत में उन्होंने भारत भूमि पर यशोदा का और अंग्रेज़ी शासन पर कंस का आरोप किया है । कृष्ण से विनती की गई है कि वे अंग्रेज़ रूपी कंस से भारत भूमि रूपी माता यशोदा का उद्धार करें । इसमें राष्ट्रीय भावना सशक्त रूप में व्यंजित हुई है ।

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही {सन् 1883 - 1972 ई॰}

श्री॰ गयाप्रसादशुक्ल सनेही का जन्म उन्नाव प्रान्त के हड़हा ग्राम में हुआ था । वे हिन्दी के साथ-साथ उर्दू के भी अच्छे ज्ञाता थे । वे ब्रजभाषा की सरस रचनाएँ "सनेही" उपनाम से और वीर रस पूर्ण रचनाएँ "त्रिशूल" उपनाम से किया करते थे । जहाँ राष्ट्रीय रचनाओं की प्रेरणा उनको गणेश शंकर विद्यार्थी से मिली थी वहाँ समाज सुधार इतिहास तथा पुराख्यानों की ओर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रोत्साहित

किया था । वे कवि सम्मेलनों में भी भाग लिया करते थे । उन्होंने "सुकवि" नामक पत्रिका का भी सम्पादन किया था । उनकी मुख्य काव्य कृतियों में कृषक क्रन्दन, राष्ट्रीय मंत्र, त्रिशूल, तरंग, कला में त्रिशूल, प्रेम पचीसी, राष्ट्रीय वीणा, संजीवनी और करुणा कादम्बिनी उल्लेखनीय है । उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों के लिए भी अनेक प्रयाण गीत तथा बलिदान गीतों की रचना की थी । उन्होंने समाज की विषमताओं को बड़े निकट से देखा था । श्रमिकों तथा कृषकों की शोषण पीड़ा का अनुभव किया था । इसलिए उनकी लेखनी ने साम्यवाद को एक सशक्त दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया ।

मैथिलीशरणगुप्त [सन् 1886 - 1964 ई॰]

आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रतिनिधि कवि तथा भारतीय संस्कृति के अमर गायक मैथिलीशरणगुप्त का जन्म चिरगाँव [झाँसी] में हुआ था । उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ते से प्रकाशित जातीय पत्र "वैश्योपकारक" में प्रकाशित हुआ करती थीं । बाद में "आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी" के सम्पर्क में आने पर "सरस्वती" पत्रिका में भी प्रकाशित होने लग गई थीं । आचार्य जी के स्नेहसिक्त प्रोत्साहन से उनकी काव्यकला में काफी निखार आ गया था । उनकी सर्वप्रथम रचना "रंग में भंग" सन् 1909 ई॰ में प्रकाशित हुई । इसके बाद सन् 1910 ई॰ में "जयद्रथ वध", 1912 ई॰ "भारत भारती सन् 1925 ई॰ में "पंचवटी" 1929 ई॰ में 'झंकार', 1931 ई॰ में 'साकेत, सन् 1932 ई॰ में 'यशोधरा, 1936 ई॰ में "द्वापर", सन् 1952 ई॰ में "जयभारत"

और 1957 ई॰ में विष्णुप्रिया आदि प्रमुख कृतियों ने इन्हें अमर कर दिया । इनकी अनूदित रचनाएँ हैं - वीरांगना, मेघनाद वध, प्लासी का युद्ध, "अमर खैयाम" की रुबाइयाँ, स्वप्नवासवदत्ता, विरहिणी व्रजांगना । इनके अलावा अनघ "चन्द्रहास" और "तिलोत्तमा" पद्यबद्ध रूपक रचे थे । गुप्तजी ने आधुनिक युग को दो महाकाव्य और उन्नीस खण्ड काव्य प्रदान किए ।

द्विवेदीयुगीन कविता में गुप्तजी के काव्य को सर्वाधिक लोकप्रियता मिली है । साहित्यिक मित्र उनको "दद्दा" कह कर बुलाते थे । उनकी रचनाओं में स्वदेश प्रेम का स्वर अनेक रूपों में मुखरित हुआ है । अत: उनको राष्ट्रकवि कहकर सम्मानित किया गया । 1957 ई॰ में उनको साकेत महाकाव्य पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया गया । 1946 ई॰ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उनको साहित्य वाचस्पति की उपाधि प्रदान की और सन् 1948 ई॰ में आगरा विश्वविद्यालय की ओर से उनको डी॰लिट्॰ की मानक उपाधि देकर सम्मानित किया गया । सन् 1960 ई॰ में राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति भवन में समारोह आयोजित करके "मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ" उनको भेंट किया । भारत सरकार ने उनको राज्यसभा का मनोनीत सदस्य नियुक्त किया । उनका व्यक्तित्व विविध गुणों से युक्त था । वे रामभक्त होने के साथ साथ अन्य देवताओं, अन्य धर्म प्रवर्त्तकों तथा महान व्यक्तियों के चरित प्रकाशक भी थे । वे बापू की नीतियों के प्रशंसक तथा गौरवमय अतीत के गुण गायक थे ।

पं• रामनरेश त्रिपाठी (सन् 1889 - 1962 ई•)

पं•रामनरेश त्रिपाठी का जन्म जौनपुर प्रान्त के कोइरीपुर ग्राम में हुआ था । कविता के प्रति उनकी रुचि शैशव काल से ही थी । कोइरीपुर ग्राम के विद्यालय के मुख्याध्यापक व्रजभाषा में कविता लिखा करते थे । त्रिपाठीजी भी इससे प्रभावित होकर समस्यापूर्ति व्रजभाषा में करने लग गये थे । तत्पश्चात् द्विवेदीजी की पत्रिका "सरस्वती" से प्रभावित होकर उन्होंने व्रजभाषा को त्यागकर खडीबोली को काव्य भाषा के रूप में अपना लिया था । उन्होंने सन् 1917 ई• में "मिलन", सन् 1920 ई• में "पथिक", सन् 1927 ई• में "मानसी" और 1929 ई• में "स्वप्न काव्य रचे थे । इनके अलावा उन्होंने "रामचरितमानस की टीका", "तुलसीदास" और उनकी कविता (दो भाग) और "हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास" आदि समालोचनात्मक ग्रन्थों की रचना भी की थी । सम्पादित ग्रन्थों में "हिन्दुस्तानी कोष", भूषण ग्रन्थावली, सुकवि कौमुदी, मारवाड के मनोहर गीत,सुदामा चरित, पार्वती मंगल, घाघ और भड्डरी, शिवा बावनी तथा कविता कौमुदी में उन्होंने बडी कुशलता से हिन्दी उर्दू, बँगला और संस्कृत की कविताओं का संकलन तथा सम्पादन किया है । त्रिपाठीजी ने उनके तीनों खण्डकाव्यों में कल्पित आख्यानों का आश्रय लेकर राष्ट्रप्रेम की भावना को जगाया है । उनकी यह राष्ट्रीयता हिंसा तथा रक्तपात की राजनीति से दूर शांति और सद्भावना पर आधारित है । उनकी रचनाएँ युग और राष्ट्र की आकांक्षाओं से परिपूर्ण है ।

सियारामशरणगुप्त [सन् 1885 - 1963 ई॰]

कवि सियारामशरणगुप्त का जन्म चिरगाँव [झाँसी] में सेठ रामचरण गुप्त के यहाँ हुआ था । वे राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्त के अनुज थे । वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । उनकी लेखनी काव्य, गीतिनाट्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध और संस्मरण काव्य के रूप में साहित्य की अनेक विधाओं पर अबाध गति से चली है । उनकी प्रथम रचना सन् 1910 ई॰ में "इन्दु" पत्रिका में छपी थी । तत्पश्चात् सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित होने लग गई थी । वे गाँधीवादी विचारधारा के प्रवर्तक थे । उनका प्रथम खण्डकाव्य "मौर्यविजय" सन् 1914 ई॰ में प्रकाशित हुआ था । सन् 1917 ई॰ में अनाथ काव्य प्रकाश में आया । इसके बाद तो दूर्वादल, विषाद आर्द्रा, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, बापू, नकुल, जयहिन्द, गीतासंवाद, मृण्मयी और दैनिकी आदि प्रमुख काव्यकृतियाँ प्रकाश में आईं । उनकी कला का वास्तविक विकास तो द्विवेदीयुगीन कविता के बाद ही हुआथा ।

अन्य कवि

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा को प्रवाहित करने में अन्य कवियों का भी विशेष योगदान रहा है जिनमें से प्रमुख कवि हैं - बालमुकुन्द गुप्त, लाला भगवानदीन, अमीर अली "मीर", गिरिधर शर्मा "नवरत्न", रूपनारायण पाण्डेय, लोचनाप्रसाद पाण्डेय, गोपालशरण सिंह और मुकुटधर पाण्डेय । इन काव्य-निर्माताओं के

अतिरिक्त और भी अनेक महानुभावों ने द्विवेदी युग में हिन्दी काव्य की श्रीवृद्धि की है जिनमें से लोकमणि, सत्यशरण रतुड़ी, मन्नन द्विवेदी, प्रदुम्नलाल पुन्नालाल बख्शी, शिवकुमार त्रिपाठी, पार्वतीदेवी, संतोषकुमारी आदि के नाम उल्लेखनीय है। माखनलाल चतुर्वेदी प्रसाद, पन्त तथा निराला ने भी इसी युग में कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु इनकी काव्य-कला का वास्तविक विकास आगे चलकर ही हुआ।

द्विवेदीयुगीन काव्य में सुधारवादी प्रवृत्ति

हिन्दी कविता को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढि से स्वच्छन्दता के द्वार पर ला खड़ा करनेवाले बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों का समधिक महत्व है। इस काल-खण्ड के पथ-प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस युग का नाम "द्विवेदी-युग उचित ही है। वैसे, इसे जागरण-सुधार-काल भी कहा जाता है। भारतीय इतिहास में यह समय ब्रिटिश शासन के दमन-चक्र और कूटनीति का काल है। अपने स्वार्थों की पूर्ति केलिए गोरांग प्रभुओं ने राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में कूटनीति से काम लिया। भारतीयों को अंग्रेज़ी शिक्षा किसी सद्‌द्देश्य से प्रेरित होकर नहीं दी जा रही थीं। उसका उद्देश्य था - देशवासियों का ऐसा वर्ग खड़ा करना जो शरीर से भारतीय होते हुए भी मन से अंग्रेज़ों का गुलाम हो और उनके शासन-कार्य में सहायक सिद्ध हो सके।

एक सीमा तक शासक वर्ग को इसमें सफलता भी मिली । दूसरी ओर अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से भारतवासी बर्क, मिल, स्पेंसर, रूसो आदि उदार विचारकों की रचनाओं के सम्पर्क में भी आये जिससे राष्ट्रीयता एवं स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भावना को और बल मिला । वैसे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आर्यसमाज ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, तथा इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और समाज के पुनरुत्थान की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी ।

नव-जागरण का प्रभाव

भारत में शासकों से ही प्रेरणा लेकर भारतीय उर्वर मस्तिष्कों में स्वाधीनता के भाव जगाने लगे । यत्र-तत्र छोटी सुविधाओं केलिए आवाज़ें उठाई जाने लगीं । सुयोग भी अच्छा मिला । स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण, स्वामी दयानन्द सरस्वती लोक-हितवादी चिपलूणकर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके मण्डल के अन्य लेखक और कवि एक साथ मैदान में आए । 1857 ई॰ का विद्रोह मूलत: सिपाहियों का था उसकी जड ऊपर थी और वह कुचल दिया गया । पर सांस्कृतिक सुधारवादी उपर्युक्त लोगों ने जनवादी दृष्टिकोण अपनाकर सारे देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जागरण का वह मन्त्र फूंक दिया जिससे जनता ने निराशा की चादर फेंक कर अपने को पहचाना ।

समय के बढ़ने से परतन्त्रता असह्य बन गई । सन् 1885 ई॰ राष्ट्र के सपूतों ने बम्बई नगर में कांग्रेस की स्थापना की और उस का पहला अधिवेशन हुआ । समय-समय पर इस राष्ट्रीय आयोजन में बाधायें आई । भीतरी और बाहरी शत्रुओं ने इसे नष्ट करने के सुनियोजित प्रयत्न किये, किन्तु राष्ट्रीय गौरव के अखण्ड वेग के सामने सब नत मस्तक हो गये । स्वदेश प्रेम और स्वदेशी के प्रति दिन प्रति दिन भाव बढ़ने लगे । जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों में विदित होता है -

"आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवें मरें ।
अपनी चीज़ें आप बनाओ, उनसे अपना अंग सजाओ ।।
वन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों ।
बाँधवता में बंधे परस्पर, परता के अज्ञानी हों ।।"[1]

इसी स्वतन्त्रता-भाव को बढ़ाते हुए एक पग और आगे बढ़कर पं॰ महावीरप्रसादद्विवेदी ने कहा था -

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है ।"

उस समय देश के कवियों लेखकों में नव-निर्माण के प्रति जो अंकुर उग रहे थे, वे ही आगे जाकर वट वृक्ष का रूप धारण कर सके ।

1॰ श्रीधर पाठक - महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ॰4

अतीत की ओर दृष्टि रखने के कारण ही भारतीय राष्ट्रीयता को पुनर्जागरण आन्दोलन कहा जाता है। राष्ट्रीयता अतीत की स्मृतियों और उपलब्धियों पर ही पलती है। भारत के सम्बन्ध में यह बात और भी सही है, क्योंकि ऐतिहासिक परम्पराओं की महान एवं विपुल सम्पत्ति इसके भण्डार में थीं। साम्राज्यवादी दमन से कुचली भारतीय राष्ट्रीय चेतना ने अतीत से प्रेरणाएँ ग्रहण कीं। इस काल की धार्मिक संस्थाओं ने भी इसे अतीत की ओर जाने की प्रेरणा दी। आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने संस्कृति एवं समाज को संस्कृत एवं विकसित कर दिया। आर्यसमाज में बुद्धिवाद, उपयोगितावाद राष्ट्रीयता तथा हिन्दू आदर्शों का विचित्र संयोग था। इसका उद्देश्य भारत को राष्ट्रीय सामाजिक तथा धार्मिक रूप से संगठित कर इकाई बना देना था। द्विवेदी युगीन काव्य पर इस का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस युग में राष्ट्रीय जागरण की मूल प्रवृत्तियाँ अतीत के गौरवगान एवं वर्तमान की दर्दशा के चित्रण में प्रकट हुई। गुप्तजी की 'भारत-भारती' इस जागरण का सिराकेन्द्र थी जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा -

"हम कौन थे क्या हो गए है और क्या होंगे अभी
आओ जहाँ मिलकर विचारों ये समस्याएँ सभी।[1]"

---

1. भारत-भारती - मैथिलीशरणगुप्त, पृ.

गुप्तजी की भारत भारती सुप्त भारतीयों को जगाने की संजीवनी है । जन्म भूमि का अहित गुप्तजी केलिए अपना ही अहित था । स्वामी दयानन्द और उनके आर्यसमाज के द्वारा भारतीय गौरव गरिमा का जो दर्शन कराया गया, वह भारत-भारती में सजीव हो उठा । इस ग्रंथ में प्राचीन गौरव वर्तमान अवनति आदि के चित्रण के साथ साथ भविष्य केलिए उद्बोधन भी मिलता है । समाज के सभी पार्श्वों की उन्नति को लक्ष्य करते हुए उन्होंने इसके द्वारा नवोत्थान का सन्देश सुनाया है और नवीन राष्ट्रीयता के निर्माण के प्रयत्न किए हैं ।

भारतेन्दु युग आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का बीज वपन काल है और द्विवेदीयुग उसका विकास काल । भारतेन्दुयुगीन राष्ट्रीय पुनर्जागरण विभिन्न परिस्थितियों से धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर हुए । उसका पूर्ण विकास न होने के कारण उसमें मसृणता थी, उग्रता नहीं थी, किन्तु द्विवेदीयुग में उसे विशाल रूप मिला । इसलिए उसमें उग्रता भी आने लगी । द्विवेदीयुग की राष्ट्रीय चेतना में उग्रता आने का मुख्य कारण असन्तोष है । पराधीन जाति जब अपनी वर्तमान परिस्थितियों से अपने पतन से असन्तुष्ट होती है तो असन्तोष में तीव्रता आने के साथ ही राष्ट्रीय चेतना में भी तीव्रता आती है । द्विवेदीयुग की इसी राष्ट्रीय-चेतना की अभिव्यक्ति अपने अतीत की स्मृति में जाग उठती है । भारतवर्ष के वीर पूर्वजों के आत्मसमर्पण के फलस्वरूप जनता में अपनी जन्मभूमि के प्रति एक अटूट आस्था प्रबल होने लगी और गांधी दर्शन से प्रभावित होकर एक अहिंसात्मक राष्ट्रीयता की स्थापना होने लगी ।

द्विवेदीयुगीन काव्य में राष्ट्रीय चेतना कई रूपों में प्राप्त होती है । इनमें प्रमुख हैं - भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था प्राचीन साहित्य की ओर झुकाव, वीर पूजा की भावना, अतीत का गौरवगान वर्तमान दशा पर क्षोभ विदेशी शासन के प्रति विरोध, भारत वन्दना तथा प्रशस्ति आदि ।

भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था

भारतवर्ष अपनी सर्वांगीण सम्पन्न तथा गौरवमयी संस्कृति केलिए संसार भर में विख्यात है । प्राचीनकाल से ही संस्कृति में ऐसी दृढता तथा परिपक्वता थी कि लाख क्रांतियों के घात-प्रतिघात सहने तथा अनगिनत वैदेशिक विभीषिकाओं का सामना करने पर भी इसकी नींव हिल नहीं सकी । एक समय था जब यह देश जगद्गुरू की उपाधि से विभूषित था और धन-वैभव की प्रचुरता के कारण संसार इसे सोने की चिडिया के नाम से सम्बोधित करता था । लेकिन अंग्रेज़ कूटनीतिज्ञ भारतीय राष्ट्रीयता का विनाश करके और जनता को आत्म विस्मृत करके उसे अपनी सभ्यता और संस्कृति के रंग में रंगना चाहते थे । वे भारतीय जनता में आत्म-हीनता की भावना दृढ करके उसे दीर्घ काल केलिए दासत्व की श्रृंखला में जकडे रखना चाहते थे । इससे देश की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई । अंग्रेज़ी साम्राज्य के आघात ने जहाँ देश का सर्वस्व लूट लिया, वहाँ भारतवासियों की चिर-प्रगाढ निद्रा भी भंग हो गई । उन्हें जहाँ वर्तमान की अवनति पर विक्षोभ होने लगा वहाँ वे प्राचीन संस्कृति की ओर झांकने से गर्व के कारण अपना मस्तक

ऊँचा करने के योग्य भी हो गये । वे वर्तमान से उदास और निराश थे परन्तु प्राचीन संस्कृति की हरीतिमा तथा उज्ज्वलता अब भी उनके आकर्षण का विषय थी । अतीत के आलोक में उन्हें आशा की किरण दिखाई देने लगी । वे उसी ओर झुके और अपना खोया हुआ बल बुद्धि तथा ऐश्वर्य फिर से प्राप्त करने केलिए उत्सुक होने लगे । प्राचीन संस्कृति के गौरव ने उन्हें नवचेतना दी, प्रेरणा दी और उनमें पुनरुत्थान की, एक उमंग जाग्रत कर दी । द्विवेदीयुगीन कवि भारतीय संस्कृति का एक अमर संदेश लेकर आए और उन्होंने उसे भारतीय जनता के मानस-पटल पर अंकित करने का अभूतपूर्व प्रयास किया । उन्होंने जनता के सम्मुख प्राचीन सांस्कृतिक भारत की झलकियाँ प्रस्तुत कर उसमें नवस्फूर्ति का संचार किया और उसे सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाकर उसमें स्वतन्त्रता की तड़प पैदा कर दी । इस पर आम जनता की अभिव्यक्ति इस प्रकार है - "भारतवर्ष का प्राचीन गौरव अब भी कुछ देर केलिए हमारे हृदय को गौरवान्वित कर देता है । हम अपनी हीन-दीन दशा की तुलना उस समय सर्वोच्च अवस्था से करते हैं और गहरी विषमता पाकर हमारे हृदय में विषाद की सृष्टि होती है । यह विषाद हमें निश्चेष्ट न बनाकर इस विषमता को दूर करने में प्रयत्नशील बना देता है[1] ।"

द्विवेदीयुग के कवियों ने भारतीय संस्कृति की विवेचना करते हुए प्राचीन भारतीय जीवन-मूल्यों, दर्शन तथा चिन्तन को आधार बनाकर अनेक काव्यों की रचना की है । साथ ही, उनमें उनकी पारिवारिक जीवन-दृष्टि एवं मानवतावादी दृष्टि के भी दर्शन होते हैं । भारतीय संस्कृति के अटूट अंग के रूप में लोकोपकार, देश-सेवा समाज-सेवा, एकता, समता विश्व-प्रेम,

---

1. लक्ष्मीनारायण सुधांशु - राष्ट्रीय कविता साहित्यिक निबन्ध, पृ.33।

लोक-हित आदि तत्वों को द्विवेदीयुग के काव्यों में प्रमुखता दी गई है। भारतीय संस्कृति के प्रतीक कृष्ण तथा राम को लेकर प्राय: सभी कवियों ने काव्यरचना की है। इनमें से सर्वश्रेष्ठ है, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और मैथिलीशरणगुप्त। उपाध्याय जी के प्रियप्रवासमें विश्वबन्धुत्व की भावना और लोक-सेवा का आदर्श विशेष उभर कर सम्मुख आया है। प्रियप्रवास के कृष्ण के जीवन में परोपकार के अनेक उदाहरण सामने आते हैं। वे भौतिक सुख-वैभव को छोड़कर जगत-हित एवं लोक-सेवा के कार्यों में लीन रहते हैं। गोपियों के सम्मुख उद्धव ने श्रीकृष्ण के इसी स्वरूप की प्रतिष्ठा करते हुए कहा है -

"वे जी से है जगत जन के सर्वथा श्रेयकामी।
प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।
स्वार्थों को औ विपुल सुख को तुच्छ देते बना हैं।
जो आ जाता जगत हित है सामने लोचनों के[1]।"

हरिऔधजी ने लोक-हित एवं विश्व-प्रेम की भावना का चरमोत्कर्ष राधा के चरित्र-विकास में विशेष रूप से दिखाया है। राधा लोक-हित केलिए अपने प्रियतम के वियोग को भी सहर्ष सहने को तत्पर है[2]।" वैदेही वनवास के राम लोक-मंगल को ही सर्वस्व मानते हैं[3]।

---

1. प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, नवम सर्ग, पृ.3
2. वही, षोडश सर्ग, पृ.98
3. वैदेही वनवास, सप्तदश सर्ग, पृ.78

इसी प्रकार के आदर्शों का समावेश मैथिलीशरणगुप्त द्वारा रचित 'साकेत, द्वापर पंचवटी, प्रदक्षिणा, जयद्रथ-वध, जयभारत' आदि काव्यों में भी हुआ है । भारतीय संस्कृति में पारिवारिक सम्बन्धों को पवित्रता दी गई है । गुप्तजी के काव्यों में इसकी स्पष्ट झलक हमें मिलती है । 'साकेत' एवं 'पंचवटी' के अनेक प्रसंग इसके उत्तम उदाहरण हैं । भारतीय संस्कृति में नारी को सम्मान दिया गया है एवं नारी के धर्म पर बल भी दिया गया है । 'जयद्रथ-वध' में गुप्तजी ने अभिमन्यु एवं उत्तरा के क्षणिक दाम्पत्य जीवन के द्वारा नारी के स्वरूप की मर्मस्पर्शी व्यंजना की है[1] । इसी प्रकार रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी आदि द्विवेदी युग के अन्य कवियों ने भी पौराणिक चरित्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । रामचरित उपाध्याय जी के 'रामचरित - चिन्तामणि' में वाल्मीकि रामायण का अधिक प्रभाव है । इसमें कई स्थानों पर देश-भक्ति, समाजोन्नति आदि की भावना बलपूर्वक कथा में आई है । रायदेवीप्रसाद पूर्ण जी का "राम-रावण-विरोध ब्रजभाषा में लिखा गया एक चम्पू काव्य है । श्री• गयाप्रसाद शुक्ल सनेही जी ने राम-जीवन के राम-वन-गमन तथा लक्ष्मण-मूर्छा जैसे करुण प्रसंगों के आधार पर स्फुट कविताएं लिखी हैं । अतः द्विवेदी युग के बहुसम्मानित काव्यकार अपने काव्यों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के पोषक सिद्ध होते हैं । उन्होंने आदर्श भारतीय नारी के स्वरूप का प्रस्तुतीकरण करते समय दाम्पत्य भावना की सामाजिक दृष्टि से महत्ता ज्ञापित की है ।

1• पंचवटी, 2019 वि• पूर्वाभास पद संख्या 2•

वे तो नारी जीवन की सार्थकता अथवा उसका लक्ष्य उसके नारीत्व एवं मातृत्व रक्षा में मानते हुए उसे क्षत्राणी के रूप में भी प्रतिष्ठित कर लोकरक्षा को सर्वोपरि घोषित करते हैं । भारतीय संस्कृति के इन तत्वों की विवेचना में प्राचीन साहित्य ने ही उन्हें सहायता प्रदान की है ।

प्राचीन साहित्य की ओर झुकाव

द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्राचीन साहित्य के मूल स्रोत वेद तथा वेदविद्या के प्रति भी आस्था प्रदर्शित की है । कवि विविध बन्धन-बाधाओं तथा नाना प्रकार की विमूढ़ता एवं अज्ञान में ग्रस्त हुई जाति को वेदविद्या के आधार पर एक बार पुन: सुसंस्कृत एवं समुन्नत देखने की कल्पना करते हैं । नाथूराम शंकर तो वेदों के परम उपासक थे । वैदिक मत के सिद्धान्तों पर चलने केलिए वे जीवन भर आग्रह करते रहे । देश में फैले हुए मतमतान्तरों तथा अन्धविश्वासों को वे प्राचीन साहित्य के आलोक से समाप्त करना चाहते थे । शांति की स्थापना केलिए उन्हें वेदविद्या के बिना कोई उपाय नहीं दिखाई देता था । वैदिक मत के प्रचार केलिए कवि की विनय सुनिए -

> "द्विज वेद पढ़ें, सुविचार पढ़ें, बल पाय चढ़ें, सब ऊपर को,
> अविरुद्ध रहें, ऋजु पन्थ गहें, परिवार कहें,वसुधा-भर को ।"[1]

---

1. शंकरसर्वस्व, पृ37

मैथिलीशरणगुप्त जी भी वेद के उपदेश को परम शांतिप्रद समझते हुए इसके द्वारा विश्वकल्याण की शुभकामना प्रकट करते हैं -

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो,
सौदार्ई और मतैक्य हो, अविरुद्ध मन का भाव हो ।
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा
निज यज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा[1] ।"

द्विवेदीयुगीन कवि आर्यावर्त तथा आर्यजाति के गौरवगान द्वारा प्राचीन संस्कृति के प्रति निष्ठा प्रकट करने में सफल हुए । वे वैदिक-धर्म तथा हिन्दी भाषा का अनुकरण भी जाति के कल्याण तथा उत्थान केलिए आवश्यक समझते थे । द्विवेदीयुगीन कवियों ने उसी भारतीय संस्कृति का संदेश वहन किया जिसका उद्देश्य है - "सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु: निरामया: ।" यही व्यापक धारणा इस युग के कवियों की उदार वाणी द्वारा सुनाई देती है ।

द्विवेदीयुग के कवियों ने भारत के प्राचीन साहित्य के प्रसंगों को लेकर अनेक काव्यों की रचना की है । महाभारतीय एवं रामायण के पात्रों के चरित्र द्वारा उन्होंने जनमानस में नई उमंग भर दी है । पं॰महावीरप्रसादद्विवेदी के प्रभाव से उन्होंने राम और कृष्ण के चरित्र पर आधारित काव्यों की रचना की है ।

1· भारत-भारती, भविष्यत् खण्ड 140, पृ·182

द्विवेदीयुगीन कवि राम और कृष्ण के चरित्रांकन द्वारा एक ओर परम्परा से चली आ रही प्राचीन साहित्य की कथा को प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरी ओर उन्हें मानव के धरातल पर लाकर समय सापेक्ष समस्याओं की ओर संकेत करते हैं । इनमें अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इनके काव्यों में प्रेमाम्बु-वारिधि प्रेमाम्बु प्रवाह, प्रेमाम्बु-प्रस्त्रवण प्रेम-प्रपंच, प्रियप्रवास, वैदेही-वनवास आदि प्रमुख है । इन सभी काव्यों में उन्होंने महाभारत एवं रामायण के आधार पर कृष्ण एवं राम के जीवन के आदर्शों को हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है ।

महाभारत एवं रामायण के पात्रों को लेकर काव्यरचना करनेवालों में मैथिलीशरण गुप्तजी विशेष स्थान रखते हैं । इन्होंने पौराणिक कथा से सम्बन्धित अनेक काव्यों की रचना की है । इनमें साकेत, द्वापर, पंचवटी, प्रदक्षिणा, जयद्रथ-वध, जयभारत आदि काव्यों का विशेष महत्त्व है । पं॰ रामनरेश त्रिपाठी ने राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनुमान, भीष्म, कृष्ण, द्रोण, भीम, अर्जुन, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि का स्मरण अपने काव्यों में किया है । वियोगी हरि ने भीष्म प्रतिज्ञा, अर्जुन प्रतिज्ञा आदि का वर्णन किया है । पं॰ रामचरित उपाध्याय ने वाल्मीकिरामायण को आधार बनाकर रामचरित-चिन्तामणि की रचना की है । इनके अलावा इस परम्परा के कवियों में डॉ॰ बलदेव प्रसादमिश्र, श्री॰ द्वारिका प्रसाद मिश्र आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है । इन कवियों ने प्राचीन साहित्य के महाभारतीय एवं रामायण के चरित्रों के अंकन में वीरत्व के प्रबल आग्रह से कार्य किया है ।

इसी प्रकार प्राचीन साहित्य के प्रबल प्रसंगों को लेकर द्विवेदीयुगीन कवियों ने अपने काव्यों के माध्यम से भारतीय जनता को उद्बुद्ध कर दिया । पराधीन जनता के सामने अपनी प्राचीनता के गौरव को प्रतिष्ठित करके उन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया । स्वतन्त्र होने की प्रबल आकांक्षा उनमें जाग उठी । राष्ट्रीयता की उमंग बढ गयी और अपनी अतीत संस्कृति का गुणगान करके उससे बल प्राप्त किया । प्राचीन साहित्य के शूर-वीर पुरुषों की स्मृति जागृति में अवश्य सहायक बन गई ।

वीरपूजा की भावना

भारत के अतीत को गौरवशाली बनाने में उसके रणकुशल योद्धाओं की वीरता का भी योगदान है । द्विवेदीयुग में अपने राष्ट्र उन्नायकों तथा आदर्श पुरुषों की प्रशस्ति के गीत काफी मिलते हैं जिससे जनमानस के हृदय में व्याप्त श्रद्धा का परिचय हमें मिलता है । भारतीय संस्कृति का एक प्रधान गुण वीरत्व माना जाता है । नरवीर ही देश का सदा रक्षण करते रहे हैं । अतीत काल के पौराणिक तथा ऐतिहासिक महापुरुषों के देश के प्रति किए गए उत्सर्ग एवं बलिदानों के वर्णन नवपीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करने में सहायक होते हैं तथा उन्हें मार्गदर्शन मिलता है । कवियों ने अपने पुण्य पुरुषों के साथ ही वीर पुरुषों की भी स्तुति की है । वीरों का नामोच्चारणमात्र निष्प्राणों में शक्ति का संचार कर देता है, अतएव वे इनका गौरव-गान करना भी आवश्यक समझते हैं । कविगण अपने पूर्वजों के अतुलित पौरुष का आदर्श सम्मुख रखते हुए जाति में धैर्य की व्यंजना करते हैं ।

वर्तमान काल में अपने त्याग, तपस्या और कर्मनिष्ठा तथा सेवा से देश के कर्णधार वंदनीय होते हैं । राष्ट्रवीरों के इन्हीं महान क्रियाकलापों का वर्णन द्विवेदीयुगीन साहित्य में भी मिलता है । राजनैतिक चेतना जैसे जैसे भारतीयों में बढती गई वैसे वैसे वीर पूजा की भावना को बल मिला । अतीत की गौरवपूर्ण स्मृति ने वीरपुरुषों के उज्वल चरित्र तथा आत्मबलिदान द्वारा वर्तमान काल में भारतीय नवयुवकों का सफल मार्ग दर्शन किया तथा उन्हें राष्ट्र सेवा की ओर उन्मुख किया । यह द्विवेदीयुग की एक मूल प्रवृत्ति थी ।

महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने राम जैसे शूरवीर राजाओं की उपस्थिति से भारतवर्ष को महान बताया है[1] । श्री॰ जगन्नाथदास रत्नाकर जी ने ब्रजभाषा में कुछ वीररस की कविताएँ की हैं तथा ऐतिहासिक महापुरुषों व वीर वीरांगनाओं के शौर्य का वर्णन किया है[2] । क्षत्रियों की वीरता तथा प्रण पालन के आदर्श को स्पष्ट करते हुए मैथिलीशरणगुप्तजी कहते हैं -

"राना-प्रताप समान तब भी शूरवीर यहाँ हुए ।
स्वाधीनता के भक्त ऐसे श्रेष्ठ और कहाँ हुए ?
सुख मानकर बरसों भटक कर सर्व दुखों को सहा,
पर व्रत न छोडो शाह को बस तुर्क ही मुख से कहा[3] ।"

---

1. जहाँ हुए व्यास मुनि प्रधान ।
   रामादि राजा अति कीर्तिमान ।
   जो थी जगपूजित धन्य धाम ।
   वही हमारी यह आर्यभूमि है । द्विवेदी काव्यमाला, पृ॰406
2. रत्नाकर का सम्पूर्ण काव्य संग्रह (काशी ना॰प्र॰सभा) पृ॰494
3. भारत-भारती -मैथिलीशरणगुप्त, अतीत खंड, छन्द 238, पृ॰85

गुप्तजी भारत के रणबाँकुरे वीरों की अद्वितीय शक्ति का परिचय देते हुए लिखते हैं -

"जो एक सौ-सौ से लड़ें ऐसे यहाँ पर वीर थे,
सम्मुख समर में शैल सम रहते सदा हम धीर थे,
शंका न थी, जब-जब समर का साज भारत ने सजा
जावा, सुमित्रा, चीन, लंका, सब कहीं डंका बजा ।"[1]

लाला भगवानदीन ने वीरपंचरत्न के माध्यम से प्रताप तारा, दुर्गावती, अभिमन्यु, आल्हाऊदल आदि का बड़ी सरल किन्तु ओजमयी भाषा में वर्णन किया है[2]। उनकी राष्ट्रीय भावना पौराणिक तथा ऐतिहासिक शूर वीर की प्रशक्ति के रूप में मिलती है -

वीरत्व से है जिसने अचल कीर्ति कमाई ।
निज देश को निज शक्ति की करतूत दिखाई ।
वीरत्व पै रंगत हो गई जिसमें चढाई ।
निज देश के बच्चों को ही शुभ सीख सिखाई ।
और जो देखी पर ताप के भालों की चमाचम,
आँखें हुईं अनल सी हुआ मुँह भी तमातम[3] ।"

1· भारत-भारती - मैथिलीशरणगुप्त, अतीत खंड, छन्द 129, पृ·57
2· वीर पंचरत्न - लाला भगवानदीन
3· वही

कविवर सियारामशरणगुप्त ने भारत के चारित्रिक उत्कर्ष की भावना अपने मौर्यविजय में व्यक्त की है[1]। कविवर ठाकुर गोपालशरणसिंह अपने पूर्वपुरुषों पर अभिमान प्रकट करते हैं। उनके बल, उनके प्रताप तथा उनकी शूरता से कवि आज भी प्रभावित दिखाई देते हैं। शक्ति के चिह्नस्वरूप भीम और अर्जुन तथा प्रताप और शिव की स्मृति करते हुए कवि जाति में स्फूर्ति तथा साहस का ही संदेश देना चाहते हैं[2]।"

श्री• गयाप्रसादशुक्ल सनेही "त्रिशूल" ने राष्ट्रीयहोली शीर्षक कविता में देश के नेताओं की प्रशंसा एवं गुणगान करते हुए देश राग की तान सुनाई है[3]। श्री• सत्यनारायण कविरत्न ने देशप्रिय नेता महात्मा गांधी की स्तुति में श्री गांधीस्तव लिखा तथा श्रद्धा प्रकट की[4]। सनेही ने एक कविता में तिलक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की[5]। श्री• श्यामनारायण पाण्डेय के हल्दीघाटी महाकाव्य में युद्ध का आवेगपूर्ण वर्णन है[6]। स्वतन्त्रता के अमर पुजारी महाराणा प्रताप ने मातृभूमि की सेवा केलिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। प्रताप की यह आवाज़ ने जनता को बलिदान करने की प्रेरणा दी[7]।

1• मौर्य विजय - सियारामशरणगुप्त, पृ•7

2• माधवी {1938}, पृ•76

3• त्रिशूल - त्रिशूल तरंग {तृतीय सं•}, पृ•102

4• कविरत्न - श्री•गांधीस्तव, सम्मेलन पत्रिका, सं•1974, अंक 889

5• सनेही - वज्रपात - तिलक निधन पर {कविता प्रताप} आगस्त 1920

6• श्यामनारायण पाण्डेय - हल्दीघाटी, पृ•5 प्रथम सं•

7• वीर पंचरत्न - लाला भगवानदीन

वीर पुरुषों के समान भारत की नारियाँ भी वीरांगनाएँ कहलाने योग्य है । गुप्तजी के अनुसार भारत के दिव्य बल-धारिणी वीर नारियाँ विश्व की बडी से बडी शक्ति को अपने चरणों में नतमस्तक कर देने की शक्ति रखती थी[1] । द्विवेदी जी के अनुसार आर्यभूमि की देवियाँ भी स्वयं वीर थी और वीर पुरुषों को जन्म देती थी । उन्होंने अपनी काव्यमाला में उनकी प्रशस्ति का वर्णन किया है ।

"वीरांगना भारत भामिनी थी
वीर-प्रसू भी कुल कामिनी थी,
जो थी जगत्पूजित वीर-भूमि
वही हमारी वह आर्यभूमि है[2] ।"

रामचरित उपाध्याय गार्गी और सावित्री जैसी देवियों की कल्पना करते हुए देश को सुखी एवं स्वतन्त्र देखने की शुभकामना प्रकट करते हैं[3] । कवियों ने भारत की नर-नारियों की गरिमा तथा महिमा का ही केवल बखान नहीं किया वरन् उन वीरों से सम्बन्धित शक्ति के प्रतीक स्थानों को भी तीर्थ-स्थानों के समान पूज्य तथा स्फूर्तिप्रदाता माना है । कवि उन खण्डहरों में भी वीरगति पानेवाले रणधीरों की जयध्वनि सुन पाता हैं । वीरों के रक्त के छींटे उसे आज भी उनके दर और दीवार पर जगमगाते दिखाई देते हैं । निस्सन्देह वीरता और

---

1. भारत - भारती - अतीत खण्ड 43, पृ.14
2. द्विवेदीकाव्यमाला, पृ.407
3. राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ.72

बलिदान के स्तम्भ-स्वरूप ये स्थान आज भी वीरों की याद दिलाते हैं और जर्जर हुई जाति में बल और पौरुष का संचार करने में समर्थ है। श्री॰ ठाकुर प्रसाद शर्मा की पंक्तियों में चित्तौड़गढ की आभा और वीरों की बलिदान गाथा के साथ साथ आधुनिक समय की अवनति पर फटकार भी सुनाई देती है[1]।

राम और कृष्ण जैसे ईश्वरीय पौराणिक चरित्रों के अंकन में भी कवियों ने वीरत्व के प्रबल आग्रह से कार्य किया है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरणगुप्त ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानकों से बहुत से वीर पुरुषों के यशोगान करनेवाली अनेक रचनाओं द्वारा हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य को समृद्ध किया है। इसी वीरत्व की भावना उनके द्वापर में कृष्ण-बलराम आदि के दिव्य चरित्रों में आलेखन की गई है। जयद्रथ-वध नामक खण्डकाव्य भी महाभारतयुग की वीर-भावना को मुखरित करता है। इस वर्णन में ओज की मात्रा का प्राधान्य है। यह लोकमान्य तिलक जैसे उग्र राष्ट्रवादियों का प्रभाव है, जिन्होंने देशवासियों को अपनी छिपी हुई शक्ति पहचानने केलिए देश के वीर-चरित्रों की ओर देखने का प्रयास किया था। गुप्तजी ने अपनी रचनाओं में राम, अर्जुन आदि बहुत से महारथियों के चरित्र का वर्णन किया है[2]। रामनरेशत्रिपाठी ने राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनुमान भीष्म, कृष्ण, द्रोण, भीम, अर्जुन, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि का स्मरण किया है[3]। वियोगी हरि ने भी वीरसतसई में

1· राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ॰105

2· मैथिलीशरणगुप्त - भारत भारती, पृ॰49, छठवाँ संस्करण

3· रामनरेश त्रिपाठी - मानसी, पृ॰37,39

सत्यवीर, शूरवीर, दयावीर, धर्मवीर, युद्धवीर, आदि का लक्षण देकर राघव प्रतिज्ञा, सौमित्र प्रतिज्ञा, भीष्मप्रतिज्ञा, अर्जुन प्रतिज्ञा आदि का वर्णन किया है ।

द्विवेदीयुगीन कवियों की अतीत विषयक मान्यताएँ

नवजागरण के तुरन्त बाद साहित्य रचना करनेवाले द्विवेदीयुगीन कवियों पर पुनर्जागिरण के तत्वों एवं उसके आधार पर बुनी हुई नई और उदार सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है । मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, श्रीधर पाठक, नाथूरामशर्मा शंकर आदि सभी कवियों ने अतीत के आदर्शों को आत्मसात करते हुए इन्हें अपने काव्यों में यथोचित स्थान दिया था ।

अतीत का गुणगान द्विवेदीयुगीन कवियों की विशेषता रही है । वर्तमान के प्रति असन्तोष तथा अतीत को गौरवशाली वर्णित करके कवियों ने जन-जागृति का एक महान कार्य कर दिखाया द्विवेदीयुग के कवियों की रचनाओं में नवचेतना का स्पष्ट संदेश प्रस्फुटित होता है । वे देश का पुनरुत्थान चाहते थे जिसकेलिए जनता को उनके अतीत से अवगत कराना उन्होंने आवश्यक समझा । उन्होंने प्राचीनता का चित्रांकन किया और हिन्दुओं में अपने विनष्ट हुए गौरव को पुनः हस्तागत करने की एक प्रबल उमंग भर दी । उन्होंने देशवासियों को अपने देश तथा अपने गौरव पर अभिमान करना सिखाया । नीचता की अनुभूति ही मनुष्य को उच्चता की ओर प्रेरित करती है । यह कवियों का ही उद्योग था कि निर्जीव तथा उखड़ी हुई जाति अपने में नवीन उत्साह एवं

सजीवता लाकर फिर से अपने पाँव पर खड़े होने के योग्य होने लगी । अतीत के प्रकाश की ओर जनता की चित्तवृत्ति को आकृष्ट कर वे वर्तमान का अन्धकार दूर करना चाहते थे । उनके शब्दों में आशा है, सजगता है, आवेग है तथा चिरनिद्रा से जाति को विमुक्त कर उसे फिर से गौरववान देखने की शुभ कामना विद्यमान है ।

पं• श्रीधर पाठक अतीत के प्रति मोह रखनेवाले कवि थे । उन्होंने तो प्राचीनता के प्रति आस्था रखकर सभी प्राचीन ग्रंथों को पढा एवं उनमें रुचि पाकर बाल्यावस्था में ही दूसरों की सहायता के बिना उन्हें समझने की कोशिश भी की । बाद में उनके काव्यों की प्रेरणास्रोत यही आस्था ही मालूम पड़ता है । उन्होंने इस अतीत प्रेम के बारे में स्वयं अपनी जीवनी में कहा है -

"अत: मैं स्वयं प्राचीन ग्रंथादि को
जो कि घर में धरे विविध बहु संग्रह थे,
किसी भी दूसरे के सहारे बिना,
परम शुचि प्रेम औत्सुक्य, त्यों सुरुचि से
नित्य ही देखने तथा पढने लगा,
और यह शौक अब रोज़ बढ़ने लगा[1] ।"

1• श्रीधर पाठक - स्वजीवनी, पृ•4

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का दृष्टिकोण अतीत के प्रति नकारात्मक नहीं है । वे उसके पुनर्मूल्यांकन, बुद्धिसंगत ज्ञान के पक्ष में हैं । वे जानते थे कि अतीत पर गर्व राष्ट्रीय आत्मसम्मान का अभिन्न अंग है और स्वाधीनता आन्दोलन केलिए यह आत्मसम्मान की भावना अत्यन्त मूल्यवान है । इसीलिए उन्होंने वेदों के पठन-पाठन पर ज़ोर देते हुए अपनी चेतना को सशक्त रूप दिया था[1] ।

अतीत चिन्तन एवं मान्यता के प्रति अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी की भी बडी आस्था थी । इसकेलिए आर्यजाति एवं सनातन धर्म के प्रति उनका झुकाव स्पष्ट उल्लेखनीय है । उन्होंने उस पर अपना विश्वास प्रकट करते हुए यों कहा है कि "आर्य जाति का धर्म सिद्धान्त सदा सर्व देशी और व्यापक रहा है क्योंकि वह "वसुधैवकुटुम्बकम्" है । मैं उसी सिद्धान्त का अनुमोदक एक साधारण प्राणी हूँ[2] ।" प्रियप्रवास जैसी उनकी काव्यकृतियों में इसी आदर्श का प्रतिफलन हमें मिलता है । श्रीकृष्ण के मुख्य से निकले हुए यह उद्गार उनकी सर्वभूतहित सम्बन्धिनी भावना को स्पष्टता के साथ व्यक्त करता है -

"प्रवाह होते तक शेष-श्वास के
स-रक्त होते तक एक भी शिरा ।
स शक्त होते तक एक लोम के
किया करूँगा हित सर्वभूत का[3] ।"

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण - रामविलास शर्मा, पृ.120
2. इतिवृत्त - हरिऔध, पृ.144
3. प्रियप्रवास - हरिऔध, पृ.

मैथिलीशरणगुप्तजी के काव्यों के अधिकांश वर्ण्यविषय पौराणिक ही है। वे अतीत के प्रति अखण्ड विश्वास रखते थे। उनके मत में वर्तमान की उज्ज्वलता केलिए अतीत की खोज की ज़रूरत है। उनके ही शब्दों में -

"ज्यों ज्यों प्रचुर प्राचीनता की खोज बढ़ती जायगी
त्यों त्यों हमारी उच्चता पर ओप चढ़ती जायगी[1]।"

मात्र प्राचीनता का प्रेमी बनते हुए लकीर का फकीर बनना गुप्तजी को अभीष्ट नहीं था। परिवर्तन को वे सहज रूप में स्वीकार करते थे। भारत-भारती में उन्होंने इसे व्यक्त कर दिया है -

"प्राचीन बातें ही भली है यह विचार अलीक है
जैसे अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है[2]।"

वे सामयिक मूल्यों के साथ प्राचीन गौरवपूर्ण तत्वों का सन्तुलन करते जाते थे -

"परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढते जाते हैं
किन्तु मुझे तो सीधे सच्चे पूर्वभाव ही भाते हैं[3]।"

---

1. भारत-भारती - मैथिलीशरणगुप्त, पृ.72
2. वही, पृ.166
3. पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.

सियारामशरण गुप्तजी के अनुसार भारतीयों को अपना महत्व दिखाने केलिए अतीत की ओर ही जाना चाहिए[1]। प्राचीन भारत के इतिवृत्त की बातों और घटनाओं के आधार पर सियारामशरण गुप्त जी ने अनेक रचनाओं की सृष्टि की है। डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र के अनुसार, "कवि ने मौर्यविजय में सिल्यूकस के भारत आक्रमण की कथा को अंकित किया है और कवि हम कौन थे, क्या हो गये के प्रति भी जागरूक है तथा उसे यह विश्वास है कि अतीत के गान हमारी शिराओं और धमनियों में नवीन रक्त का संचार करते हैं[2]।" सियारामशरण गुप्तजी ने अपने काव्यों में भारत की सांस्कृतिक गरिमा का चित्रण करते हुए अतीत का गौरवगान किया।

पं॰ मोहनलाल द्विवेदी अपने देश एवं संस्कृति के प्रति राग व त्यागमूलक भावना जागृत करने केलिए अतीत को बहुत आवश्यक ही समझते हैं। इसीलिए कवि भारतीय चिन्तन की प्राचीनकालीन भूमिका को प्रस्तुत करते हुए अपनी रचनाओं में त्याग से भोग की औपनिषदिक मान्यताओं को प्रकाशित करते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त द्विवेदीजी ने "वासवदत्ता", कुणाल, विषपान, प्रभृति ऐसे काव्य-ग्रन्थों का निर्माण किया।

---

1. मौर्यविजय - सियारामशरण गुप्त
2. सियाराम शरण गुप्त की काव्य साधना - डॉ॰दुर्गाशंकर मिश्र, पृ॰40

अतीत का गौरवगान

द्विवेदीयुग के प्राय: सभी कवियों ने अतीत के प्रति अटूट आस्था दिखाई है जिसकी स्पष्ट झलक उनकी काव्यकृतियों में मिलती है । इसी आस्था के फलस्वरूप उनके काव्यों में प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रतिफलन भी मिलता है । प्राचीन भारतीय संस्कृति में उन्हें भारत के उज्ज्वल अतीत के दर्शन होते हैं और वर्तमान दशा की तुलना में भारत के उज्ज्वल अतीत की महिमा का वर्णन इस युग के प्राय: सभी कवियों ने किया है ।

सुप्त जनता को प्रबुद्ध करने केलिए यही एकमात्र संजीवनी थी जिसका प्रयोग करते हुए उन्होंने देश के उद्धार का महत्वपूर्ण प्रयत्न किया निरंतर दासता के कारण जनता के भीतर वर्तमान जीनता की भावना को तोड़कर उनमें नई चेतना का समावेश करते हुए राष्ट्र के उद्धार में सक्रिय बनाने का कार्य द्विवेदी युगीन कवियों ने किया । अतीत का यह गौरवगान राष्ट्रीय जागरण का एक प्रमुख अंग रहा । द्विवेदीयुगीन कवियों ने अतीत का वैभवपूर्ण चित्रण मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में सर्वाधिक सशक्त रूप में मिलता है । उनकी प्राचीन भारत आदि रचनाओं में भारत के गौरव का खूब वर्णन मिलता है । इस प्रवृत्ति का विकास भारत भारती में आकर देखा जा सकता है । भारत-भारती के प्राचीन खण्ड में भारत के गौरवमय अतीत का सुन्दर वर्णन मिलता है । आर्यसंस्कृति और भारतीय संस्कृति के प्रति कवि की आस्था अविचल और अजस्र रूप से भारत-भारती में मुखरित हुई है ।

---

1. सरस्वती, जनवरी 1910, पृ. 17

डॉ॰ सुधीन्द्र के शब्दों में वैदिक काल से भारत भारती की चित्ररेखा चलती है और रामायण-महाभारत युगों में से होती हुई, बौद्धकाल को पार करती हुई, विक्रम का स्मरण करती हुई उस सीमारेखा पर आ पहुँचती है जिसके आगे यवन-राजत्व का सूत्रपात होता है। देश की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना यहीं उद्बुद्ध होती है और कवि पृथ्वीराज राणाप्रताप और छत्रपति शिवाजी को तिलक-बिन्दु लगाता हुआ अन्त में ललकार उठता है[1]।"

प्राचीन भारत की सम्पन्नता एवं हमारे श्रेष्ठ पूर्वजों की महानता का वर्णन करते हुए गुप्त जी यही निष्कर्ष निकालते हैं -

"देखो हमारा विश्व में कोई उपमान नहीं था
नर देव थे हम और भारत देवलोक समान था[2]।"

अतीत काल में भारतवासी पूर्णतया स्वतन्त्र थे। देश में धनधान्य का अभाव नहीं था। भौतिक ऐश्वर्य की समृद्धि के कारण ही वह विदेशियों द्वारा आक्रान्त हुआ। प्राचीन भारत में शिल्पकला अपनी पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुकी थी। इसी कारण देवदम्पति भी यहाँ आकर विश्राम करना चाहते थे। प्राचीन भारत के शिल्प कौशल के आदर्शों की अभिव्यक्ति भारत भारती में सुन्दर ढंग से हुई है[3]।

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ॰सुधीन्द्र, पृ॰185
2. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ॰16
3. वही, पृ॰43-44-45

हिन्दू में भी प्राचीन भारत के संपन्न साधनों का जिक्र करते हुए गुप्तजी ने भारत के स्वर्णमय अतीत का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है । गंगा-यमुना के जल से सिंचित भारत में अन्नों के खेत एवं मणियों की खानें प्रभूत मात्र में वर्तमान थी जो इस देश के संपन्न अतीत को संपन्न करती थी[1] ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी अतीत की स्मृति में अपने महान पूर्वजों की परम्परा का स्मरण करते हुए उस पर गर्व प्रकट करते हैं । उनका कहना है - "हम उन महान व्यक्तियों की संतति है जिन्होंने बार बार बहुत सी जातियों को उबारा । हमारी रगों में उन मुनिजनों की लहू है जिनकी पदरज राज्य से भी अधिक प्यारी है । हमारा एक मुख था, परन्तु हमने दशमुख को मारा था, दो बाहुओं से सहस्र बाहुओं को हराया था । ठोकरें मारकर हम मेरु पर्वत भी चूर करते थे । जहाँ हम पैर रखते थे वहाँ धन बरसता था ।"

पं॰ रामनरेश त्रिपाठी के मत में भारत ही वह सबसे पहला देश है जिसने सभ्य होकर विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया और यहीं अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी गौतम पतंजलि आदि हुए[2] ।

सियारामशरण गुप्त ने मौर्यविजय में प्राचीन भारत के वीर नृपवर चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा वर्णित की है । भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के सम्बन्ध में उनका कहना है कि

---

1. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ॰45
2. मानसी - रामनरेश त्रिपाठी

अन्य देशों ने भी इसी देश मे सदुपदेश पीयूष का पान किया है । प्राचीन भारत में कहीं भी दुष्चरित्रता नहीं थी । सब के मानस सद्भाव से परिपूर्ण थे । सब कहीं धर्म का बोलबाला था । देश समुन्नत था[1] ।

स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने अतीत स्मृति को जगाते हुए महान भारतभूमि का गौरव इन शब्दों में गाया है -

"जहाँ हुए व्यास मुनि प्रधान ।
रामादि राजा अति कीर्तिमान ।
जो थी जगपूजित धन्य धाम ।
वही हमारी यह आर्यभूमि है[2] ।"

ठाकुर गोपालशरणसिंह अपने देश के प्राचीन गौरव पर हर्ष प्रकट करते हुए शत्रुओं पर भी दया दिखानेवाली भारतवर्ष की जनता की उदारता पर संकेत करते हैं[3] ।"

इस प्रकार पतितपराजित जाति में राष्ट्रीय भावना जगाकर उसे राष्ट्रीय कर्तव्य की ओर उद्यत करने केलिए अतीत का गौरवगान अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ । अतीत के

1· मौर्यविजय - सियारामशरण गुप्त, पृ·7
2· द्विवेदी काव्यमाला, पृ·406
3· संचिता (1939), पृ·156

वैभव एवं गौरव की स्मृति ने परतन्त्र देश को दासता की शृंखलाओं को तोडने की प्रेरणा दी और गौरवशाली भविष्य के निर्माण की आशा दी ।

वर्तमान दशा पर क्षोभ

अतीत के गौरवगान के साथ साथ द्विवेदीयुगीन कवियों ने वर्तमान काल की हीनावस्था का चित्रण भी किया है और भारत की इस हालत केलिए विदेशी शासकों को दोषित ठहराया है । मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में वर्तमान खण्ड के अन्तर्गत अपने ऐश्वर्य खोकर खडे हुए भारत की ओर प्रश्नचिह्न लगाया है । यज्ञ की धूममयी घटा से आमोद बरसानेवाली स्वर्ग के समान यश तुल्य भारत भूमि आज दुर्भिक्ष अकाल एवं महामारियों से पीडित है ।[1] दारिद्र्योपहत भारत का दयनीय वर्णन करते हुए गुप्तजी कहते हैं -

"रहता प्रयोजन से प्रचर पूरित जहाँ धन-धान्य था
जो स्वर्ण-भारत नाम से संसार में सम्मान्य था;
दारिद्र्य दुर्धर अब वहाँ करता निरन्तर नृत्य है,
आजीविका अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है ।"[2]

---

1. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, पृ.82
2. वही, छन्द 9, पृ.83

प्राचीन भारत के धार्मिक सम्पन्नता अब लुप्त प्राय हो गई है। वर्तमान भारत में धर्म की कोई महत्ता नहीं है। हर कहीं दुष्कर्म एवं भुभुक्षा का बोलबाला है। पृथ्वी का उर्वरापन नष्ट हो गया है और कृषि कर्म की उत्कर्षता देखने को नहीं मिलती। कर्षकों की स्थिति शोचनीय हो गई है। प्राचीन भारत में जिस गो-वध को निषिद्ध माना जाता था वर्तमान भारत में सर्वत्र व्याप्त है। व्याधियों से लोग इस प्रकार ग्रस्त रहे हैं कि वे बेमौत ही मर रहे हैं। कुल मिलाकर वर्तमान भारत की स्थिति बडी शोचनीय है। भारत की शोचनीय अवस्था का चित्रण त्रिशूल के त्रिशूल तरंग में खूब मिलते हैं। उन्होंने सुन्दर और सरल भाषा में देश की गरीबी किसानों की दुर्दशा और समाज की कुरीतियों का मार्मिक चित्रण किया है -

"हिन्द की हाय दौलत कहाँ बह गई
और क्या इल्म का वह खजाना हुआ ?
सत्यनिष्ठा गई चापलूसी रही,
दाँत हम हकिमों के दिखाने लगे।"[1]

रामनरेशत्रिपाठी ने पथिक के माध्यम से भुभुक्षा एवं दारिद्रय का हृदय विदारक चित्र खींचा है, वर्तमान भारत में घर घर में भूख की ज्वाला धधक रही है। लोगों के शरीर का माँस गलगल कर नष्ट हो गया है और वह अस्थिशेष रह गये हैं।

---

1. त्रिशूल तरंग - गयाप्रसादशुक्ल सनेही त्रिशूल तृतीय सं॰ पृ॰27

"अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने केलिए घर भी नहीं है ।
कोई किसी का साथी नहीं, कोई अपना नहीं ।"[1]

नाथूराम शर्मा शंकर भारत की भाग्यलक्ष्मी की चंचलता पर खेद प्रकट करते हुए अतीत की तुलना वर्तमान के साथ करते हैं । यही भारत एक समय सबका अग्रगण्य और देश विदेश में सभी का पथ-प्रदर्शन किया करता था । परन्तु आज वह दरिद्र बना है । उसके पास कौडी तक नहीं, भूखों मरता है । जो भारत एक समय सारे देशों का स्वामी था आज दूसरों का दास बना है । देश की लुटी हुई वीरता धीरता कला कौशल आदि पर गोपाल शरणसिंह उन्हें अपने खोये हुए वैभव की याद सताती है । वे वर्तमान दीनावस्था पर आक्रोश प्रकट करते हुए अपनी मनोविकार प्रकट करते हैं ।

सियारामशरणगुप्त ने अतीत के स्मरण के साथ वर्तमान अवनति के चित्र भी प्रस्तुत किया है । अतीत में जनता के बीच जो प्रेम एवं सद्भाव फैले हुए थे, आज का भारतीय समाज उनसे वैर का वरण करके संकुचितपन एवं परापहरण से घिरे हुए दीख पड़ते हैं -

---

1. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, पृ.45

"इतना यह चारों ओर संकुचितपन है,
कितना यह चारों ओर परापहरण है ।
सम्पूर्ण अरक्षित आज यहाँ जीवन है,
किस नये प्रेम से वैर विरोधावरण है ।"[1]

द्विवेदीयुगीन कवियों ने वर्तमान दुर्दशा का करुणात्मक दृश्य उपस्थित कर केवल अपनी अधोगति का रोना ही नहीं रोया, वे अपने पतन तथा ह्रास पर भी निराश होकर मौन बैठना नहीं चाहते वरन् उनमें फिर से ऊपर उठने की एक उमंग भी विद्यमान है । इसमें बाधा बनकर उनके सामने विदेशी शासन की समस्या आ गई है । इस विषैले वातावरण के घातक परिणामों की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करते हुए द्विवेदीयुगीन कवि विदेशी शासन का प्रति विरोध प्रकट करते हैं ।

विदेशी शासन के प्रति विरोध

भारत की इस वर्तमान दैन्य दशा के मूल कारण द्विवेदीयुगीन कवियों के अनुसार विदेशी शासन ही है । कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् देश की जनता के समक्ष एक रूप रेखा रखी गई जिसके अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रयत्न होने लगा । विदेशी शासन का खुलकर विरोध होने लगा और

---

1. दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, पृ.51

असहयोग की भावना बढ़ने लगी । द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने काव्य में इसका सुन्दर अंकन किया है ।

श्री• गिरिधर शर्मा ने "कलंकी का एड्रेस" शीर्षक कविता में परोक्ष रूप से पाश्चात्य ज्ञान व ब्रिटिश शासन की निंदा की है । वे कहते हैं कि "रे रात को आनेवाले चन्द्रमा {दोषों के आकार} तेरी शुद्धि किस भाँति होगी । रात्रि हो जाने पर द्विज गणों को पक्षिसमूह {विद्वान पुरुषों} को तू ने अलग बिठा दिया है तथा मूर्ख दिवांध {उल्लू} को अपने पास बुलाया है । पूर्व दिशा के सूर्य ने {भारत वर्ष} तुझे सुमनों को खिलाने केलिए प्रकाश दिया किन्तु खिले हुए पुष्पों के गुच्छे तेरी आँखों को अच्छे नहीं लगे और उन्हें तू ने तुच्छ ही जाना । अब तू ने बहुत से अत्याचार और जुल्म किए है । तू ने देश के टुकडे {बंग-भंग} लिए तथा तू पापों से भी नहीं डरते[1] ।"

नाथूरामशर्मा "शंकर" उनकी कविताओं के माध्यम से विदेशियों का खुलकर विरोध करते हैं[2] । बंग - भंग के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण देश में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया । युगनिर्माता द्विवेदीजी जनता से अपने देश की बनी वस्तुओं को अपनाने का अनुरोध करते हैं और उसे देश की पूँजी के विनाश को रोकने का आदेश देते हैं -

---

1• कलंकी का एड्रेस - श्री• गिरिधर शर्मा, सरस्वती, दिसंबर 1905

2• भारत-माता का निरीक्षण - शंकर सर्वस्व, पृ•235

"विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं ?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं ?
न सूझे है अरे भारत भिखारी ।
गई है हाथ तेरी बुद्धि मारी ।
स्वदेशी वस्त्र को स्वीकार कीजे
विनय इतना हमारा मान लीजे ।
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो,
न जाओ पास उससे दूर भागो ।"[1]

रामदेवीप्रसाद पूर्ण की कविताओं में स्वदेशी प्रेम-भावना खूब व्यक्त हुई है । उन्हें अपने ही देश का अन्न-जल प्रिय है और वे इसी से अपना जीवन पुष्ट करना श्रेयस्कर समझते हैं[2] । रामचरित उपाध्याय की वाणी राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत है । जन्मभूमि के प्रति कवि के हृदय में समाया हुआ अनुराग काव्य पंक्तियों के रूप में प्रस्फुटित हुआ है[3] । वे विदेशी वस्तुओं के परित्याग को अपनी आर्थिक सम्पन्नता का कारण समझते हैं[4] । मैथिलीशरणगुप्त विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी वेषभूषा पर श्रद्धा रखनेवालों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हैं और इसके दुष्परिणामों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कराते हुए स्वदेशी वस्तुओं की आवश्यकता और महत्व की ओर संकेत करते हैं[5] ।

---

1. द्विवेदी काव्य माला, स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार, पृ.368-370
2. स्वदेशी कुण्डल - रायदेवीप्रसादपूर्ण, पृ.8
3. राष्ट्रभारती (राष्ट्रीय शिक्षा ग्रन्थमाला, आरा) पृ.2 प्र.सं.
4. वही, पृ.74
5. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड 85, पृ.103

सैयद अमीर अली "मीर" भी देशी कला-वृद्धि केलिए विदेशी वस्तुओं पर धन स्वाहा करना अनुचित समझते हैं[1]।
माधव शुक्ल ने बड़े स्पष्ट स्वर में विदेशी शासकों के अन्याय व अत्याचारों को सामने रखा और निन्दा की । उनमें विद्रोह तथा क्रान्ति का स्वर तीव्र होता हुआ दिखाई देता है -

"पंजाबी महिलाओं की इज्जत दुष्टों ने खाक की
जालियाँवाला बाग में मेरे बच्चों का सिर चाक किया
इनका अन्याय देखकर सूरज चंदा भी शरमिंदा है
उदाहरण जिसका कि दुष्ट डायर अब तक भी जिंदा है[2]।"

इन कवियों के उद्योग से जनता में स्वाभिमान की भावना जागृत होने लगी और वे एक बनकर गुलामी को तोड़ने केलिए कटिबद्ध होने लगे । विदेशियों को भगाने केलिए वे सब एक बनकर अपनी मातृभूमि केलिए सब कुछ त्याग करने केलिए तैयार बन गये । उनकेलिए मातृभूमि सब कुछ था और वे उनकी वन्दना करके विदेशियों के सामने उसके महत्व को ऊँचा दिखाया । उसकी प्रशस्ति में मग्न होकर वहाँ से विदेशियों को निकालना उचित ही समझा । उनके स्वदेशप्रेम एवं देशभक्ति जागृत होने लगी ।

---

1. कविता कौमुदी, द्वितीय भाग, रामनरेश त्रिपाठी, पृ.329
2. जागृत भारत - श्री. माधव शुक्ल, पृ.10, प्र.सं.

भारतवन्दना तथा प्रशस्ति

प्राचीनता के प्रति प्रेम एवं वीरपूजा की भावना ने लोगों में राष्ट्र के प्रति अपनत्व जागा दिया जिसने कविता में आकर देशभक्ति का रूप निखार दिया । द्विवेदीयुगीन कविता में राष्ट्रीयता की भावना के अन्तर्गत इस प्रकार की देशभक्ति के द्योतक स्वदेशप्रेम से ओतप्रोत देशवन्दना के गीत एवं प्रशस्तियाँ काफी मिलती हैं ।

पं॰ श्रीधर पाठक हिन्दी में भारत देवत के प्रथम महागायक थे । उन्होंने अपने देश की नैसर्गिक कमनीयता केलिए विख्यात भौगोलिक आकृति का दिग्दर्शन कराया है और इसी देश में जन्म लेने पर अभिमान करते हुए अपने देश की प्रत्येक वस्तु की श्रेष्ठता की चर्चा की है[1] । भारत वन्दना में श्रीधर पाठक ने भारत की स्तुति की है । अपनी जन्मभूमि को वन्दना के सुमन चढाते हुए कवि ने कितनी ललित भाषा में अपने मनोभावों को व्यक्त किया है -

"प्रनामि सुभग सुदेश भारत सतत मम-मनरंजनम्
मम देश मम सुख धाम मम तन-प्रान-धन-
मम तात-मात सुतादि प्रिय निज बंधु गृह गुरु मंदिरम
सुर,असुर-नरनागादि अगनित जाति जन पद सुन्दरम्[2] ।"

1· वतन के गीत [विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा] पृ·52,प्र·सं·
2· भारतगीत - श्रीधर पाठक, पृ·42, द्वि·सं·

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जन्मभूमि की वन्दना करके अनेक कविताओं की रचना की है । इन कविताओं के माध्यम से उन्होंने मातृभूमि के प्रति अपनी श्रद्धा के फूल चढाये हैं । "जन्मभूमि की बलिहारी हैं । यह सुरपुर से भी प्यारी है ।" इन शब्दों में उन्होंने भारत के गौरव को स्पष्ट किया है । इन पंक्तियों में "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का भाव अंकित है । भारतवर्ष तथा मेरे प्यारे हिन्दुस्तान शीर्षक कविताओं में हम द्विवेदीजी के उदार भावों का परिचय पाते हैं -

"जे जे प्यारे देश हमारे, तीन लोक में सबसे न्यारे,
हिमगिरि - मुकुट मनोहर धारे सुभग सुवेश ।
बल दो हमें ऐक्य सिखाओ, संभलो देश होश में आओ,
मातृभूमि-सौभाग्य बढाओ, मेटो सकल क्लेश[1] ।"

अयोध्यासिंह उपाध्याय जी ने भी कुछ स्फुट कविताओं में भारत के यश वैभव का चित्रण किया है[2] । कविरत्न रत्नाकर ने रोग, अकालग्रस्त, अस्थिपंजर शेष भारत माता का कारुणिक दृश्य खींचा है जिसे पढकर कोई ऐसा भारतीय होगा जो द्रवित नहीं होगा[3] । राय देवीप्रसादपूर्ण ने भी मातृभूमि की वंदनाके सम्बन्ध में अनेक गीत लिखा है[4] ।

1· द्विवेदी काव्यमाला, प्रथम सं·, पृ·365
2· कल्पलता, हरिऔध, पृ·30, प्रथम सं·
3· द्विवेदीयुग का हिन्दी काव्य - डाॅ·रामसकलशर्मा,पृ·271
4· रायदेवीप्रसादपूर्ण - स्वदेशी कुण्डल, पृ·13, प्र·सं·

इस युग में देशभक्ति के सबसे प्रसिद्ध गायक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त रहे जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय जागरण का शंख फूंका । भारतवर्ष गुप्तजी केलिए स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। भारत भारती में वे इस पुण्यभूमि को सबसे महत्वपूर्ण दिखाते हैं । भारत का प्रशस्तिगान करते हुए संसार में भारत का ही उत्कर्ष मानते हैं । ऋषिभूमि होने के कारण गुप्तजी के मन में भारत केलिए विशिष्ट आदर्श रहा है[1] । हिन्दू में उन्होंने हमारा हिन्दुस्तान शीर्षक के अन्दर भारत वर्ष के तप, त्याग आदि की महत्ता, कर्मबलिदान और इसके ज़रिये निर्वाण तक पहुँचने का महत्व चित्रित किया है । यहाँ के ज्ञानी, ध्यानी, धीर, वीर, गंभीर, गुणी यानी मानी व्यक्तियों के प्रति आदर प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है कि भारत जैसा देश इस संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा[2] । साकेत में स्थान स्थान पर भारतवर्ष के उत्कर्ष को दिखानेवाली पंक्तियाँ प्राप्त होती है । नवम सर्ग के हिमालय का वर्णन अष्टम सर्ग के चित्रकूट का वर्णन आदि मातृ भूमि के गौरव को ही चित्रित करते हैं । द्वादश सर्ग में उर्मिला के द्वारा गुप्तजी ने मातृभूमि के प्रति इन्हीं भावों को व्यक्त कराया है । उर्मिला कहता है -

"उपवन फल-सम्पन्न, अन्नमय खेत हमारे ।
जय पयस्य-परिपूर्ण सुघोषित घोष हमारे;
अगणित आकर सदा स्वर्ण-मणि-कोष हमारे ।
देव दुर्लभा भूमि हमारी प्रमुख पुनीता[3] ।"

---

1. भारत भारती - गुप्तजी, अतीत खण्ड, पद 15,
2. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.22
3. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ.377

उनको भारतमाता सुधामयी, वात्सल्यमयी, शांतिकारिणी शरणदायिनी, क्षमामयी, प्रेममयी, विश्वशालिनी, भयनिवारिणी, सुखकर्ती लगती है[1]। उनकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी कविताओं का संग्रह है स्वदेशसंगीत । मंगलघट में सुरमुनिवंदित अपनी मातृभूमि को भवानी के स्वरूप देते हुए गुप्तजी लिखते हैं -

"जय जय भारत-भूमि भवानी ।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी ।
तेरा चन्द्र-वदन वट विकसित शान्ति सुधा बरसाता है,
मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है ।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी,
जय-जय भारत-भूमि भवानी[2] ।"

कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम अधिकांश कविताओं में प्रकट हुआ है । भारत वर्ष, मेरा देश, स्वर्गसहोदर, मातृभूमि, मातृमूर्ति आदि अनेक कविताओं में विशेष रूप से देश की महिमा और देशप्रेम ओतप्रोत है ।

पं॰ रामनरेश त्रिपाठी देश की महिमा का बखान करते हुए लिखते हैं - "हाँफ हाँफ कर जीनेवाला विषुवत-रेखा का निवासी मनुष्य भी अपनी मातृ-भूमि से प्रेम करता है और ध्रुव प्रदेश का निवासी भी अपनी मातृ-भूमि पर प्राण निछावर करता है ।

---

1. स्वदेशसंगीत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ॰13
2. मंगलघट - मैथिलीशरण गुप्तजी, पृ॰33, प्र॰सं॰

परन्तु हे बन्धु तुमने तो स्वर्ण सी सुखद सकल विभवों की आकार धरोशिरोमणि मातृभूमि में जन्म लिया है[1]। उन्होंने और एक कविता में अपने देश की भौगोलिक आकृति का दिग्दर्शन कराते हैं और इसी देशमें जन्म लेने पर अभिमान करते हुए अपने देश की प्रत्येक वस्तु की श्रेष्ठता की चर्चा करते हैं[2]। सियारामशरण गुप्तजी को अपनी मातृ-भूमि सुखकारी, पुण्यभूमि, माता के समान वसुधा में सर्वोत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ लगती है[3]। ठाकुर प्रसादशर्मा भारत वन्दना में अपनी जननी के समान जन्मभूमि के चरणों में नत होने में अपना गौरव समझते हैं[4]। श्री॰लोचनाप्रसाद पाण्डेय ने भूतल भूषण, पुण्य प्रभामय, सुखशान्ति, सुकर्म सुधाकर, सुषमा शुचि - सद्गुण कहकर मातृभूमि को पुकारा है[5]। सोहनलाल द्विवेदी ने एक कविता में पराधीन भारतमाता की करुण स्थिति का अंकन किया है[6]। उन्होंने दूसरी एक कविता में भारतमाता को सुकुमारी वन्दिनी सीता के रूप में चित्रित किया है[7]। गिरिधरशर्मा भारत माता कविता के माध्यम से मातृभूमि के दिव्य चित्रों के अंकन द्वारा अपने देश प्रेम को अभिव्यक्त किया है[8]।

1· रामनरेशत्रिपाठी - स्वप्न, सर्ग 5, पृ॰90-91
2· जन्मभूमि भारत {आ॰काव्यधारा}, पृ॰181
3· सियारामशरण गुप्त - मौर्यविजय, पृ॰19
4· राष्ट्रीयवीणा, पंचम सं॰ प्र॰भाग, पृ॰2
5· हिन्दी की राष्ट्रीय धारा - डॉ॰लक्ष्मीनारायण दुबे,पृ॰
6· सोहनलाल द्विवेदी - प्रभाती, पृ॰34
7· वही, पृ॰11
8· गिरिधर शर्मा - भारत माता, सरस्वती, पृ॰1905

इस प्रकार इस युग के कवियों के हृदय में भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा की झाँकी अंकित जान पड़ती है जिस से प्रेरित होकर वे उसका गुण-गान करते हुए नहीं अघाते । उनके लिए मातृ-भूमि का कण-कण पावनता से ओतप्रोत है । अपनी भूमि के विषय में यह दैवी कल्पना एवं पुनीत धारणा भारतीय कवियों की अपनी ही विशेषता है ।

भारत वन्दना और प्रशस्ति के अन्तर्गत मातृभूमि की संपन्नता एवं प्राकृतिक सुषमा की झाँकी द्विवेदी युगीन कविता में सुन्दर रूप से अंकित मिलती है । राष्ट्र के प्रति अपनत्व ने मातृभूमि की प्राकृतिक सुषमा के वर्णन की प्रेरणा द्विवेदीयुगीन कवियों में भर दी जिसके फलस्वरूप स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण के साथ साथ राष्ट्र भाव से प्रेरित प्रकृति विभागों का भी खूब वर्णन इस काव्य का विषय बन गया । गंगा और हिमालय के वर्णनों ने इस काव्य में विशेष स्थान पा लिया है । मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में प्रकृति वर्णन का उपयोग देशभक्ति चित्रण के लिए भी किया गया है । चित्रकूट के चित्रण के अन्तर्गत चित्रकूट के गौरव का खूब वर्णन देशभक्ति को ही अभिव्यक्त करता है -

"शिला-कलश से छोड उत्स उद्रेक-सा,
करता है नग-नाग प्रकृति-अभिषेक-सा ।
क्षिप्त सलिलकण किरण योग पाकर सदा,
वार रहे हैं रुचिर रत्न-मणि-सम्पदा ।
वन-मुद्रा में चित्रकूट का नग जड़ा,
किसे न होगा वहाँ हर्ष-विस्मय बड़ा ?"[1]

---

1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ॰157

पं•महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रकृति-प्रेम में भी हम स्वदेश प्रेम की धारा बहते हुए देखते हैं । उन्हें अपनी जन्मभूमि अत्यन्त प्रिय है । देशप्रेम की भावना से प्रेरित होकर द्विवेदीजी ने देश के अंग हिमालय, काश्मीर आदि का वर्णन नहीं किया वरन् मातृभूमि का सार्थक रूप से विवेचन किया है[1] । श्रीधर पाठक ने राष्ट्र-प्रेम से प्रेरित होकर प्रकृति का संवेदनात्मक तथा चित्रात्मक स्वरूप का वर्णन किया है[2] ।

पं॰ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी राष्ट्रप्रेम की भावना में भारत की अधोगति से समस्त प्रकृति को व्यग्र देखते हैं तथा मानव अनुभूति के दर्शन करते हैं[3] । श्री• लोचनप्रसाद पाण्डेय ने हिमालय के सौंदर्य तथा जलप्रपात की शोभा का चित्तात्मक वर्णन कविता कुसुम के माध्यम से किया है[4] । श्री• मुकुटधर पाण्डेय तथा मुरलीधर पाण्डेय की प्रकृति वर्णन सम्बन्धी कविताएं बडी प्रभावोत्पादक है जिनमें भारत के ग्रामों का सरल वर्णन तथा विभिन्न ऋतुओं का सजीव व सच्चा चित्रण हुआ है[5] ।

सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में सत्याग्रही नौजवानों के प्रयाण में प्रकृति खूब साथ निभाती रहती है । यहाँ बेतवा स्वयं दर्पण बनकर बुंदेलखण्डी वीरों की छवि की गरिमा अपने अन्तर में आंक रही हैं । उसकी लहराती हुई लहरों में कवि

1• द्विवेदी काव्यमाला, पृ•358
2• श्रीधर पाठक - देहरादून, पृ•22
3• प्रिय-प्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ•12
4• लोचनप्रसाद पाण्डेय - कविताकुसुम, चं•सं•,पृ•84
5• मुकुटधर पाण्डेय - पूजाफूल ‹प्रथम सर्ग›, पृ•28

नूतन उमंग देखते हैं । इन वीरों के चरण पखारने में बेतवा अपना धन्य भाग्य मानती है । उनकी लहरों की आवाज में भी कवि स्वदेश की जागृति की धुन को सुन रहे हैं । उनका कहना है कि यह बेतवा बुंदेलखंड केलिए श्रृंगार बनी हुई है[1] ।

पं॰ रामनरेश त्रिपाठी पथिक में प्रकृति के तुच्छ तृण के जीवन के भी महत्वपूर्ण उद्देश्य पर हमारा ध्यान आकर्षित करता है । देश के नवयुवकों को अपने कर्त्तव्य के बारे में अवगत कराने केलिए कवि यहाँ संसार की कर्ममयता पर प्रकाश डालता है -

"रवि जग में शोभा सरसाता, सोम सुधा बरसाता ।
सब है लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता ।
उद्देश्य नितान्त तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का ।
उसी पूर्ति में वह करता है अन्त कर्ममय तन का[2] ।"

इन पंक्तियों के द्वारा हमारे मन में इस सत्य की घोषणा की जाती है कि यदि लघु से लघु तृण का जीवन भी कर्ममय है तो हमारे देश केलिए सभी लोगों को अपने प्राण तक निछावर करना ही चाहिए ।

1· बेतवा का सत्याग्रह - जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ॰94
2· पथिक रामनरेश त्रिपाठी, दूसरा सर्ग, पद 18, पृ॰29

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन कवियों ने भारत की श्रेष्ठ प्राकृतिक सुषमा पर मुग्ध होकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा के फूल चढाते हुए अत्यन्त पुनीत भाव से उसका वर्णन किया है। ऐसे पुण्यस्वरूप देश को विदेशी पंजों से मुक्त कराना जाति केलिए एक धार्मिक कर्त्तव्य बन गया। उनके मन में अपने आप इस देश को संभालने की प्रबल इच्छा जाग उठी। भारतीय जनता विदेशियों के शासन से मुक्त होकर स्वयं शासन की बागडोर अपने हाथों में लेने केलिए कोशिश करने लगे। उनके प्रजातन्त्र सम्बन्धी विचारों को महत्त्व मिलने लगा। इसका प्रभाव सामाजिक जीवन एवं साहित्य दोनों में खूब देखनेलायक बन गये।

गांधीदर्शन से प्रेरित विचार

द्विवेदीयुग में हिन्दी राष्ट्रीय कविता में एक नया मोड दिखाई दिया। उसका श्रेय लोकमान्य तिलक को दिया जा सकता है। उनकी प्रेरणा से उनमें क्रान्ति की हल्की-हल्की चिन्गारियाँ दिखाई देने लगीं, ये चिन्गारियाँ धधकने भी न पायी थीं, इसी बीच में भारतीय राजनीति के रंगमंच पर अहिंसा के देवदूत महात्मागांधी का पदार्पण हुआ। उनके प्रभाव से भारतीय राष्ट्रीयता ने एक नई दिशा ग्रहण की। गांधीवादी हिन्दी राष्ट्रीय कविता का उन्मेष सर्वप्रथम हमें मैथिलीशरण गुप्त में दिखाई दिया। उनके अनघ में लोकसेवा, अहिंसावाद, हिन्दू-मुसलमान एकता की अच्छी प्रतिष्ठा की गई है।

पूँजीपतियों के प्रवंचन और शोषण से युग-युग से संतप्त स्वामित्वविहीन वर्ग त्राण पाने केलिए प्रयत्नशील था । महात्मा गांधीजी का विचार था कि सबका सुधार सत्ता और शासन के अंकुश से संभव नहीं है, बल्कि उसकेलिए सबके अन्तर्मन को परिवर्तित कर एक वर्गविहीन समाज की रचना अनिवार्य है । गांधीजी ने किसी नवीन वाद अथवा दर्शन की नींव नहीं डाली । उनका जीवन-दर्शन भारत की प्राचीन संस्कृति का ही एक संस्करण मात्र है । उन्होंने चिरकाल से आच्छादित भारतीय संस्कृति के आवरण को हटाकर उसके स्वच्छ प्रेममय मानवी स्वरूप को पुन: मानवमात्र के सम्मुख प्रस्तुत किया और विश्वभर में आशा का सन्देश प्रसारित कर दिया । गांधीजी के इस जीवन-दर्शन का प्रभाव परोक्ष रूप से द्विवेदीयुगीन कवियों पर भी पडा और उन्होंने अपनी कलम से इस जीवन-दर्शन को जनमानस तक पहुँचाना अपना कर्त्तव्य समझा । गांधीवादी विचारधारा से जो कवि प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थे उनमें सियारामशरण गुप्त प्रमुख है । उन्होंने गांधीजीवन दर्शन से अनुराग व्यक्त करते हुए अनेक काव्य-खंडों में उत्तम मनोभावों की अभिव्यंजना की है । "बापू" नामक काव्य संग्रह में उन्होंने गांधीजी को अपनी श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए उनके संदेश को देशवासियों तक पहुँचाने की कोशिश की है । उनके द्वारा लिखित नोआखोली तथा जयहिन्द शीर्षक कविताएँ अहिंसा और शान्ति भावना के प्रचार में विशेष सहायक हुई । बापू में गांधीजी के बारे में सियारामशरणगुप्त का कहना है कि -

"किसके उदात्त उच्च स्वर से,
निर्भय, अकुण्ठित, सदा स्वतन्त्र
गूँजा कहाँ मोहन-मधुर-मन्त्र ?
ऊर्जस्विन, सत्य के अहिंसा के अमृत से,
मुक्त, छल-छद्म के अनल से,
बोला यह कोई मंत्रद्रष्टा ऋषि नूतन में
प्राण के पवित्र विनोदबोधन में[1] ।"

सोहनलाल द्विवेदी ने गांधीजी के अनेक उत्तम गुणों पर मुग्ध होकर उनको युगावतार, युगाधार, युगसंचालक, युगसंस्थापक आदि अनेक सम्बोधनों से अभिहित करते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन समर्पित किये हैं -

"हैं अस्त्र-शस्त्र कुंठित-कुंठित,
सेनाएँ करती गृह-प्रयाण ।
रण-भेरी तेरी बजती है,
उड़ता है तेरा ध्वज निशान,
हे युगद्रष्टा ! हे युग-स्रष्टा !
पढ़ते कैसा यह मोक्ष मन्त्र ?
इस राजतन्त्र के खंडहर में,
उगता अभिनव भारत स्वतन्त्र[2] ।"

---

1. बापू - सियारामशरण गुप्त, चतुर्थ सं०, पृ०10
2. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ०5

अहिंसात्मक युद्ध केलिए भी गांधीजी ने हमें अनुप्रेरित किया था । सोहनलाल द्विवेदी ने उनकी इस विचारधारा का अनुसरण करते हुए अहिंसात्मक युद्ध केलिए जनता को ललकारा था । उनके कुणाल नामक खण्ड काव्य पर गांधी के अहिंसावाद का पूरा-पूरा प्रभाव दिखाई देता है । इनके "सेगांव का सन्त" और "वासवदत्ता" शीर्षक रचनाओं में भी गांधीवादी विचारधारा की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय जी का प्रियप्रवास गांधीजी के व्यक्तित्व से सर्वथा अछूता नहीं है । हरिऔध के श्रीकृष्ण गांधीवाद की अहिंसा से प्रभावित होकर ही दुष्टों के दमन का समर्थन करते हैं । उनके वैदेही वनवास के नायक राम की नीति पर महात्मा गांधी के अहिंसावाद की छाप प्रतीत होती है ।

मैथिलीशरण गुप्तजी के अनेक प्रबन्ध काव्यों पर गांधी दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव है । पंचवटी में सीता स्वावलम्बन का गुण-गान करती है । गुप्तजी के अन्तिम महाकाव्य जयभारत में युधिष्ठिर का चरित्र अधिक खुलकर आया है और वे अपने व्यक्तित्व में गांधीजी के सत्य तथा अहिंसा की सुन्दरतम व्यंजना पाते हैं । इसी प्रकार द्विवेदीयुगीन कविगण गांधीवाद से प्रभावित होकर राष्ट्रीयता को एक नई दिशा की ओर अग्रसर करते सफल सिद्ध हुए ।

उद्‌बोधन

उद्‌बोधन के अन्तर्गत समाज को प्रेरणा देने और समाज की कुरीतियों अथवा अज्ञानता की भर्त्सना करने की प्रवृत्ति का प्राधान्य रहा है । इसके अन्तर्गत भारतीयों का आलस्य, तंद्रा, कलाहीनता, निरूपमता, अज्ञान, पराक्रमहीनता, कायरता आदि की निन्दा और आशावाद, स्वत्व, स्वाभिमान का प्रसार तथा समाज, विद्यार्थियों, नारियों, युवकों को देश-सेवा एवं राष्ट्रोन्नति केलिए प्रेरित करना आदि बातें आ जाती है । प्रेरणा और भर्त्सना प्रवृत्ति के प्रचार के मूल स्रोत आध्यात्मिक क्षेत्र में विवेकानन्द सामाजिक क्षेत्र में राजाराममोहन राय, दयानन्द स्वामी एवं बुद्धिवादी आगरकर, राजनीति में लोकमान्य तिलक और महात्मागांधी थे । द्विवेदी युगीन कवि उद्‌बोधन के गीत गाकर समाज जागरण का यत्न किया । हिन्दी में द्विवेदी युग को उद्‌बोधन युग ही कहा जाता है । मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, प्रेमघन, सनेही, त्रिशूल आदि द्विवेदीयुग के वियों ने उद्‌बोधन गीतों के द्वारा समाज में जागरण, स्फूर्ति तथा आशा का संचार करने का सफल प्रयास किया ।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पुनरुत्थान के कवि मैथिलीशरणगुप्त की भारत-भारती उद्‌बोधन और नवजागरण की अग्रदूत है, राष्ट्रोत्थान के युग में भारत भारती देश की गीता थी । डॉ॰ कमलाकान्त पाठक का कहना है कि "भारतभारती नई सामाजिक प्रगति राष्ट्रीय जागृति और साहित्य की ऐतिहासिक आवश्यकता का प्रतिनिधित्व करती है । आर्य समाज को देशव्यापी सुधार कार्य और हिन्दुत्व का नवजागरण उसमें

प्रतिच्छायित है[1]। भारत भारती में ऐतिहासिक तथ्यों पर भारतीय जनता को नवजागरण का संदेश दिया है। उसका मूल स्वर जागरण की प्रेरणा है, शेष स्वर संवादी है। जागरण का संदेश भारत भारती में अनेक स्थानों पर है। कवि लिखता है, "श्रम के बिना संसार में जीना कठिन है। पशु-पक्षी भी अपना हिताहित समझते हैं। बद्धपरिकर होकर देशोत्थान में सहारा दो[2]।" कवि ने ब्राह्मणों का पूर्वजों के तुल्य ज्ञानी, क्षत्रियों को कुयश की कालिमा मिटाने वैश्यों को कल-कारखाने खोलने तथा शूद्रों को अपना काम ऊँचा बनाने का संदेश दिया है। साधुसन्त, शिक्षित नेता, कवि, नवयुवक, धनी सबको राष्ट्र कवि ने राष्ट्रोन्नति केलिए उपदेश दिया है। यदि हम आधुनिक युग के साथ कदम उठाकर न चलेंगे तो विनाश अटल है, ऐसी चेतावनी कवि देता है[3]। कवि ने कर्म करने का, शत्रु का नाश करने का, देश गौरव केलिए बलि जाने का तथा संगठन का संदेश अनेक कविताओं में दिया है।

रामचरित उपाध्याय को बुरे दिनों के बाद अच्छे दिन आने का विश्वास है। निम्नलिखित पंक्तियों में कवि की आशा उमड पड़ती है -

---

1. डॉ. कमलाकान्त पाठक - मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति एवं काव्य, पृ.182
2. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.168
3. वही, पृ.160

"ज्योंही हुई पतझड त्योंही पत्तियाँ उगने लगीं ।
जग में जहाँ आई शारद सब मेघ-मालाएँ भगीं ।
जो गिर गया है वह उठेगा शीघ्र ही या देर में ।
तू कर्म का है माननेवाला पडा किस फेर में ।
हो जायगा फिर भी समुन्नत सोच कुछ करना नहीं ।
वर वीर भारत स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं ।"[1]

प्रेमघन, त्रिशूल, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने भारतीयों को नींद से जगाकर वैर, फूट, दीनता, अन्याय, दुख को हटाकर सुमति, कला, विद्या, बल, स्वप्न, उद्यमशीलता, देशभक्ति का अंगीकार करके आगे बढ़ने का सदुपदेश दिया है । उद्बोधन में कवियों ने फूट का निषेध और एकता का समर्थन किया है ।

निष्कर्ष

भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय पुनर्जागरण को द्विवेदीयुग में एक विशाल रूप मिला । द्विवेदीयुग की राष्ट्रीयता तीव्रतर बन गई । इसका प्रमुख कारण पराधीन जातियों का वर्तमान के प्रति असन्तोष की भावना थी । द्विवेदीयुग की इसी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति अपने अतीत की स्मृति में जाग उठती है । भारतवर्ष के वीर पूर्वजों के आत्मसमर्पण के फलस्वरूप जनता में अपनी

---

1. आश्वासन, सरस्वती खंड 17, संख्या 5, सन् 1916

जन्मभूमि के प्रति एक अटूट आस्था प्रबल होने लगी और गांधी दर्शन से प्रभावित होकर एक अहिंसात्मक राष्ट्रीयता की स्थापना होने लगी । अतः देश प्रेम, जातीय एकता, वर्तमान के प्रति विक्षोभ एवं अतीत के प्रति श्रद्धा के भाव कविताओं द्वारा जनता में जागृत हो रहे थे । स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की भावना देशवासियों में बढने लगी । वे अपने देश को स्वतन्त्र कराने केलिए बडी से बडी कठिनाइयों का सामना करने केलिए तैयार थे । वे उसकेलिए अपना प्राण निछावर करने केलिए भी तैयार थे । राष्ट्रीयता के अनेक तत्वों की ओर संकेत इस युग की कृतियों में मिलता है । द्विवेदीयुग के कवि निश्चय ही राष्ट्रीयता के कवि थे, भारत मां के सच्चे पुजारी तथा अनन्य भक्त थे और मातृभूमि की पूजा और वन्दना ही उनका राष्ट्रीय धर्म था । राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर ही उन्होंने नवयुग का निर्माण किया और देश तथा जाति को राष्ट्रीय जीवन का संदेश देकर फिर से जीवित तथा स्वतन्त्र रहने के योग्य बना दिया ।

चतुर्थ अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप

द्विवेदीयुग में राजनीतिक पराधीनता देश का सबसे बडा दुर्भाग्य था । शौर्य, स्वाभिमान, सद्गुण, तेजस्विता आदि का लोक होने के कारण देश परतन्त्र बना । देश को स्वतन्त्र करने केलिए अनेक प्रयास किए गए । प्रचण्ड आन्दोलन बलिदान, सशस्त्र संग्राम तथा क्रान्तिकारियों के हत्याकाण्ड से देश में एक अपूर्व जागृति हुई थी । इस समय राजनीतिक हलचलों की प्रतिक्रिया की व्यंजना करनेवाली कविताओं को ही राष्ट्रीय-चेतना की पूर्ण एवं शुद्ध अभिव्यक्ति प्राप्त हो सकी है ।

जागृत देश शासकों की क्रूर क्रियाओं का प्रतिरोध करता है । वह शासन की राष्ट्रीयता विरोधी क्रियाओं का विरोध करता है और अपने भीतर बल एवं उत्साह संजोकर

परतन्त्र के जुए को फेंक देना चाहता है । स्वतन्त्रता की कामना वेगमय हो उठती है । इस प्रकार उसमें राष्ट्रीय जीवन की गतिविधि का सही चित्रण प्रस्तुत किया जाता है । राष्ट्रीय जीवन के प्राणों का स्पन्दन इसमें व्यक्त हो उठता है ।

भारतेन्दुयुग में राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि तैयार हुई, उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति तो द्विवेदीयुग में हुई । भारतेन्दु युग में देश-प्रेम अथवा राष्ट्रीयता का जो स्वर उठा था, वह क्षीण था, जन-जीवन के आकुल कंठ की पुकार वह नहीं था, किन्तु द्विवेदी-युग में अभिव्यक्त राष्ट्रीय-काव्य जन-मानस की आकांक्षा है । वह अकेले कंठ की पुकार नहीं है, बल्कि अनेक कंठों का समवेत गान है । राष्ट्रीय जीवन में हुए अभियानों का अङ्कन द्विवेदीयुग में ही मिलता है । इस काल की कविता में स्वतन्त्रता की हुंकार है, विद्रोह एवं विध्वंस की वाणी है, स्वतन्त्रता केलिए बलिदान होने के आकांक्षी प्राणों का उत्साह एवं उल्लास है ।

विभिन्न राजनैतिक आन्दोलन

भारतीय राजनैतिक आन्दोलन की प्रमुख घटनाओं से द्विवेदीयुगीन कविता अत्यन्त प्रभावित है । कांग्रेस की स्थापना गरम-नरम दल की राजनीति तिलक का उग्र और आक्रमणकारी राष्ट्रवाद, बंग-भंग आतंकवादी हिंसात्मक क्रान्ति, रौलेट बिल, जालियांवाला बाग, असहयोग अन्दोलन सविनय अवज्ञा आन्दोलन

आदि ने हिन्दी कविता को समान रूप से प्रभावित किया है । कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् कवियों ने अनेक राष्ट्रीय समस्याओं पर तथा आन्दोलनों पर लेखनी चलाई है । राष्ट्रीय-आन्दोलन जो प्रमुखतया दासता से मुक्ति केलिए प्रारंभ हुए थे, अनेक आर्थिक और सामाजिक पहलुओं को जैसे स्वदेशी, स्वभाषा, स्वतन्त्रता को लेकर भारतवासियों को आकर्षित करते रहे । राष्ट्रीय-आन्दोलन, ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र, क्रांति आदि से कवियों को अछूता रहना असम्भव था । द्विवेदीयुगीन कवियों ने विराट राष्ट्रीय आन्दोलन का वर्णन करके देशवासियों को दासता से मुक्ति पाने केलिए प्रेरणा प्रदान की और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में योग दिया ।

बंग-भंग आन्दोलन

बंग भंग आन्दोलन एक प्रमुख राजनीतिक घटना है जिसका देश पर व्यापक प्रभाव पड़ा । सन् 1905 ई॰ में लार्ड कर्जन ने साम्प्रदायिक आधार पर बंगाल का विभाजन किया । पहले बंगाल और बाद में सारा देश इससे क्षुब्ध और आन्दोलित हो उठा । बंग-भंग के साम्प्रदायिक आन्दोलन ने मुसलमानों को सचेत कर दिया और सन् 1906 ई॰ में उन लोगों ने मुस्लिम लीग की स्थापना की । उन्होंने सरकार के समक्ष मुसलमानों से पृथक् निर्वाचन की मांग भी प्रस्तुत की । राष्ट्रीय चेतना के कवियों ने देखा कि भारत का अहित इस द्वैत भाव से होगा, क्योंकि मुसलमानों की फूट के कारण साम्राज्यवादी शक्ति स्वतन्त्रता आन्दोलन के बावजूद मिट नहीं पायेगी और

इस तरह देश परतन्त्र ही रह जायगा । इसकेलिए अपेक्षा इस बात की थी कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भाव जगाया जाय और देश की राष्ट्रीय चेतना को शक्तिशाली बनाया जाय ।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने राष्ट्रीयता एवं प्रान्तीयता की जड़ का मूलोच्छेद करने का नारा लगाया । भेद डालकर राज्य करने की नीति का पर्दाफाश करते हुए राय देवीप्रसाद पूर्ण लिखते हैं - "मुसलमान हिन्दुओं ! वही है कौमी दुश्मन, जुदा जुदा जो करे फाड़कर चोली दामन ।"[1]

चोली-दामन जैसे रहनेवाले हिन्दू-मुसलमानों को दूर-दूर बनानेवाले कौमी दुश्मन की पहचान कवि ने यहाँ कराई है ।

बिहार में साम्प्रदायिकता की जो ज्वाला भड़की थी उसका प्रभाव बहुतों पर पड़ा था । तमाम निरपराध बच्चे-बूढ़े-नौजवान तथा स्त्रियाँ मौत के घाट उतार दी गई थीं । सियारामशरणगुप्तजी ने इस पीड़ा से व्याकुल होकर लिखा था -

"बंग भूमि में दूर उधर वह उठा स्वबंधु विरोध,
इधर बिहार भूमि में भी कुछ भभक उठा प्रतिशोध ।
बोधि तीर्थ तू द्रोहानल में यह ईंधन मत डाल,
बुरा असल ही हो तो अच्छा होगा क्या नक्काल ।"[2]

---

1. पूर्ण - संग्रह - महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ.212
2. नोआखाली में - सियारामशरण गुप्त, पृ.27

लोकमान्य तिलक और स्वराज्य की घोषणा

तिलक देशानुराग के अनुपम स्तम्भ थे । उन्होंने देश की जड़ता में चेतना की क्रान्ति स्थापित करने केलिए सन् 1914 ई॰ में स्वराज्य की घोषणा की । इससे देश में नई चेतना उमड़ी जिसकी अभिव्यक्ति द्विवेदी युगीन कवियों ने पूरी निष्ठा एवं तन्मयता से की । तिलक ने भारतीय जनता को अधिकार और अभिमान का मन्त्र दिया । अधिकार की भावना से प्रेरित होकर निर्भयता के साथ स्वतन्त्रता की माँग होने लगी । जयद्रथ-वध में मैथिलीशरण गुप्त ने इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति इस प्रकार से की -

> "अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है,
> न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है[1] ।"

तिलक के स्वराज्य का सर्वाधिक प्रभाव मैथिलीशरण गुप्त पर पड़ा । उन्होंने अपने पद्यों में कहीं स्वराज्य की परिभाषा ही दी है[2] । जहाँ मनुष्यों को मनुष्य का अधिकार प्राप्त नहीं है जन जन के बीच सज्जनोचित व्यवहार नहीं है वह देश मनुष्यों का नहीं प्रेतों का वासस्थान है[3] । माधव शुक्ल ने तिलक द्वारा की गई स्वराज्य की घोषणा के अनुकरण कर जनता में उद्बोधन लाते हुए इस प्रकार कहा -

---

1. जयद्रथ-वध - मैथिलीशरण गुप्त, पृ॰5
2. साप्ताहिक प्रताप, 18 दिसम्बर 1916
   हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा, पृ॰333 - लक्ष्मीनारायण दुबे
3. श्रीधर पाठक - कुहेश, छन्द-2, ज्येष्ठ सं॰1972
   हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा, पृ॰169

"जातिभेद और धर्म भेद का बन्धन काट कुठार
माधव तैंतिस कोटि एक हो करें स्वराज्य पुकार ।
जगा दे भारत को करतार ।।"[1]

भारत संतान को उद्बोधित करते हुए त्रिशूल जी ने स्वतन्त्रता को जन्मसिद्ध अधिकार बताया और इस अधिकार का छीन जाना अत्याचार मानकर मनमारे बैठे हुए लोगों को जगाने का प्रयत्न किया[2]। स्वराज्य की कल्पना एवं स्वतन्त्रता की लहर फैलानेवाले तिलक के प्रति द्विवेदीयुगीन कवियों की विशेष श्रद्धा रही है । भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के जनक, लोकमान्य तिलक की विदाई ने द्विवेदीयुगीन कवियों को अत्यधिक शोकाभिभूत किया । तिलकावतार में मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि इस प्रकार अर्पित की है ।

"भारत ऋषि के भव्यभाल पर तिलक रूप प्रकटे तुम बाल,
बालचन्द्र से सजता हो ज्यों, गंगाधर का भाल विशाल ।"[3]

---

1. साप्ताहिक प्रताप, 5 नवम्बर, 1917, पृ.6
2. हमारे जन्मसिद्ध अधिकार । अगर छीनेगा कोई यार ।
   रहेंगे कब तक मन को मार । सहेंगे कब तक अत्याचार ।
   कभी तो आवेगा यह ध्यान । सकल मनुजों के स्वत्व समान ।
   (त्रिशूल तरंग - त्रिशूल, पृ.20 तृतीय संस्करण 1921
3. प्रभा, अगस्त 1921, पृ.76 हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा - लक्ष्मीनारायण दुबे

तिलक के निधन ने इन कवियों को झकझोर दिया । सियारामशरण गुप्त ने भय की भ्रान्ति भगानेवाले वीर केसरी तिलक का वियोग दुःखपूर्वक सहते हुए उनकी महत्ता का चित्रण तिलक वियोग नामक कविता में किया है[1] ।

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही केलिए यह एक वज्रपात ही था । उनके मत में तिलक निधन के साथ साथ भारत का परमप्रशस्त कीर्तियुग ध्वस्त हो गया[2] ।

भारतीय जनता तिलक द्वारा उत्प्रेरित होकर निर्भीक रूप से स्वतन्त्रता की माँग करने लगी । प्रथम विश्वयुद्ध का आरंभ इन्हीं दिनों हुआ । अपनी स्वतन्त्रता केलिए लडनेवाले देशों ने भारत को भी अपनी स्वतन्त्रता केलिये तलवार उठाने की प्रेरणा दी । इसका प्रभाव भारत पर भी पडा । उस समय देश में आतंकवादी कार्यवाहियाँ भी ज़ोर पर थी । इसलिए भारतीय जनता के जीवन में युद्ध एवं क्रान्ति की भावना जाग उठी थी । इस भावना को तिलक के कर्मयोग के उपदेश ने और भी बल दिया । हलचल और उथल-पुथल से भारतीय जनता आक्रान्त थी और भारतीय जन जीवन में क्रान्ति तथा युद्ध-भावना ज़ोरों से स्थान ले रही थी । गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ने इस भाव से प्रेरित होकर कर्म की तलवार उठाई और उस पर ज्ञान की चढकर वे स्वाभिमान के साथ सागर में कूदने केलिए जनता को उद्बोधित करने लगे[3] ।

---

1. सियारामशरण गुप्त - तिलक वियोग प्रभा छन्द 6, पृ.172-3 सितम्बर 1920
2. सनेही - वज्रपात, तिलक निधन पर, 1920
3. लेकर कर्म कृपाण ज्ञान की शान चढाओ ।
   बल-विद्या-विज्ञान झिलम उर पर झलकाओ ।
   स्वाभिमान के साथ समर में सम्मुख आओ ।
   चलो बला की चाल कला कौशल दिखलाओ ।

स्वदेशी आन्दोलन

द्विवेदीयुग के आन्दोलनों में सर्वप्रमुख स्वदेशी आन्दोलन था। यह राष्ट्र की नवजाग्रत चेतना का प्रतीक और संदेश वाहक बना।

नाथूरामशर्मा शंकर अविद्यानन्द का व्याख्यान शंकर क्रन्दन, पंचपुकार भारत माता का निरीक्षण आदि कविताओं में भारतीयों की मूर्खता पर पश्चात्ताप करते हैं कि उन्होंने अपने देश के आर्थिक स्वार्थों को भूलकर विदेशी वस्तुओं के उपयोग में ही शेखी समझ रक्खी है। शंकर जी के व्यंग्य तीखे और चुभते हुए है और उनमें कवि का क्षोभ और इस प्रकार के कुकृत्यों पर ग्लानि मार्मिकता से व्यंजित है। कवि उन व्यापारियों की आलोचना करता है जो विदेशी माल का क्रय-विक्रय करते हैं[1] -

स्वयं आचार्य द्विवेदी सरस्वती में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी-प्रयोग का आह्वान किया करते थे -

"स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजे। विनय इतना हमारा
मान लीजे।
सपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो। न जाओ पास
उससे दूर भागो[2]।"

---

1. भारत माता का निरीक्षण शंकर सर्वस्व, पृ. 235
2. सरस्वती - संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, जुलाई 1903

इस रचना का महत्व करती है कि इस प्रकार की रचनाओं द्वारा हिन्दी के साहित्यकार इस आन्दोलन के दिशा-निर्देशक और अगुआ रहे हैं, अनुसरणकर्ता मात्र नहीं ।

सन् 1910 में प्रकाशित राय देवीप्रसादपूर्ण का कुंडलियों का काव्य स्वदेशी-कुण्डल भी स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन करता है । विदेश से आनेवाली चीनी के स्थान पर गुड या देशी खंडारी के व्यवहार का कवि ने समर्थन किया है । निम्न कुंडलियों में वह विदेशी चीनी के प्रतिकृपा उत्पन्न कराने की चेष्टा करता है[1] ।

अमीर अली मीर भी देशी कला वृद्धि केलिए विदेशी वस्तुओं पर धन स्वाहा करना अनुचित समझते हैं[2] ।

भारत-भारती में मैथिलीशरण गुप्त ने भी स्वदेशी वस्तुओं की उपेक्षा से होने वाली आर्थिक हानि को कवित्वपूर्ण ढंग से स्पष्ट करने की चेष्टा की है । उन्होंने प्राचीन भारतीय कारीगरी के समक्ष आधुनिक विदेशी कारीगरी को तुच्छ बताया है[3] । विदेशियों ने आकर भारत की सम्पन्नता को नष्ट कर दिया था । इस सम्पन्नता को पुन: कायम करने केलिए भारत-भारती में गुप्तजी यही आह्वान करते हैं -

---

1. स्वदेशी - कुण्डल - राय देवीप्रसाद पूर्ण - पूर्ण संग्रह संकलनकर्ता - लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, सं. 1982
2. कविताकौमुदी - द्वितीय भाग, पृ. 329 सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी
3. भरत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पद 103, पृ. 101

"यदि हम विदेशी माल से मुँह मोड सकते हैं नहीं
तो हाय ! उसका मोह भी क्या छोड सकते हैं नहीं ?
क्या बन्धुओं के हित तनिक भी त्याग कर सकते नहीं ?[1]

पक्ष सोहनलाल द्विवेदी जी के खादी गीत में और भी स्पष्ट हुआ है । जहाँ द्विवेदी जी का कहना है कि अपने देश की खादी के धागे धागे में अपनापन का अभिमान भरा हुआ है और अन्यायी केलिए अपमान भरा हुआ है । उनके अनुसार खादी में अनेक दलित हृदयों की आह छिपी हुई है । कितने ही लोगों की आह छिपी हुई है । उसमें नंगी भिखमंगों की आस छिपी हुई है और बहुत से लोगों की भूख भी छिपी हुई है । उनके अनुसार खादी का झंडा सत्यता और शुभ्रता से युक्त है और जो अत्याचारग्रस्त दीनों का त्रास मिटाता है । इसमें स्वदेशी माल की महत्ता अभिव्यक्त हुई है[2] ।

होमरूल आन्दोलन

स्वदेशी आन्दोलन का अगला और जर्बदस्त कदम है होमरूल आन्दोलन । इसका नेतृत्व श्रीमती एनीबसेन्ट ने किया । सन् 1916 ई॰ में होमरूल आन्दोलन का सूत्रपात होते ही सम्पूर्ण देश जाग उठा और स्वराज्य प्राप्त करने की आकांक्षा तथा साम्राज्यवाद को मिटा देने की भावना फूट पडी ।

1· भारत - भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पद 103,पृ·102
2· जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ·6

"लेंगे होमरूल अपना" शीर्षक गज़ल में श्री॰ माधव शुक्ल ने सर्वस्व न्योछावर करके भी होमरूल लेने की आकांक्षा व्यक्त की है -

"खुशी से छीन लो घर बार जीवन प्रान धन मेरा ।
ये आँखें फोड कर सारा जला दो तब वतन मेरा ।।
xx xx xx
छोड़ेंगे न छोड़ेंगे कभी यह टेक हम अपना ।
निकलती साँस तक बोलेंगे लेंगे होमरूल अपना ।"[1]

कवि ने इसमें केवल अपनी स्वराज्याकांक्षा ही नहीं व्यक्त की है बल्कि शासन के दमन एवं अत्याचार का भी उल्लेख कर दिया है । होमरूल केलिए वे सब कुछ त्याग कर सकते हैं । स्वराज्य की आकांक्षा होमरूल से भी अधिक बलवती होकर कोटि कोटि कंठों से फूट पडी थी ।

द्विवेदीयुग के दूसरे कवियों ने भी होमरूल की महत्ता का चित्रण अपनी कविता में किया है । मैथिलीशरण गुप्त ने स्वराज्य की योग्यता[2] नामक कविता में ब्रिटिश अधिकारियों की दमन नीति के विरोध में स्वर उठाते हुए होमरूल की महत्ता का चित्रण किया है । उनके मत में इस संसार में हर किसी जीव का अपना स्वातन्त्र्य रहता है । चींटियाँ तक अपना शासन स्वयं कर पाती हैं । फिर मानव का क्या कहना -

---

1. जागृत भारत - माधव शुक्ल, प्रथम संस्करण सन् 1922, पृ.35
2. साप्ताहिक प्रताप - स्वराज्य की योग्यता, 5 नवंबर, 1917 पृ.6
हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा - डॉ.लक्ष्मीनारायण दुबे, पृ.344

"और नहीं तो भवसागर भी हमें तैरना आता है,
"होमरूल" तो तुच्छ चींटियों तक में पाया जाता है।"[1]

स्वराज्यवीणा के अन्तर्गत श्री• रामनरेश त्रिपाठी ने भी होमरूल की महत्ता पर बल दिया है। उन्होंने होमरूल को प्रकृत पुरुषों का जीवनमूल्य कहा है और प्राचीन संपन्न भारत के स्वत्वों की रक्षा केलिए होमरूल को अत्यधिक आवश्यक माना है[2]।

स्वदेशी आन्दोलन के साथ साथ भारत की राजनीति में गांधीजी का आगमन भी हुआ। उनके भारतीय राजनैतिक रंगमंच पर प्रवेश करते ही कांग्रेस में संपूर्ण परिवर्तन लाकर जनता का संगठन बनाया। सन् 1920 के बाद से स्वतन्त्रता आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में परिचालित हुआ। गांधीजी मानव के चारित्रिक बल को विकसित करने पर बल देते थे। सत्य, अहिंसा तथा बंधुता के बल बूते पर विदेशी शक्ति को गांधीजी ने चुनौती दी और विश्वभर के राष्ट्रों के सम्मुख यह आदर्श प्रस्तुत किया कि घृणा को प्रेम से हिंसा को अहिंसा से, बर्बरता को सत्य से जीता जा सकता है। उनकी राजनैतिक प्रक्रिया सांस्कृतिक चेतना का अविच्छिन्न अंग थी। इसी भूमिका पर उनके आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम भी नियोजित थे।

1• साप्ताहिक प्रताप - स्वराज्य की योग्यता, 5 नवम्बर, 1917, पृ•6
हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा - डॉ•लक्ष्मीनारायण दूबे, पृ•344

2• स्वराज्य वीणा - प्रतिज्ञा, पृ•15

इसी कारण भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में उन्होंने व्यापक राष्ट्रीय चेतना को जागृत करते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिरोध में डटे रहने का पाठ पढ़ाया ।

सन् 1920 से सन् 1947 तक गांधीजी द्वारा तीन महत्वपूर्ण देश व्यापी आंदोलनों का संचालन किया गया । प्रथम सन् 1920-21 का असहयोग आन्दोलन, द्वितीय सन् 1930 का सविनय आन्दोलन, तृतीय सन् 1942 का भारत छोडो आंदोलन । इन सत्याग्रह आन्दोलनों में सत्य एवं अहिंसा उनके साधन थे । शीघ्र स्वराज्य प्राप्ति की आशा से उन्होंने देश के जीवन में नवीन चेतना का रस घोल दिया था । असहयोग आन्दोलन का मूल मन्त्र था राष्ट्र हित विरोधी शक्तियों के प्रति पूर्ण असहयोग द्वारा राष्ट्र जीवन को उन्नत पुष्ट तथा स्वतन्त्र करना ।

द्विवेदीयुगीन काव्य में गांधीवादी लहर

गांधीजी एवं उनके देशव्यापी आन्दोलनों का प्रभाव द्विवेदीयुगीन कवियों पर बहुत बडी मात्रा में देखा जा सकता है । द्विवेदीयुग की राष्ट्रीय भावना गांधीजी के व्यक्तित्व तथा सिद्धांतों से अत्यन्त प्रभावित है । गांधीवाद का प्रभाव इस युग में सर्वव्यापी रहा है । इस युग का कोई कवि इससे अछूता न रहा है । वस्तुत: प्रथम असहयोग आन्दोलन के पश्चात् हिन्दी साहित्य पर राजनीति का अत्यधिक महत्व दृष्टिगोचर होता है ।

गांधी दर्शन के सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि का द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा प्रचार किया है जिसकी विशद व्याख्या हम अगले अध्याय में करेंगे ।

सोहनलाल द्विवेदी ने राष्ट्रदेवता में गांधीजी के प्रति अपना समुचित सम्मान प्रकट किया है । गांधीजी का गुणगान गाते हुए उन्होंने बापू को भारत जैसे रौरवनर को भी स्वर्ग का नन्दनवन बनाने का उत्तरदायी चित्रित किया है । सत्य, अहिंसा के चक्रों से सुसज्जित सुंदर रथ में चलनेवाले गांधीजी उनके मत में आत्मा की उज्ज्वल धारा बहानेवाले थे जो समस्त जग को हराते हुए सारे संसार पर विजय प्राप्त कर गये थे । उनके ज़रिये खारे भी सुखद मलय गिरि चंदन बन गये । उन्होंने स्वयं अपना बलिदान देते हुए विश्व के प्राणों में अमृत ढाला जिस प्राण समर्पण को देखकर संसार चकित हो गया ।[1] हिंसा के अकांड तांडव पर गांधीजी के आगमन से उल्कापात हुआ । आत्माहुति का अभ्यास करने और करानेवाले, जगति का संकट एवं ह्रास हरानेवाले, आत्मप्रज्ञ गांधीजी के प्रति वह अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं । उनके अनुसार गांधी युग परिवर्तक, युग संस्थापक, युग संचालक, युगाधार, युग निर्माता, युगमूर्ति है ।[2] उन्होंने अपने युग को ही नहीं परवर्ती युग को भी खूब प्रभावित किया है ।

---

1. जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 130, 131
2. वही, पृ. 3

मैथिलीशरण गुप्त एवं सियाराम शरणगुप्त ने भी गांधीजी पर कविताएँ लिखी हैं।[1] गुप्तजी के सूत्रधार ही गांधी रहे हैं। भारतीय राजनीति के रंगमंच पर उनके आगमन से हम भारतीयों का उद्धार हुआ। गांधीजी के स्नेहमन्त्र ने भयग्रस्त जनता में नया मन्त्र फूंक दिया।[2] गांधीजी ने स्वराज्य दिया और उसे भोगने की विधि भी बता दी।[3] उनके नेतृत्व में नवयुवक इस प्रकार आगे बढे कि देश के विक्रेता भी देश के हित में काम करने लगे।[4] गांधीजी की जनसेवा का मायामन्त्र सुप्त जनता पर संजीवनी का काम कर गया।

सियारामशरण गुप्त जी के अनाथ, आत्मोत्सर्ग, दैनिकी, बापू, जयहिन्द आदि कृतियाँ मानवाद से प्रेरित गांधीवादी विचारों से भरपूर हैं। कुछ फुटकर रचनाएँ भी इसी श्रेणी में आती है जो आर्द्रा और मृण्मयी आदि कृतियों में संगृहीत हैं। सत्य, अहिंसा आदि तत्व उनके काव्य में मिलती है। समाज की वे रूढियाँ जो प्रगतिशील चरणों के मार्ग में गतिरोध उत्पन्न करती है, उनको नहीं भाती। जिसके कुल और गोत्र का पता नहीं है ऐसे "नकुल" को प्राथमिकता देना गान्धीवादी अभिव्यक्ति है। सियारामशरण जी गांधीजी के व्यक्तित्व से कितने प्रभावित है इस बात का स्पष्ट प्रमाण है बापू की कविताएं।[5] उनकी आर्द्रा रचना की एक फूल की चाह, वक्ता तथा खादी की चादर आदि कविताओं पर गान्धीवादी विचारों की छाप है।

---

1. अंजलि और अर्घ्य - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.34
2. वही, पृ.35
3. वही, पृ.16
4. वही, पृ.15
5. बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ.26-27

अमृत पुत्र की रचना का उद्देश्य बहुत कुछ गान्धीवादी विचारधारा का विवेचन रहा है । यीशु द्वारा मामरी जैसी नीच और अधम के हाथ का पानी पीना हमें भारतवर्ष की उन भंगी बस्तियों की याद दिला देता है जहाँ गान्धीजी प्राय: टिकते थे । सियारामशरण गुप्तजी के अनुसार गाँधीजी जहाँ गये वहाँ नये मार्ग निकल पडे ।[1] गाँधीजी उनके अनुसार दुर्गम दुरूह में खडे हुए शंका-समाधान के समान है ।[2] गाँधीजी को देखकर सभी लोग क्लेश को भूलकर, सिर से अपना पद मान भार उतारकर गाँधीजी के तीर्थ देश भारत से प्रभावित हो उठते हैं ।[3]

रामनरेश त्रिपाठी ही पर गाँधीजी का सीधा प्रभाव पडा था । वे गाँधीजी के आश्रम में जाया करते थे और उनसे प्रभावित होकर राष्ट्र सेवा में कार्यरत भी होने लगे थे । उन पर गाँधीजी का प्रभाव कितना पडा है उसपर वे स्वयं कहते हैं - "मेरी जीवन गाँधीजी के जीवन की सुगन्ध से उसी तरह सुवासित होता रहा जिस तरह चन्दन के संसर्ग से नीम का वृक्ष भी सुगन्धित हो जाता है ।[4] उनका पथिक काव्य वस्तुत: गाँधीजी को ही लक्ष्य करके लिखा गया है । पथिक में कवि देश की तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं का समाधान गाँधीवादी दृष्टि से पाने का प्रयास किया है । इसमें गाँधीजी का सा सादगी-जीवन, जीवन क्षमता, चरित्रिक गुण, देश-प्रेम, त्याग मनोवृत्ति, अहिंसा करुणा आदि विद्यमान है । मिलन में काव्यनायक आनन्द तथा उनकी प्रिया विजया का देशभर में भ्रमण कर देशवासियों में

---

1. बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ.26
2. वही
3. वही, पृ.27
4. रामनरेश त्रिपाठी - एक युग : एक व्यक्ति - जगदीशप्रसाद पाण्डेय "पीयूष"

जागृति उत्पन्न करने का चित्रण है । यह हमें भारत की आज़ादी केलिए प्रयत्नशील महात्मागान्धी की ही याद दिलाती है ।

दण्डी यात्रा

सन् 1930 में नमक कानून तोडने केलिए गांधीजी ने इतिहास प्रसिद्ध दण्डी यात्रा की । दण्डी यात्रा से समस्त देशवासी प्रभावित हुए जिसका प्रभाव कवियों पर भी पडा । द्विवेदीयुगीन कवियों में सोहनलाल द्विवेदीजी ने "दाण्डी यात्रा" कविता में गांधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय दण्डी जाकर नमक कानून भंग करने का उल्लेख किया है । बच्चों, बूढों, मां, बेटों की टोली दण्डीयात्रा में बापू के साथ थी । कवि के मत में लोगों में नई उमंग की साज थी ।

"नवयुग का नव आरंभ हुआ
कुछ नये निमक के टुकडों पर
आज़ादी का इतिहास लिखा
दाण्डी के कंकड पत्थरों पर ।"[1]

कारागृहवास

द्विवेदीयुग के काव्य में राष्ट्रीय कांग्रेस का स्वर था ।

---

1. जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.72

वैदेहीवनवास का वनगमन आनन्द, उत्साह, गौरव, लोकाराधन केलिए चित्रित किया गया । कांग्रेसी नेताओं केलिए जेलयात्रा तीर्थयात्रा के समान थी । क्योंकि कारागार श्रीकृष्ण का जन्मस्थान था । द्विवेदीयुगीन कवियों ने कारावास पर अपनी लेखनी चलाई है । राष्ट्रीय आन्दोलनों में कारावास का महत्वपूर्ण स्थान था । कारावास में दिये गये कष्टों का वर्णन द्विवेदी युगीन कविता में स्थान स्थान पर मिलता है । कवियों ने मौन रूप से जेलखानों की मार सहकर अनीति, अन्याय और अधर्म से संघर्ष करने की प्रेरणा दी।[1] सोहनलाल द्विवेदी केलिए हथकडियाँ मातृभूमि की सेवा में मिलनेवाली जयमाला थी[2]। गांधीजी जितने कारागृहों में बन्दी रहे थे उनको पावन एवं निर्मल माना जाता था । उनके नवयुग के नवीन संदेश पर बंदीगृह वैकुंठ बन गया था[3]। गोपालशरणसिंह ने इसी वैकुण्ठ की पावनता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

"तीर्थस्थल की पावनता से
कारागार हुए मंडित,
हुए मनोज देशरत्नों की
विमल प्रभा से आलोकित[4] ।"

रूपनारायण पाण्डेय ने "कारागार" कविता में कारागार की यन्त्रणाओं और ब्रिटिशशासकों के अत्याचारों का उल्लेख

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता का विकास - - डॉ॰सुधाशंकर कलवडे, पृ॰208
2. जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ॰77
3. सेगांव का सन्त - जयगांधी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ॰45
4. जगदालोक - गोपालशरणसिंह, नवम सर्ग, पृ॰161

किया है[1]। मैथिलीशरणगुप्त ने जेल के नरक समान जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है[2]। लेकिन उनका यही विश्वास है कि कारागृह में जितना भी सताया जाय वह केवल शरीर तक ही सीमित रहेगा, स्वतन्त्रता सेनानी के उन्मुख विचारों को जेल की दीवारें या जंजीरें बन्द नहीं कर सकते[3]।

द्विवेदीयुगीन कवियों के राष्ट्र सम्बन्धी विचार

किसी निश्चित भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ जन समुदाय जिसकी अपनी ही सभ्यता तथा संस्कृति हो, अपनी की भाषा तथा धर्म हो एवं अपनी ही विधिनिषेध की परम्परा हो, राष्ट्र है। इसके विपरीत जिन लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान तथा अन्य जीवन मरण के बन्धन समान न हो, राष्ट्र नहीं कहलाता। एकरूपता की भावना से युक्त राष्ट्र ही सच्चे अर्थों में राष्ट्र हो सकता है। इसी राष्ट्र के प्रति द्विवेदीयुगीन कवियों ने अगाध प्रेम दिखाया है। उनके लिए अपना राष्ट्र सबकुछ हैं। इन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से भारतवर्ष का गौरव गान किया है और राष्ट्र प्रेम के उद्गारों को व्यक्त किया है।

---

1. रूपनारायण पाण्डेय - पराग, पृ.49
   आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - सुधाशंकर कलवडे, पृ.209

द्विवेदी युगीन राष्ट्रीयता के अमर नायक मैथिलीशरण गुप्तजी केलिए वह सांस्कृतिक भारत भवानी का ही स्वरूप है[1]। उनके मन में अपने राष्ट्र के प्रति अनेक पुनीत कल्पनाएँ है। उनके अनुसार यह तो साक्षात् वैकुण्ठस्वरूपा है जहाँ स्वयं भगवान हरि लीला किया करते हैं। उनके ही शब्दों में -

"प्रभु ने स्वयं पुण्यभू कह कर यहाँ पूर्ण अवतार लिया
देवों ने रज सिर पर रक्खी, दैत्यों का हिल गया
हिया।
लेखा श्रेष्ठ इसे शिष्टों ने, दुष्टों ने देखा दुर्द्धर्ष,
हरि का क्रीडा क्षेत्र हमारा भूमि भाग्य सा भारतवर्ष[2]।"

श्रीधर पाठक केलिए अपना राष्ट्र दिव्य एवं भव्य है। उनके लिए वह नाना प्रकार के रूप है तथा गुणों से अलंकृत है -

"स्वर्गिक शीश फूल पृथिवी का
प्रेम मूल, प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति नटी का टीका
ज्यों निशि का राकेश
जय जय प्यारा भारत देश[3]।"

---

1. मंगल घर - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सं॰पृ॰33
2. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ॰55
3. भारत गीत - श्रीधर पाठक, पृ॰26

पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी केलिए अपना राष्ट्र तीनलोक से न्यारा एवं सर्वश्रेष्ठ जान पड़ता है[1]। श्री॰ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध केलिए अपना राष्ट्र जनता के मन के मंगलकारी है[2]। श्री॰ ठाकुरप्रसाद शर्मा राष्ट्र को अपनी जननी मानकर उनके चरणों में नत होते हैं[3]। पं॰रामनरेश त्रिपाठी अपने राष्ट्र को अनुपम एवं दिव्य मानते हैं[4]। सियारामशरण गुप्त केलिए अपना राष्ट्र दैन्य दुःख निवारिणी है[5]।

इसी प्रकार द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने राष्ट्र सम्बन्धी विचारों को अनेक प्रकार से चिंतित किया है। किन्तु इस प्रकार के सभी विभिन्न प्रकारों में परम्परागत विचार धारा और आस्तिकता का अवलम्ब ग्रहण कर देश में जागृति उत्पन्न करने की प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है। इस कोटि की भावाभिव्यक्ति से स्वदेश के प्रति हमारे प्रेम और गौरव की भावना सर्वाधिक परिमाण में स्पष्ट होती है। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ की भावधारा का समावेश विचार प्रकाशन की इसी रीति के अन्तर्गत किया जाता है। बंकिम का चिरपरिचित वन्देमातरम शीर्षक गान भी इसी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक है। इसके अन्दर कवि ने भारतवर्ष की एक अत्यन्त पुण्यमयी पवित्र और शक्ति सम्पन्न आभा की प्रतिष्ठा की है। इसी राष्ट्र प्रेम की जागृति हमें राष्ट्र के प्रति समर्पण के भाव द्वारा प्राप्त होती है।

---

1. द्विवेदी काव्य माला, पृ॰453
2. पारिजात - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ॰9
3. राष्ट्रीयवीणा, पंचम सं॰ प्रथम भाग, पृ॰26
4. जन्मभूमि भारत - आधुनिक काव्यधारा, पृ॰981 में उद्धृत।
5. भारत लक्ष्मी - सियारामशरण गुप्त, प्रथम भाग, पृ॰26

राष्ट्र के प्रति समर्पण का भाव

द्विवेदीयुग में अंग्रेज़ी शासन के विषाक्त वातावरण से बचने केलिए भारतीय जनता तड़पती रहती थी । जनता में राष्ट्र पर से दासता का जुआ उतार फेंकने की एक प्रबल उमंग जाग्रत हो चुकी थी । परन्तु देश की स्वतन्त्रता को प्राप्त करना कोई सहज कार्य नहीं था । राष्ट्र बलिदान चाहता था, अतः इस राह पर तो वही पग रख सकता था जो अपना सीस हथेली पर रखना जानता हो । भारतवर्ष को दिव्य और भव्य मानकर द्विवेदीयुग के कवियों ने मातृभूमि के प्रति ममता का भाव व्यक्त करते हुए अनेक कविताएँ लिखी है । इन कविताओं का स्वर क्रान्तिवाहक बनकर जनमानस पर छा गया है । इस युग के कवियों की राष्ट्रीय कविताओं में राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना का स्वर विशेष रूप में उद्घोषित होता है । देश भर में राजनैतिक हलचल हो रही थी । ज्यों ज्यों शासन का दण्ड कठोर होता जाता था त्यों-त्यों देशवासियों में राजनैतिक क्रान्ति की भावना तीव्रतर होती जा रही थी । गाँव-गाँव तथा नगर-नगर से आज़ादी के परवाने सिर पर कफन बाँधे झूमते-झूमते बलिपथ पर अग्रसर हो रहे थे । यही समर्पण की भावना ही इस युग की कविताओं की प्रमुख विशेषता है । द्विवेदीयुग के नाथूरामशर्मा शंकर, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि कवियों ने समर्पण के अनेक गीत गाये हैं ।

नाथूरामशर्मा शंकर "शंकर सर्वस्व" के माध्यम से देशभक्तों को देश की वेदी पर प्राणों का समर्पण करने केलिए आह्वान देते हैं। यहाँ वे उन अनेक कष्टों की ओर संकेत करते हैं जो अपने उद्देश्य की सफलता केलिए सहन करने होंगे। उनके शब्दों में ओज है तथा देश की बलिवेदी पर मर मिटने का एक अद्वितीय संदेश है -

"सिंहों सत्यामृत प्रवाह में गोल बाँध बहना
पोल खोल खोटे कुराज्य की दुश्शासन कहना होगा।
पशुबल ठेलेगा जलों में वर्षा तक रहना होगा।
मार खाय निर्दय दुष्टों की घोर कष्ट सहना होगा।
जाति जीवनाधार रक्त से कर्म कुण्ड भरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।"[1]

निजता का गौरव ही तो राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान करता है। अपने देश की ही प्रत्येक वस्तु को उत्तम जानना ही सच्चा राष्ट्रीय संदेश है। इसीलिए निजत्व का अभिमान न रखनेवाले देशवासियों की श्रीधरपाठक निन्दा करते हुए दिखाई देते हैं और इसके विपरीत परता के प्रति उपेक्षा प्रकट करनेवालों को वन्दनीय कहकर सम्मानित करते हैं। कवि के शब्दों में अपने आप को समर्पित कर अपने देश के प्रति प्रेम-भावना व्यंजित करने का अच्छा चित्रण मिलता है -

---

1. शंकर सर्वस्व - नाथूरामशंकर शर्मा - बलिदानगीत, पृ.248

"वन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों ।
बान्धवता में बँधे परस्पर, परता के अज्ञानी हों ।।
निन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अज्ञानी हों ।
सब प्रकार परतन्त्र पराई, प्रभुता के अभिमानी हों ।"[1]

पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मातृभूमि के प्रति श्रद्धा और प्रेम प्रकट करते हुए कहा है कि

"देखती वस्तु विश्व की सारी जन्मभूमि
सम एक न न्यारी ।"[2]

रामचरित उपाध्यायजी राष्ट्रभारती के माध्यम से जनता को देश की वेदी पर प्राणों का समर्पण करने केलिए आह्वान करते हैं[3]। उनकी प्राणी राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत है । जन्मभूमि के प्रति कवि के हृदय में समाया हुआ अनुराग निम्नांकित पंक्तियों में प्रवाहमान हो रहा है -

"नहीं स्वर्ग की चाह मुझे है,
नहीं नरक की भीति ।
बढ़ती रहे सदा मेरी बस
जन्मभूमि में प्रीति[4] ।"

1· भारत गीत - श्रीधर पाठक, पृ॰27।
2· द्विवेदी काव्यमाला - पं॰महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ॰365,368
3· राष्ट्रभारती - रामचरित उपाध्याय (प्र॰सं॰),पृ॰30
4· राष्ट्रभारती - रामचरित उपाध्याय (प्र॰सं॰),पृ॰ 2

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही जी सत्याग्रह नामक कवितामें सत्याग्रह का गौरवगान किया है । क्रूर शासन के कठोर हाथों जिन आपत्तियों की सम्भावना हो सकती है । उन सबकी ओर कवि का ध्यान आकृष्ट होता है और वह देश की स्वतन्त्रता केलिए मर मिटनेवाले वीर सेनानी को सन्नद्ध करता है -

"सह कर सिर पर मार मौन ही रहना होगा,
आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा ।
रंग महल सी जेल आहनी गहना होगा;
किन्तु न मुख से कभी हन्त हा ! कहना होगा ।
डरना होगा ईश से और दु:खी की हाय से
भिड़ना होगा ठोंक कर खम अनीति अन्याय से[1] ।।"

उन्हें अपने देश पर अभिमान है और जो इस निजत्व की भावना नहीं रखता उनकी ओर घृणा से ही देखता भी है -

"जिस को न निज गौरव तथा निज
देश का अभिमान है
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और
मृतक समान है[2] ।"

1· राष्ट्रीय मन्त्र - गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, प्रथम सं·1921

2· राष्ट्रीय वीणा - गया प्रसाद शुक्ल सनेही, प्रथम भाग, पृ·9

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीय संग्राम में आत्मसमर्पण करने की भावना को "साकेत" के द्वादश सर्ग में उल्लेख किया है । कवि अनघ में समाज कल्याण हेतु समर्पण केलिए प्रेरित करता है । किसान में देश त्याग नामक कविता में कवि के शब्दों में निस्वार्थ समर्पण की भावना गूंज उठती है -

"हम सदा तेरे, न चाहे तू हमारी हो कभी[1] ।"

रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार विदेशी शासन से असह्य होकर भारतवासी स्वतन्त्रता के महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देने केलिए निर्भय होकर प्रस्थान करने लगे -

"जिन की नस नस में विद्युत थी, आँखों
में था क्रोध प्रज्वलित,
छाती में उत्साह भरा था, वाणी में था
प्राण प्रवाहित ।
मातृभूमि केलिए हृदय में जिनके भरी
शक्ति थी अविरल ।
ग्राम ग्राम से निकल निकल कर ऐसे
युवक चले दल के दल[2] ।"

---

1. किसान (2019 वि.) - मैथिलीशरण गुप्त - देशत्याग, पृ.33
2. स्वप्न - रामनरेश त्रिपाठी

शिवमंगलसिंह "सुमन" ने देशभक्ति के प्रसंग में आत्म समर्पण की महिमा का गायन किया है[1]। सोहनलाल द्विवेदी ने प्रभाती का उन्हें प्रणाम "प्रभात फेरी", तथा भैरवी की मधुर तकाजा" कविताओं में मातृभूमि के प्रति समर्पण की भावना की ।

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने जनता को बलिदान का संदेश देकर उनमें देश केलिए मर मिटने की उत्तेजना जाग्रत की । इनकी कविताएं नवयुवकों की दबी अग्नि को प्रदीप्त करने लगी । सम्पूर्ण देश में हलचल मची थी और देश प्रेम का एक उमड़ता हुआ समुद्र चारों ओर ठाठें मारता दिखाई दे रहा था । देश के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में यह धारणा दृढ हो चुकी थी कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । अतः स्वदेश प्रेम सब में जागृत हो रहा था ।

देश के उद्धार केलिए आपसी भेद भाव को मिटाकर एकता की भावना को बढाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया । देश के विकास और उन्नति में बाधा बनकर जाति पाँति की समस्या उनके सामने आई । यह एक ज्वलन्त समस्या थी जिसके कारण विदेशी आक्रमण के विरुद्ध भारतीय समाज का एकीकरण न होता था । भेद-भाव के इस विषैले वातावरण के घातक परिणामों की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करते हुए द्विवेदीयुगीन कवि जातीय एकता के महत्व पर प्रकाश डालते हैं । जातीय

---

1. सुमन - प्रलय सृजन, पृ. 77

जीवन को संगठित करने में द्विवेदीयुगीन कवियों ने बडा मूल्यवान् कार्य किया है । वे जाति-पाँति के जाल में फँसे हुए समाज की मूढता पर क्षोभ प्रकट करते हैं और समाज हित केलिए जाति के प्रत्येक घटक में एकसूत्रता निर्माण करने का सुदृढ प्रण करते हैं ।

जातीयता के उद्गार एवं एकता का भाव

भारत ऐसा देश है जहाँ हिन्दू है, मुसलमान है, ब्राह्मण है, चाण्डाल है, धनी है और निर्धन है । इस प्रकार परस्पर विरुद्ध स्वार्थों की विराट भूमि है भारत । यहाँ पर पग पग पर एक दूसरे को गलत समझने की गुंजाइश है । इस से बचने केलिए जातीयता को मिटाकर भारतीयता को बनाये रखना आवश्यक है । द्विवेदी युगीन कवियों ने गाँधीजी के नेतृत्व में भारतीय एकता का प्रयत्न किया है । कहीं वे एकता के महत्व की बात करते हैं तो कहीं लोगों को एकता केलिए उद्बोधित करते हैं । मैथिलीशरण गुप्त का कहना है -

"पर मत हों कितने ही अंश,
अक्षय है शोणित संबन्ध ।"[1]

गुरुकुल, काबा और कर्बला, अर्पन और विसर्जन आदि रचनाओं का निर्माण ही सर्वधर्मसमन्वय को लक्ष्य करके किया गया है । जातिभेद को तुच्छ मानते हुए मनुष्यत्व की श्रेष्ठता की ओर

1. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.57

संकेत करनेवाले गुप्तजी गुरुकुल में स्पष्ट कहते हैं -

"हिन्दू हो या मुसलमान हो
नीच रहेगा फिर भी नीच[1] ।"

उनके मत में सामाजिक एकता में ही राष्ट्र का हित है । जातिगत विरोध में कुछ नहीं होगा ।

"जैन, बौद्ध, फारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई,
कोटि कण्ठ से मिलकर कह दें,
हम सब हैं भाई-भाई[2] ।"

गुप्तजी ने भारत-भारती में जातिभेद का घोर विरोध किया है[3] । यहाँ पर वे जातिभेद को छोड़कर सब धर्मों को जानने एवं देवों की पूजा करने पर बल देते हैं[4] । "सर्वभूतहितरतनिजधर्म" माननेवाले गुप्तजी का सिद्धांत बहुधर्मी फिर एक कुटुंब"वाला है । वे सब का त्राण चाहते हैं, सब को प्रेम करते हैं और सब पर विश्वास करते हैं[5] । गुप्तजी के साथ साथ द्विवेदीयुग के अन्य कवियों ने भी जातीय जीवन को संगठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । वे जातिपाँत के जाल फँसे हुए

---

1. गुरुकुल - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.37
2. मंगलघट - मैथिलीशरण गुप्त, मातृमन्दिर कविता
3. भारत भारती - मैथिलीशरण, पृ.104
4. वही, पृ.102
5. कुणाल - गीत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.33

समाज हित के लिए जाति के प्रत्येक घटक में एकसूत्रता लाने का प्रयत्न करते हैं । इन कवियों ने सम्पूर्ण जातिगत भेदभाव को मिटाकर भारतीय जनता को एक सूत्र में पिरोकर उन्नति पथ पर आगे बढाने का कार्य किया । द्विवेदीजी ने सब की सुख-समृद्धि की कामना प्रकट की है ।

"बल दो हमें ऐक्य सिखलाओ,
सम्भलो देश होश में आओ ।
मातृभूमि सौभाग्य बढाओ,
मेटो सकल क्लेश ।
हिन्दू मुसलमान ईसाई,
यश गावें सब भाई भाई ।
सब के सब तेरे शैदाई,
फूलो फलो स्वदेश[1] ।"

नाथूरामशर्मा शंकर की वाणी समाप्त कल्याण की भावना मुखरित होती है -

"जाति पाँति के विकट जाल में जुझे फँसे गंभार,
मैं अब सब को सुलझा दूँगा, करके एकाकार[2] ।"

1• द्विवेदी काव्यमाला, पृ•453-454

2• शंकर सर्वस्व {पंचपुकार} पृ•6

जातीय एकता पर अभिव्यक्त किए हुए मैथिलीशरण गुप्तजी के विचारों को निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"सब वैर और विरोध का बल-बोध से वारण करो,
है भिन्नता में खिन्नता ही एकता धारण करो।[1]"

राय देवीप्रसादपूर्ण जी ने हिन्दू मुसलमानों में प्रेम न होने पर दुख प्रकट किया है -

"मुसलमान हिन्दुओं वही है कौमी दुश्मन।
जुदा जुदा जो करे फाड़कर चोली दामन।[2]"

श्री॰ रूपनारायण पाँडेय ने भी देश के ईसाई मुसलमान, फारसी आदि जातियों को आपस में भ्रातृभाव रखने केलिए कहा है[3]। श्री॰ रामनरेश त्रिपाठी ने भी समस्त जातियों की एकता पर विशेष ज़ोर दिया है[4]। पं॰ रामचरित उपाध्याय ने नीचता के मनोमोदक में उन नकली जाति सेवकों पर व्यंग्य किया है जो समाज में बाह्य रूप से समानता का प्रचार करते हुए

---

1. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त (भविष्यत खण्ड) 23 पृ॰157
2. पूर्ण संग्रह, पृ॰312
3. मातृभूर्ति - सरस्वती खण्ड 14, संख्या 6, सन् 1913
4. सरस्वती भाग 12, संख्या 1, सन् 1914 ई;
"उठो त्याग दें द्वेष, एक ही सबके मत हों।
सीख ज्ञान विज्ञान, कला कौशल उन्नत हों॥
भारत की उन्नति सिद्धि से, हम सबका कल्याण है।
दृढ समझो इस सिद्धान्त को हम शरीर यह प्राण है।"

भी स्वयं उसे व्यवहार में लाने से दूर रहते हैं[1]। बदरीनाथ भट्ट की पतित का उलाहना और गोपालशरणसिंह की अछूत जैसी कविताओं में अस्पृश्यों के प्रति किए गए दुर्व्यवहारों से उद्भूत उनके असन्तोष और क्षोभ की अभिव्यक्ति है[2]।

इस प्रकार द्विवेदीयुग के कवि तत्कालीन जाति-पाँति का यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं और जातीय एकता उत्पन्न कर जनता में चेतना लाने का उद्योग करते हैं। जनता को जब अपनी हीनावस्था खलने लगती है, उस समय उसमें एकता की एक अदम्य उमंग उठ खड़ी होती है। यही एकता की भावना उसकी राष्ट्रीय जागृति की पृष्ठभूमि बन जाती है और वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता केलिए संघर्ष करने लगती है। उनमें क्रांति की चेतना तीव्र बन जाती है और वे आत्मबलिदान के पथ पर अग्रसर होना शुरू करते हैं।

क्रान्ति का स्वर तथा बलिदान की भावना

द्विवेदी युग में जनता के मानस में अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होने की उत्कट अभिलाषा प्रबल हो रही थी। गृह पथ देश-भक्ति की अखण्ड चेतना से परिव्याप्त हो रहे थे। युवक वर्ग

---

1. नीकता के मनोमोदक - पं. रामचरित उपाध्याय,
2. कविता कौमुदी - द्वितीय भाग - संपादक पं. रामनरेश त्रिपाठी पं. बदरीनाथ भट्ट के कविता संग्रह में उनकी "पतित का उलाहना" शीर्षक कविता।

कुछ विशेष उग्र रूप धारण कर रहा था और उसने इष्ट सिद्धि के लिए क्रान्ति का सहारा लिया । द्विवेदी युगीन कवि भी अपनी लेखनी को इसी रंग में रंगने से रोक न सके । उनकी वाणी में उत्तेजना का स्वर मुखरित होने लगा । वे देश के बच्चे तक नवोत्थान का संदेश पहुँचाने लगे । देश की दयनीय स्थिति से उन्हें अत्यन्त क्षोभ होता था तथा उसकी पराधीनता उनके लिए अखरती ही नहीं थी, बल्कि उससे मुक्त करने केलिए उनके हृदय में क्रान्ति का ज्वालाबल भी उमड़कर विस्फोट की राह देख रहा था । उनके कंठ से क्रान्ति-ध्वनियाँ भी निःसृत हुई हैं और तदर्थ देशवासियों में बलिदान की भावना भी उन्होंने भर दी है ।

सम्पूर्ण भारत को जाग उठाने का सन्देश देते हुए मैथिलीशरण गुप्तजी यों कहते हैं -

"अरे भारत उठ आँखें खोल ।
उड़कर यन्त्रों से खगोल में घूम रहा भूगोल
अवसर तेरे लिए खड़ा है ।
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है ।
तेरा कर्म क्षेत्र बड़ा है,
पल पल है अनमोल ।"[1]

अयोध्यासिंह उपाध्याय जी जनता को सचेत होने की प्रेरणा करते हुए लिखते हैं -

---

1. चेतना स्वदेश संगीत - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सं. 1982 वि. पृ.

"दिवममणि सा दिखला कर तेज,
सामने के तुम को दो टाल ।
सजग हो खोलो आँखें बन्द,
जाग जाओ हे जागृति काल ।"[1]

श्री· लक्ष्मण सिंह मयंक द्वारा बलिदान और राष्ट्र-कल्याण की अभिलाषा इस प्रकार प्रकट की गई है -

"चलो हम आहुति दें - दें प्राण ।
न होगा कर्म यक्ष बिन लाग ।
करें कल्याण - राष्ट्र निर्माण ।
ध्वनित हो वन्दे मातरम गान ।"[2]

उत्तेजना का यही स्वर और भी उग्र रूप से प्रकट हुआ है बद्रीनाथभट्ट की इन पंक्तियों में -

"उठो ! वीरगण उठो ! शास्त्र लो,
लो लो खड्ग पटक दो म्यान ।
बढ़ो सुदृढ हो विजय करो या
रामक्षेत्र में दे दो प्राण ।"[3]

1· मर्मस्पर्शी, पृ·107

2· राष्ट्रीय वीणा - द्वितीय भाग - श्री·लक्ष्मण सिंह मयंक पृ·47

3· राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, श्री बद्रीनाथ भट्ट, पृ·13

गया प्रसादशुक्ल "सनेही" ने कर्म की तलवार उठाकर उस पर ज्ञान की सान चढ़कर स्वाभिमान के साथ युद्ध में कूद पड़ने के भाव को जागृत किया है[1]। श्री. हरिराम पुजारी ने वन्देमातरम की हुँकार की इच्छा व्यक्त की है[2]। अपनी मातृभूमि पर अपना सर्वस्व अर्पण करने की उत्कट अभिलाषा माधव शुक्ल ने व्यक्त की है[3]। देश की स्वतन्त्रता का विशेष भार तो युवकों का ही वहन करना पड़ता है। उन्हीं पर तो समस्त देशवासियों की आँखें लगी रहती हैं। रामनरेश त्रिपाठी युवकों को उनके गुरुतम कर्त्तव्य की स्मृति ओजपूर्ण शब्दों में कराते हैं[4]। श्री.नाथूराम शर्मा शंकर के शब्दों में ओज हैं, निर्भीकता है तथा देश की बलिवेदी पर मर मिटने का एक अद्वितीय संदेश है[5]। वल्लभ की कविताओं में स्वराज्य की हुँकार सुनाई पड़ती है[6]। कविवर ठाकुर प्रसाद शर्मा अपनी कविताओं के माध्यम से बलिदान करने की प्रेरणा देते हैं[7]।

इसी प्रकार द्विवेदीयुगीन कवि क्रान्ति द्वारा प्रेरणा देकर जनता को राष्ट्र केलिए अपने आपको समर्पित करने की प्रेरणा देते हैं। अपनी मातृभूमि का कण कण उसके लिए आनन्द दायक है। यही निजत्व के फलस्वरूप जनता की एकता की आवश्यकता भी उन्हें महसूस होने लगी। उसकेलिए एक भाषा की ज़रूरत थी।

---

1. राष्ट्रीयमन्त्र - गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, प्रथम सं. 1921
2. स्वतन्त्रता की झनकार (प्रथम भाग), हरिराम पुजारी, पृ. 12
3. जागृत भारत - माधव शुक्ल, प्रथम सं. पृ. 35
4. स्वप्न - रामनरेश त्रिपाठी,
5. बलिदान गान - शंकरसर्वस्व, पृ. 248
6. राष्ट्रीय वीणा - द्वितीय भाग, प्रथम सं. पृ. 75
7. "सेवा करने में स्वदेश की जो मेरा यह जाय शरीर,
   तो मेरा मरना सार्थक हो, समझूँ मैं अपने को वीर।"

इसीलिए द्विवेदीयुगीन कवि भाषिक एकता पर भी बल देने लगे ।

राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम

राष्ट्रीयता के पोषक एवं संवर्धन केलिए भाषा भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । इस तथ्य से द्विवेदीयुगीन कवि अनभिज्ञ नहीं थे, वे भारतेन्दु के निज भाषा उन्नति अहै सबै उन्नति के मूल" सिद्धांत पर चलने वाले थे । उन्हें भली-भाँति ज्ञात था कि एक भाषा देशवासियों की विचारधारा में ऐक्य की भावना को परिपुष्ट करके उन्हें एक रज्जु में आबद्ध करने की क्षमता रखती है । इसीलिए पं॰महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे द्विवेदीयुगीन कवियों ने एक भाषा राष्ट्रभाषा को अपनाने पर बल देते हुए उनकी महत्ता प्रतिपादित की है । अपनी भाषा अर्थात् हिन्दी की सर्वश्रेष्ठता के वे समर्थक थे तथा उसके प्रति आदर एवं सम्मान की भावना प्रकट करना अपना राष्ट्रीय कर्त्तव्य मानते थे ।

राष्ट्रीयता की भावना के प्रचार के साथ हिन्दी के प्रति प्रेम की भावना भारतेन्दु युग से ही बढ़ने लगी थी । राज्य तथा कचहरी की भाषा पहले उर्दू व फारसी थी अब उसका स्थान धीरे धीरे हिन्दी लेने लगी । यह परिवर्तन अकस्मात ही नहीं हुआ, इसकेलिए जनता को सतत संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष ने आन्दोलन का रूप ले लिया जिसमें द्विवेदीयुग के अधिकांश कवियों ने भाग लिया । भारतेन्दुयुग के समान यहाँ पर भी

बहुत से हिन्दू हिन्दी, हिन्दुस्तान" का लक्ष्य लेकर इस आंदोलन को आगे बढाने में सक्रिय रहे ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के अनन्य महारथी और उन्नायकों में अग्रणी रहे । द्विवेदीजी को हिन्दी भाषा और साहित्य से ही नहीं अपनी बैसवाडी बोली से भी विशेष प्रेम था । यहाँ के लेखकों व कवियों को विदेशी भाषा का प्रयोग करना उन्हें बहुत बुरा लगता था, वे सारे देश में हिन्दी भाषा का प्रचार चाहते थे । द्विवेदीजी ने हिन्दी भाषा के प्रयोग तथा हिन्दी साहित्य के भंडार की वृद्धि केलिए प्रेरणाप्रद बहुत से लेख व कविताएँ लिखी तथा भाषण दिए । मातृभाषा को छोड़कर अन्य भाषाओं में लिखने वालों को उन्होंने बहुत बुरा माना । नागरी की दुर्दशा के वर्णन में द्विवेदीजी ने उसके गुणों पर भी प्रकाश डाला है -

"नागरी तेरी यह दशा
माता त्वदीय शुचि संस्कृत देवयानी,
वर्णावली तव मनोहर रूपखानी
अत्यन्त शुद्ध लिपि होती सदैव तेरी
अल्प प्रयास महँ सिद्धि सबै घनेरी[2] ।"

जगन्नाथप्रसाद द्विवेदीजी ने हिन्दी भाषा का मार्मिक शब्दों में प्रतिनिधित्व करते हुए कहा है -

---

1. डॉ. उदयभानुसिंह - महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग प्रथम सं. पृ.57

2. महावीरप्रसाद द्विवेदी - नागरी (प्रथम सं.), पृ.1

"जो हिन्दू हिन्दी तजै, बोलो इंगलिश जाय ।
उनकी बुद्धि पे परयो, निहचय पाथर हाय ।।
देशन में भारत भलो, हिन्दी भाषन माहिं ।
आतिन में हिन्दू भली, और भली कुछ नाहिं ।"[1]

रामचरित उपाध्याय ने निम्नलिखित पंक्तियों में अपनी भाषा की सेवा करने का संदेश दिया है -

"जय जय हिन्दी, जय जय हिन्द ।
जय जय हिन्दू जय गोविन्द ।।
निज भाषा की सेवा करिए
जन्मभूमि के दुःख को हरिए
भारत ! मन में तनिक न डरिए,
कुछ कर सकते नहीं पुलिन्द[2] ।।"

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दी के प्रति प्रेम की भावना को मार्मिक शब्दों में प्रकट किया है[3]। मैथिलीशरण गुप्तजी भी हिन्दी प्रेमियों में विशेष उल्लेखनीय हैं । वे भी हिन्दी भाषा के लोकप्रिय न होने पर खेद प्रकट करते हैं । उनकी दृष्टि में हिन्दी भाषा को अपनाना राष्ट्रीय विचारों को विकास देना है । इसीलिए राष्ट्रीयता के अन्य तत्वों तथा इकाइयों के साथ ही

---

1. कविता कौमुदी - संपादक रामनरेश त्रिपाठी, पृ.27।
2. राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ.75
3. "हिन्दू होकर भी हिन्दी में यदि कुछ भी न भक्ति के लेश
   दूर देश की भाषाओं से यदि इतना है प्रेम विशेष ।
   इंगलिस्तान अरब,फारिस को तो अब तुम कर दो प्रस्थान,
   यहाँ तुम्हारा काम नहीं कुछ,छोडो मेरा हिन्दुस्तान ।।"
   - द्विवेदी काव्यमाला, पृ.448

उन्होंने हिन्दी भाषा को अपनाने का भी आग्रह किया है -

"ग्राम ग्राम में ग्रन्थागार,
करें ज्ञान-गुण का विस्तार ।
बढ़े हिन्द-हिन्दी पर प्यार,
भरें राष्ट्र भाषा भण्डार ।
फैलाओ हिन्दू साहित्य,
युग युग का सहचर निज नित्य ।
निज भू, निज भूषा, निज वेष
निज भाषा, निज भाव अशेष ।"[1]

"त्रिशूल" जी के "जातीयगीत" में एक स्थान पर हिन्दी, हिन्दू तथा हिन्द का स्वर मुखरित होता है -

"भजसि मन हिन्दी, हिन्दू, हिन्द ।।
जननी सदृश मातृ-भाषा है कहिगे कोटि कोविन्द ।
याके पद-पंकज को बनि रहु आठहु याम मलिन्द ।"[2]

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन कवि भारत की उन्नति केलिए राष्ट्रभाषा-हिन्दी को अपनाना अत्यन्त आवश्यक ही समझते हैं । इसी कारण वे भाषा के प्रचार पर बल देते हैं और स्वतंत्रता की आकांक्षा लेकर आगे बढ़ते हैं । भारतीयों को अपनी दासता के बारे में पूर्ण रूप से अवगत कराकर उन्हें स्वाधीनता के महत्वपूर्ण पथ की ओर लाते हैं ।

---

1. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.126
2. राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ.75

स्वतन्त्रता का महत्व

राष्ट्र का सर्वतोमुखी पतन पराधीनता से होता है । देश की हर प्रकार की अवनति का मुख्य कारण परतन्त्रता है । पराधीनता में जो अपमान, तिरस्कार, ग्लानि और लज्जा है उसके क्लेश का अनुभव पराधीन जाति ही कर सकती है । पराधीनता के समान कोई अन्य दुःख नहीं है । व्यक्ति, परिवार और मनुष्य-जाति की हरेक प्रकार की उन्नति का मु.य साधन स्वातन्त्र्य है ।

भारतवासियों की स्थिति "पराधीन सपनेहु नाही" के समान थी । अतः देशभक्ति का तात्कालिक लक्ष्य विदेशी शासन से मुक्ति रहा । देशभक्ति का सबसे प्रबल विस्फोट पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष में ही मिलता है । भारत हमारा देश है, वह हमारी जन्मभूमि है, उस पर हमारा स्वत्व है । हमारी जन्मभूमि पर विदेशी आकर शासन करें, अपने घर में हम ही बन्दी रहें यह घोर लज्जा की बात है, इस लौह श्रृंखलाओं को प्राणों की बलि देकर छिन्न भिन्न करना होगा, यह देशभक्तों की भावना रही । परन्तु देशवासियों में जब तक अपनी दासता की अनुभूति न हो, राष्ट्रीय-चेतना को प्रोत्साहन प्राप्त होना कठिन था । इस तथ्य को जानकर द्विवेदी युग के कलाकार देशभक्ति से प्रेरित होकर पराधीनता पर विक्षोभ प्रकट करते हैं और जनता की भावनाओं को उद्वेलित करके उन्हें स्वातन्त्र्य-प्राप्ति केलिए निरंतर

संघर्ष करने केलिए प्रेरणा देते हैं । इन कवियों ने परतन्त्रता का दुःख स्वाधीनता का सुख और स्वातन्त्र्य प्राप्ति की कामना तथा उसके लिए संघर्ष - भावों को प्रकटकिया है ।

रामचरित उपाध्याय ने परतन्त्रता को वैतरणी सम दुःख दायक समझा है[1]। माधव शुक्ल ने जागृत-भारत में भारत की परतन्त्रता पर बहुत दुःख प्रकट किया है और भारतीयों से इस दासता दुःख हरने का आग्रह किया है । कवि के मतानुसार पराधीनता में मरना देव नियम के विपरीत है । इसी प्रकार अनेक कविताओं में परतन्त्र अवस्था पर क्षोभ, स्वतन्त्रता प्राप्त करने का दृढ संकल्प तथा इस उद्देश्य केलिए सब कुछ होम कर देने की इच्छा प्रकट की गई है । जागृत भारत की अधिकांश कविताओं में भावनाओं की जो तीव्र ता मिलती है वह अन्य कविताओं से इन्हें पृथक कर देती है, जैसे -

"छोड दे यह चोला वन्दे यह न तेरे काम का
दाग लग गया है इसमें दासता के नाम का[2]।"

कवि को परतन्त्रता का बडा दुःख है । हम घर के भूल गए और पराये लोग गृहस्वामी बन गये, हम उजड गये और अन्य ने पैर जमा लिये, ऐसी अवस्था में वीर अपने शोणित से स्वतन्त्रता का दीप संजोते हैं[3]। रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार अपना शासन अपने आप करने में ही शान्ति और सुख है तथा

1· रामचरित उपाध्याय - राष्ट्रभारती, पृ·39
2· माधव शुक्ल - धिक दासत्व, जागृत भारत, पृ·20
3· माधव शुक्ल - सच्चा स्वराज्य - जागृत भारत, पृ·36

पराधीनता से बढ़कर जगत में कोई दु:ख नहीं है । एक घड़ी परवशता को कोटि नरक के समान और एक पल भर की स्वतन्त्रता सौ वर्षों से उत्तम है । इसी परतन्त्रता से बचने केलिए अपने ही शासन की आवश्यकता है । इसलिए द्विवेदीयुग के कविगण प्रजातन्त्र को महत्व देने लगे ।

प्रजातन्त्रसम्बन्धी विचार

द्विवेदीयुग के प्राय: सभी कवियों ने प्र जातन्त्र के पक्ष में अपनी लेखनी चलायी । भारतेन्दुयुगीन राज शासन प्र णाली से दूर रहकर द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्रजा द्वारा अपने ऊपर शासन करने की रीति को ही उचित समझा । प्रजातन्त्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्र जा ही शासक चुनती है । एनसैक्लोपीडिया ब्रिटानिका में प्रजातन्त्र के बारे में यों कहा गया है कि "Democracy - rule by the people is a form of Government in which the right to make political decisions is exercised directly by the whole body of citizens, acting under procedures of majority.[1]"

इसमें प्रजा ही समय समय पर शासन केलिए अपने प्रतिनिधि चुन लेती है । प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों का पालन मर्यादा में रहकर करना चाहिए । कुछ सिद्धांतों के बिना प्रजातन्त्र की स्थापना असम्भव है । वे हैं, एक दूसरे की

---

1. Encyclopedia Britanica, Volume 4, 15th Edition, p.5

संप्रभुता का आदर करना, आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना सद्भावना और मैत्री की सम्भावनाओं को दृढ बनाये रखना तथा सहअस्तित्व इसी से राष्ट्र की शान्ति-सुव्यवस्था बनी रह सकती है । इसीलिए प्रजातन्त्र में सबकी कुशलता का ध्यान रखकर सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना उचित है । एनसैक्लोपीडिया अमेरिकाना में कहा है कि "The word Democracy has many meanings, but in the modern world its use signifies that the ultimate authority in political affairs rightfully belongs to the people"[1]

अर्थात् प्रजातन्त्र में राजनीतिक कार्यों में प्रजा के हित को ही प्रधानता दी गई है । इसकेलिए योग्य व्यक्ति को ही मत देने का अधिकार होना चाहिए । स्वतन्त्र मताधिकार ही प्रजातन्त्र का मुख्य सिद्धान्त है । प्रजातन्त्र राज्य में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार मिला है । द्विवेदीयुगीन काव्य में प्रजातन्त्र के इन सभी तत्वों का समावेश स्पष्ट लक्षित है ।

मैथिलीशरण गुप्तजी ने पंचवटी में प्रजा के स्वशासन पर बल दिया है -

"पर अपना हित आप नहीं क्या
कर सकता है यह नर लोक ?"[2]

---

1. Encyclopedia Americana, Volume 8, Edn.1929, p.684.
2. पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.10

"साकेत" में गुप्तजी ने राम के शब्दों में प्रजातंत्र में नियम पालन को आवश्यक बताया है -

"जन पद के बन्धन मुक्ति हेतु हैं सबके
यदि नियम न हों उच्छिन्न सभी हों सबके[1] ।"

तात्पर्य यह है कि प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों का पालन मर्यादा में रहकर करना चाहिए तथा प्रजातन्त्र का आदर्श समष्टि हित होना चाहिए -

"जब समष्टि में रमें व्यष्टि को विकसित करके
निज हित होगा स्वयं सफल सबका हित करके[2] ।"

प्रजातन्त्र में अयोग्य व्यक्तियों को मत देना का अधिकार नहीं होना चाहिए -

"मत देनेवाले हुए यहाँ जो इतने,
उनमें इसके उपयुक्त पात्र हैं कितने ।
अन्धों को आयुध दिया जाय तो भय है,
वे कटें न उसमें आप, तभी विस्मय है[3] ।"

1· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ·231
2· राजा-प्रजा - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·46
3· वही, पृ·16

गुप्तजी ने जनमत संग्रह को प्रजातन्त्र केलिए उपयुक्त बताया है । जनमत संग्रह प्रचार के बल पर किया जाता है । प्रचार के बहकावे में आकर जनता योग्य अयोग्य पात्र का चुनाव नहीं कर पाती और बिना जाने समझे मत दे देती है । जयभारत में कृष्ण का यही विचार है -

"हो जाती है साथ बिना जाने भी जनता,
पात्र योग्य मतदान कहाँ बहुतों से बनता ।"

बहुमत रखने को मान्य भी रहते बहुधा बाध्य हैं,
बन जाते हीन चरित्र भी मत संग्रह में साध्य हैं ।
बहु जनमत से जिन्हें प्राप्त होती है सत्ता,
करनी पड़ती प्रकट उन्हें भी यों मतिमत्ता

जन साधारण नहीं समझते हैं निज हित ही ।"[1]

"साकेत" में सीता के कथन में मत स्वातन्त्र्य पर बल दिया है -

"मत की स्वतन्त्रता विशेषता आर्यों की,
निज मत के ही अनुसार क्रिया कार्यों की ।"[2]

अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर

जब व्यक्ति, व्यक्तिवाद के घोंघे से निकलकर समाज के विस्तृत प्रांगण में प्रवेश करता है, तो उसकी व्यक्तिगत वेदना

---

1. जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त "शान्ति संदेश", पृ.327
2. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ.259

विश्वजनीन वेदना बन जाती है । द्विवेदीयुगीन कवि उस भारतीय परम्परा के प्रतिनिधि चिन्तक हैं - जो ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित रही है । क्योंकि भारतीय ऋषि मुनि पर्ण - कुटीरों में रहकर विश्व-कल्याण केलिए अपना सम्पूर्ण अध्ययन, चिन्तन-मनन समर्पित करते रहे हैं । युगों-युगों से अहिंसा, शान्ति, समाज-कल्याण और विश्व-बन्धुत्व की भावना का संवर्धन करते आ रहे हैं । द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी इस श्रेष्ठ प्राचीन परम्परा का साथ देते हुए विश्वबन्धुत्व की भावना का समर्थन किया है । द्विवेदी युग के काव्य इसी उदात्त भावना के अन्तर्गत की हैं । द्विवेदीयुग की राष्ट्रीयता की भावना प्रान्त एवं देश की संकीर्ण परिधि से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की व्यापक भावना में पर्यवसित हुई है । द्विवेदीयुगीन काव्य सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, भ्रातृत्व भावना की स्रोतस्विनी धारा से आप्लावित है ।

मैथिलीशरण गुप्तजी ने राजा-प्रजा में इसी भावना को व्यक्त किया है । इसमें प्रजा की उक्ति है कि हमें सबकी सुविधा का ध्यान रखकर कार्य करना चाहिए -

"सबका जीवन स्वस्थ हो सके सो करना है
अभय समन्वय भाव भुवन भर में भरना है ।"[1]

भारत-भारती में गुप्तजी ने अन्तर्राष्ट्रीय एकता को महत्व देते हुए पारस्परिक प्रेम पर बल दिया है -

---

1. राजा-प्रजा - मैथिलीशरण गुप्त, प्रजा, पृ.4।

"आओ, मिलें सब देश बांधव हार बन कर देश के,
साधक बने सब प्रेम से सुख शान्तिमय उद्देश्य के।"[1]

श्री· अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी प्रियप्रवास में राधा के माध्यम से विश्वप्रेम का रूप दिखाते हैं। प्रियप्रवास की राधा केवल जगदविख्यात प्रेमिका ही नहीं वरन् जन-सेवा में आत्मोत्सर्ग करनेवाली एक समाज सेविका भी है। उसका व्यक्तिगत प्रेम विश्वप्रेम का रूप धारण कर लेता है -

"वे छाया थी सुजन-सिर की शासिका थीं खलों की।
कंगालों की परम निधि थी औषधी पीड़ितों की।।
दीनों की थी बहन, जननी थी अनाथाश्रितों की।
आराध्य थी व्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थी।"[2]

मानवमात्र के सेवा-धर्म ने ही कवियों के हृदय में विश्वबन्धुत्व तथा विश्वप्रेम की भावना को जन्म दिया। इन्होंने धर्म के स्वरूप का विकास कर इसे जगतहित तथा विश्वकल्याण का साधन बना दिया। वे अखिल विश्वसंचारिणी प्रेमधारा में समस्त जीवों को विभोर कर सम्पूर्ण सृष्टि में बसनेवाले मानव-मानव में एकसूत्रता की कल्पना करते हैं। धर्म के द्वारा विश्वमिलन की सुन्दर झांकी उपाध्याय जी के शब्दों में सुनिए -

---

1· भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, भविष्यत खंड, पृ·163
2· प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सर्ग 17, पृ·49

"व्यापक धर्म समूह मूल सिद्धान्त एकता ।
सब देशों के विविधा वृन्द की वर विवेकता ।।
भ्रातापन का भाव जातिगत स्वार्थ महत्ता ।
मानवता का मंत्र विविध स्वाभाविक सत्ता ।।
दूर करेगी उरों से सकल अवांछित भिन्नता ।
शमन करेगी प्रेम की धारा मानस खिन्नता ।"[1]

कवि को अब अपने पराये में भेद प्रतीत नहीं होता अपितु उसे तो समस्त प्राणी अपने ही दिखाई देते हैं । यही तो मानव धर्म है -

"जगत में कौन पराया है,
कौन या नहीं हमारा है ।"[2]

विश्वमानववाद की भावना मैथिलीशरण गुप्तजी की कृतियों में भी व्याप्त है । वे भी संकीर्ण वायुमण्डल को विच्छेद कर सम्पूर्ण विश्व में स्वर्ग की स्थापना की महान कल्पना करते हैं । कवि के शब्दों में व्यापक तथा उदार भावों का स्फुरण मिलता है । वे आर्य-धर्म के उस महान संदेश की स्मृति भी कराते हैं जिसका लक्ष्य है - "विश्वप्रेम" । उन्होंने भारतीय जनता में सर्वेभवन्तु सुखिनः का व्यापक संदेश फैलाते हैं -

---

1. पद्यप्रमोद - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ.3।
2. पारिजात - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ.28।

"आर्य धर्म गत विश्व प्रेम,
नहीं चाहता किसका क्षेम ?
हैं जितने जड चेतन जन्तु,
निखिल निरामय सुखी भवन्तु
×× ×× ××
हिन्दु नहीं चाहते स्वर्ग,
नहीं चाहते हैं अपवर्ग ।
करें दुख तप्तों का त्राण
यही चाहते उनके प्राण ।"[1]

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन कवि किसी परिधियों में आबद्ध न रहकर मानवमात्र के प्रयोग की वस्तु बनकर विश्वमानववाद के पद को ग्रहण करता हुआ जान पड़ता है । उन्होंने युग की परिवर्तित हो रही स्थितियों में इस जडचेतनमय विश्व के मंगल-कल्याण की भावना का प्रसार किया है । ये कवि समाजवादी हैं, राष्ट्रवादी हैं परन्तु इनका अन्तिम लक्ष्य विश्व हित ही है ।

समसामयिक राजनीति

राजनैतिक स्थितियों की उग्रता के अनुरूप ही काव्य की भावधारा में तीव्रता एवं आवेग उत्तरोत्तर बढ़ता गया ।

---

1. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.121

भारतेन्दु काल की अपेक्षा इस युग का कवि इस क्षेत्र में अधिक जागरूक होकर क्रान्तिकारी रचना करने में सफल हुआ है । इस युग की रचनाओं में जाति को आन्दोलित करने की एक अद्भुत शक्ति है और देश की स्वतन्त्रता केलिए सतत संघर्ष करने की एक प्रेरणा विद्यमान है । कवियों ने देशवासियों को अपनी ओजमयी वाणी द्वारा बलिदान की राह पर सहर्ष बढ़ना सिखाया और उन्हें अमर राष्ट्रीय संदेश देकर राजनैतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार संभलने की चेतावनी दी ।

यद्यपि परिवर्तन की प्रक्रिया बड़ी द्रुतगति से होती जा रही थी परन्तु कुछ एक प्रारम्भिक रचनाओं में भारतेन्दु युग के समान ही राजभक्ति के भाव प्रदर्शित है । सम्भवत: वे कवि भी ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा निर्माण किए गए अनेक सुख-सुविधाजनक आविष्कारों तथा साधनों को भारतीय जनता केलिए वरदान समझते थे । अंग्रेजी राज्य का गुण-गान महावीरप्रसाद द्विवेदी अपनी कविता कृतज्ञताप्रकाश में इन शब्दों में करते हैं -

"विक्टोरिया विजयनी वर-राज्य माहीं,
अन्याय-लेशहु कभू कहुँ होत नहीं ।
पूरी प्रतीति इहि की हम आज पाई
मोहीं परस्पर मनुष्य कहैं सुनाई ।।"[1]

1· द्विवेदीकाव्यमाला, पृ·272

विक्टोरियाकालीन शासन की प्रशंसा श्रीधर पाठक भी करते हैं। वे महारानी तथा महाराज की दीर्घायु केलिए शुभकामना व्यक्त करते हैं -

"नामा दोनों का दृढ रहे अटल प्रेम का आज
जग में जिएँ जुगानुजुग महारानी महाराज।[1]"

भोले-भाले भारतीय लोग अभी भी विदेशी सरकार पर आशा लगाए बैठे थे। सत्य तथा अहिंसा के उपासक भारतवासी शोषणकर्ताओं के हथकंडों तथा कूटनीतिज्ञों पर सहज ही विश्वास नहीं कर सके, वरन् जहाँ तक हो सका उन्होंने अपनी राजभक्ति को बनाए रखने की चेष्टा की। तत्कालीन कवि भी इसी विचारधारा से प्रभावित दिखाई देते हैं। रायदेवीप्रसादपूर्ण शासन के प्रति कितने आशाजनक तथा प्रशंसात्मक विचार प्रकट करते हैं -

"वह कई तरह तैयार हैं भारत के उद्धार को,
फिर करते हैं बदनाम हम किस मुँह से संस्कार को।[2]"

बात कुछ ठीक भी थी, क्योंकि यह विदेशी शासन का ही प्रभाव था कि भारतवर्ष में नवीन वैज्ञानिक पदार्थों तथा अद्भुत विद्युत शक्तियों का चमत्कार दिखाई देने लगा था।

---

1. भारतगीत - श्रीधरपाठक, पृ. 167
2. पूर्ण - संग्रह (1921), पृ. 235

अतएव यदि कवियों ने इस सत्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर दी हो तो कोई बडी बात नहीं । गुप्तजी भी अंग्रेज़ी राज्य के शुभ प्रभाव के प्रति आभार प्रकट करते हुए लिखते हैं -

"सचमुच ब्रिटिश साम्राज्य ने हमको
बहुत कुछ है दिया,
विज्ञान का वैभव दिखाया समय से
परिचित किया ।"[1]

परन्तु शीघ्र ही वे जान गए कि नवीन-नवीन साधनों तथा आविष्कारों के रूप में फैलाए गए मायाजाल में वास्तव में अंग्रेज़ों का अपना ही हित निहित था । ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था त्यों-त्यों भारतवासी इस छलपाश में दृढ से दृढतर रूप में आबद्ध होते जा रहे थे । उनकी आशाएँ मृगमरीचिका के समान मिथ्या एवं भ्रममूलक थीं । विदेशी सरकार की काली करतूतों का चिट्ठा उनके सम्मुख नंगा होने लगा । उन्होंने अंग्रेज़ों के कृपाकटाक्ष पर जो आशाएँ लगा रखी थीं वे अब निराशा में परिणत होने लगीं । उन्हें विश्वास होने लगा कि दया की भिक्षा मांगने से कोई भी उनकी अकिंचन झोली चुपचाप स्वर्ण मुद्राओं से भर नहीं देगा । वे स्वयं सचेत तथा जाग्रत होने की आवश्यकता को अनुभव करने लगे । उन्हें अपनी राजनैतिक दासता पर ग्लानि होने लगी । परिणामतः देश भर में नवीन राजनैतिक चेतना का विकास होने लगा और जनता में

---

1. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, अतीत खण्ड 247, पृ.8।

अंग्रेज़ों के प्रति घृणा और प्रतिशोध की भावना प्रबल होने लगी । यही उत्तेजना का स्वर द्विवेदी-युगीन कवियों के कलकण्ठ से उच्छवसित होकर जन जन को आन्दोलित करने लगा । वे सच्चे राष्ट्रीय कवि थे, जो राष्ट्र के प्रत्येक स्पन्दन की पूर्ण अनुभूति कर जनता में राष्ट्रीय भावों की ज्योति को प्रज्ज्वलित करने में सफल हुए ।

विभिन्न गीत

द्विवेदीयुगीन कवियों की राष्ट्रभक्ति भारतवन्दना और प्रशस्ति गीतों के साथ साथ जागरण गीत अभियान गीत झंडा गीत आदि के द्वारा अभिव्यक्त हुई है ।

पं० सोहनलाल द्विवेदी ने जागरण कविता में नवयुग और नवचेतना का सुंदर चित्र खींचा है । देश के लिए लड़नेवाले वीरों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -

"नहीं हाथ में धनुष बाण है,
नहीं चक्र शूली कृपाण है,
लड़ते हैं फिर भी मतवाले
शीश सत्य का शिरस्त्राण है ।
xx xx xx
भुजदंडों के लोह दण्ड में
वज्रशक्तिजग रही आज है[1]

---

1. जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० 123

आज आत्मबल ऊपर उठा
पशुबल पदतल पर झुक आया
आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया[1]।"

भारतमाता की स्वतन्त्रता केलिए बलिदान करनेवाले लोगों के मरण में भी कवि को जीवन जागता सा दिखाई पड़ता है। आत्मत्याग की अमर भावना ने मृतकों को भी अमृत पिलाया है। अभियान गीत के अन्तर्गत सोहनलाल द्विवेदी जी ने स्वतन्त्रता सेनानियों को उद्बोधित किया है। वे पग पग पर अपनी कविता के ज़रिये उन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देते रहे हैं। प्रयाणगीत में भारतीयवीरों को जगाते हुए उनमें नई उमंग एवं नया जोश पैदा करते हैं। वह हरेक वीर से जन्मभूमि के लिए मरने की प्रार्थना करती है[2]। सोहनलाल द्विवेदी जी का ध्वजागीत - तिरंगा इन दोनों कविताएं राष्ट्रीय झंडे की महत्व को अभिव्यक्त करते हैं। हमारा राष्ट्रीय झंडा जिसमें आज़ादी का सपना साकार दिखाई जा रहा है नूतन निर्माण का सन्देश लेकर भारतीय वीरों को अभियान केलिए प्रेरित करनेवाला है[3]। "ध्वजा गीत" में नई स्फूर्ति एवं उमंग की सूचना देते हुए कवि का कहना है -

---

1. जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ॰123
2. वही, पृ॰138-139 "प्रयाग गीत"
3. वही, पृ॰162

"रक्त रक्त में नवीन शक्तिभरी आग हो,
प्राण प्राण में नवीन भक्ति आत्मत्याग हो,
कण्ठ कण्ठ में नवीन आज राष्ट्रराग हो ।
जन्मभूमि का अमर, अचल अमिट सुहाग हो ।[1]"

राष्ट्र के अमर विजय निशानरूपी ध्वजा की वह वंदना करते हैं ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय राष्ट्रीय झंडे का महत्व को भी आंकने में द्विवेदीयुगीन कवि पीछे नहीं रहे । हमारा तिरंगा झंडा मानव की त्रिगुणात्मिका का प्रतीक रहा और धर्म अर्थ मोक्ष का दाता रहा जिसे देखते हुए ही प्रत्येक भारतीय के रंग रंग में खून उबलने लगा और व्यक्ति व्यक्ति इस झंडे पर अपना तन मन अर्पण करने केलिए तैयार हो गया । गुप्तजी ने राष्ट्रीय झंडे का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया है -

"तेरी पुण्य पताका फहरे ।
मुक्त मुक्ति पट उसका लहरे, आंधी उठे,
घटा भी घहरे ।
मेरी दृष्टि उसी पर ठहरे, लाख-लाख
कण्टक हो पथ में
जिधर वह छहरे, भय विघ्नों से हृदय न हहरे ।[2]"

---

1. जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.259
2. मैथिलीशरण गुप्त - स्वप्नोत्थित, जनवरी, 1920, पृ.2
हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा - डॉ.लक्ष्मीनारायण दूबे, पृ.23।

गुप्तजी के मत में तिरंगा झंडा हृदय के समस्त भय विघ्नों को मिटानेवाला है और स्वतन्त्रता के मार्ग पर के समस्त कण्टकों को हटानेवाला है ।

श्री॰ गिरिधर शर्मा ने भारत की पताका को समूचे विश्व में फहराने की भावना प्रकट की -

"मेरे प्यारे भारत-निवासी ब्रह्मवेत्ता वीर,
आज जग जीतने को अनोखी तैयारी हो,
दिखला दो ब्रह्म तेज सिखला दो ब्रह्म विद्या,
फैला दो त्यों ब्रह्म ज्ञान दृढ व्रतधारी हो ।
विजय - पताका उडे भारत की सभी ठौर
इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी झुकावे शीस,
देखकर दंग होवे विश्व आज्ञाकारी हो[1] ।"

निष्कर्ष

विभिन्न राजनैतिक आन्दोलन बलिदान, सशस्त्र संग्राम तथा क्रान्तिकारियों के हत्याकाण्ड से द्विवेदीयुग में जनता के बीच एक अपूर्व जागृति हुई थी । इस काल की कविताओं में स्वतन्त्रता की हुंकार है, विद्रोह एवं विध्वंस की वाणी है तथा स्वतन्त्रता केलिए बलिदान करने के आकांक्षी प्राणों का उत्साह एवं उल्लास है । प्रान्तीयता एवं साम्प्रदायिकता को मिटाने

1· विचार तरंग, छन्द प्रथम, 25 फरवरी, 1914, पृ·655
हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा - डॉ·लक्ष्मीनारायण दूबे, पृ·239

केलिए द्विवेदी युगीन कवि स्वराज्य की महत्ता पर बल देते थे । गांधीजी की अहिंसक राष्ट्रीयता से आत्म बल संजोकर जन्मभूमि की स्वतन्त्रता केलिए त्याग सहने में उन्होंने जनता को प्रेरणा प्रदान की । उनकेलिए अपना राष्ट्र सब कुछ था । इसी राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति द्विवेदी युगीन कवियों के राष्ट्र के प्रति समर्पण के भाव द्वारा प्राप्त होती है । देश के उद्धार केलिए एकता की भावना को बढ़ाना वे अत्यन्त आवश्यक समझते थे । इसके फलस्वरूप क्रान्ति केलिए आह्वान, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता, प्रजातन्त्र विचारों की महत्ता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता के स्वर को काव्य में प्रमुखता मिलने लगी । अपनी विभिन्न कविताओं के माध्यम से निराशवान जनमन में आशा का दीप जलाकर उन्हें राष्ट्रीयता का नया सन्देश देने में द्विवेदीयुगीन कवि सफल हुए ।

पंचम अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य में गांधीवाद का स्वरूप

पंचम अध्याय

द्विवेदीयुगीन काव्य में गांधीवाद का स्वरूप

किसी भी साहित्यकार पर युगीन विचारधाराओं का प्रभाव जाने अनजाने पड़ता है । द्विवेदीयुगीन कवि एकान्त साधक होते हुए भी युगद्रष्टा भी थे । इसीलिए उनके साहित्य में युग की तस्वीर दिखाई पड़ती है । इससे यह पता चलता है कि कवि की चेतना युगबोधिनी है जिसमें नवोन्मेष का रूप दिखाई पड़ता है । द्विवेदीयुग में गांधीवाद को जो प्रतिष्ठा मिली उससे कविगण अभिभूत हो उठे । परिणामस्वरूप अहिंसात्मक राष्ट्रीयता के धरातल पर वे गांधी - दर्शन के व्याख्याता बन गए ।

सांस्कृतिक नवजागरण से उद्भूत गांधीवाद

द्विवेदीयुग में अंग्रेज़ी शासन से घटित विभिन्न परिस्थितियों और घटनाओं ने भारत की जनता में अंग्रेज़ों के प्रति असन्तोष की भावना पैदा की । यह भावना राष्ट्रीय चेतना की जागृति की भूमिका बन गई । उन्हीं दिनों देश में राजा राम मोहनराय, स्वामी दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने सांस्कृतिक जागरण का नव संदेश लेकर जनता को अकर्मण्यता की नींद से जगाया । इन सुधारवादी प्रवृत्तियों से प्रेरणा पाकर उन्हीं की नींव में भारत में एक नयी शक्ति का जन्म हुआ और वह था गांधीवाद । गांधीजी ने अपने अहिंसावाद के बल पर समाज में प्रचलित करीतियों के विरूद्ध आवाज़ उठायी थी ।

गांधीजी द्वारा अभिव्यक्त विचार धारा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि लिए हुए है । उन्होंने अपने जीवन के अनुभव तथा सभी धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के आधार पर मानव-समाज के कल्याण को दृष्टि में रखते हुए कुछ तत्वों का संधान किया है । गांधीजी ने इन तत्वों का प्रयोग केवल वैयक्तिक एवं आध्यात्मिक धरातलों पर ही नहीं किया, अपितु उनका प्रयोग सामाजिक एवं राजनैतिक धरातलों पर भी किया है । हम इनका विवेचन सैद्धान्तिक, व्यावहारिक एवं सुधारात्मक पक्ष के अन्तर्गत करेंगे । वास्तव में गांधीवाद का दृष्टिकोण किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित न होकर मानव जीवन की सम्पूर्ण इकाई को अपनी परिधि में लेकर चलता है ।

1. सैद्धान्तिक पक्ष

इस पक्ष के अन्तर्गत गांधीवाद का मूलमन्त्र सत्य की महिमा, अहिंसा, जगन्नियन्ता में आस्था, कर्मसिद्धान्त का माहात्म्य, युद्धविरोध और मानवता की भावना आदि आते हैं ।

{1} सत्य की महिमा

गांधीजी और सत्य के बीच का सम्बन्ध अवर्णनीय है । वे सत्य की निष्ठा रखने में जीवन की कृतार्थता मानते थे । वे सत्य के ही वक्ता थे, पुजारी थे, सेवक थे और पालन-कर्ता भी थे । अत: वे किसी के सामने पराजित न होते थे । सत्य की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं - "अहिंसा को मैं जितना पहचान सका हूं, उसकी निस्बत मैं सत्य को अधिक पहचानता हूं, ऐसा मेरा ख्याल है । और यदि मैं सत्य को छोड दूं तो अहिंसा की बडी उलझने मैं कभी न सुलझा सकूंगा[1] ।" यही कारण है कि उन्होंने सत्य को अहिंसा से भी उच्च स्थान दिया है । वे स्वयं कहते हैं, "सत्य में सब बातों का समावेश हो जाता है । सत्य में प्रेम मिलता है । सत्य में मृदुता मिलती है । सत्य सदा स्वावलम्बी होता है । और बल तो उसके स्वभाव में ही होता है[2] ।" उन्होंने सर्वव्यापक रूप में सत्य का साक्षात्कार किया है । गांधीजी से प्रेरणा पाकर द्विवेदीयुगीन कवियों ने सत्य की महिमा पर बल दिया है । उनके काव्यों में इसी आदर्श का प्रतिफलन मिलता है ।

---

1. आत्मकथा, पृ.506
2. यंग इण्डिया तथा हिन्दी नवजीवन दिनांक 14.8.24

द्विवेदीयुगीन कवियों में मैथिलीशरणगुप्त, सियाराम शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों ने सत्य तत्व का विवेचन अपने काव्यों में किया है । गुप्तजी सत्य को सभी धर्मों का आधार मानते हैं । संसार के अस्तित्व केलिए सत्य को बडा आवश्यक मानते हैं । उनके मत में सत्य ही सब कुछ है । "साकेत" में राजा दशरथ को उन्होंने सत्य के पुजारी के रूप में चित्रित किया है । दशरथ का कहना है -

"सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार,
राज्य ही नहीं, प्राण-परिवार ।
सत्य सकता हूँ सब वार ।।"[1]

"जयभारत" के युधिष्ठिर का सत्य पर बडा विश्वास है । वह स्वयं कहता है कि उसमें सरल सत्य वर्तमान है, कला नहीं -

"अब मुझ में सरल सत्य, कला नहीं है ।

अनृत लगता है मुझे जीना जगत में,
मैं समाना चाहता हूँ शुद्ध सत में ।"[2]

---

1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, द्वितीय सर्ग, पृ.64
2. जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.275

उनका "अजित" सत्य का आश्रय लेकर भव के कल्याणार्थ चल पड़ता है[1]।

इसी भाव का समर्थन गयाप्रसादशुक्ल सनेही के त्रिशूल में इस प्रकार मिलता है -

"सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है,
सत्य सत्य है, सत्य नित्य है, अचल अटल है[2]।

सियारामशरण गुप्तजी अपने पाथेय में सत्य को गांधीजी के बताये हुए आदर्श के रूप में महान मानते हैं। गांधीजी का सत्य, अहिंसावाला नाश मानव के आपसी प्रेम और अस्तित्व का वे आधार मानते हैं[3]। इससे सत्य का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

रामनरेश त्रिपाठीजी के पथिक का नायक पथिक बड़े ही सत्यव्रती थे। उन्होंने सत्य की महिमा गायी और उस पर अटल रहना अत्यन्त आवश्यक बताया है -

"आत्मा का अपमान न करना, सत्य मार्ग पर चलना।
है वह सत्य, तुम्हें न उचित है सत से कभी विचलना[4]।"

---

1. अजित - मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 121
2. राष्ट्रीय मन्त्र - त्रिशूल, पृ.4
3. पाथेय - सियारामशरण गुप्त, शोभागमन शीर्षक कविता, पृ.97
4. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, चौथा सर्ग, पृ.62

सोहनलाल द्विवेदी ने सत्य की सेवा को ही सत्कर्म बताया है[1] ।

सत्य के पालन से हमेशा कल्याण ही होता है । सत्यमेव जयते" यह उक्ति तो प्रसिद्ध ही है । भगवान सत्य की मूर्ति है । उनका कर्त्तव्य दुष्टों का हनन और शिष्टों का पालन है । अहिंसावादी व्यक्ति में ही सत्य की भावना पनप सकती है । यही गांधीजी का विचार था । इसलिए गांधीवाद के प्रचारक द्विवेदीयुगीन कवियों ने सत्य के साथ साथ अहिंसा का पालन किया है ।

(2) अहिंसा

द्विवेदीयुगीन काव्य में अहिंसा की अपनी निजी विशेषताएँ थी । अहिंसा के चित्रण में ये कवि गांधीवादी विचारधारा से काफी प्रभावित थे । गांधीजी अहिंसा पर ज़ोर देते थे । उनका मूल उद्देश्य भारतीयों से किए जानेवाले पाशविक आचरणों का अन्त करना ही था । वे युद्ध का भी विरोध करते थे और मारक अस्त्रों का नाश करने के पक्ष में थे । उनका यह विचार उनके अहिंसावादी होने का प्रमाण था । गांधीजी की अहिंसा कायिक, वाचिक और साथ ही साथ भौतिक भी थी । यह उनके ही समझौते का साधन थी । यहाँ दिनकरजी के विचार अप्रांसगिक नहीं होंगे । उन्होंने कहा है, "अहिंसा, यह शब्द ही गांधी-धर्म का निचोड है तथा हिंसा से पूरित विश्व में ...

---

1. "सत्य की सेवा हो सत्कर्म,
विश्व में हो मंगल-कल्याण ।" पूजागीत - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.89

यह एक शब्द गांधीजी का जितना व्यापक प्रतिनिधित्व करता है, उतना उनके और सारे उपदेश मिलकर भी नहीं कर पाते।[1]" गांधीजी ही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने अहिंसा में छिपी हुई उस अद्भुत शक्ति को पहचाना, और उसे देश के जन-जन के उर में उत्पन्न करने का महान प्रयास भी किया। उनके अनुसार, "सच्ची अहिंसा भय से नहीं, प्रेम से जन्म लेती है, निस्सहायता से नहीं सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। जिस सहिष्णुता में क्रोध नहीं, द्वेष नहीं और निस्सहायता का भाव है, उसके समक्ष बडी से बडी शक्तियों को भी झुकना ही पडेगा।[2]" गांधीजी को अपने अहिंसा प्रयोग में सफलता मिली थी। द्विवेदीयुगीन कवियों पर इस अहिंसा का खूब प्रभाव पडा है।

इन कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, गोपालशरण सिंह आदि ने अहिंसा सिद्धान्त पर बल देते हुए अपने काव्यों में गांधीजी के विचारों को अभिव्यक्त किया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी के प्रियप्रवास और वैदेही वनवास में अहिंसा का काफी समर्थन किया गया है। यहाँ कृष्ण और राम रक्तपात के विरुद्ध स्वर उठाते हैं और इस पृथ्वी पर प्रसन्न वातावरण की आकांक्षा करते हैं।[3]

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ.635
2. वही, पृ.636
3. "अत: है वांछनीय यह नीति।
   हो यथाशक्ति न शोणित पात।।
   सामने रहे दृष्टि के सम।
   रहे महि-वातावरण प्रसन्न। वैदेही वनवास -
   - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, तृतीय सर्ग, पृ.42

प्रियप्रवास में व्योम नामक बालिश के अत्याचारों से दु:खी होकर श्रीकृष्ण ने हिंसा का विरोध किया । व्योम पर कृष्ण की विजय, हिंसा पर अहिंसा की विजय है[1] ।

मैथिलीशरणगुप्त के काव्य में भी अहिंसा की चर्चा खूब मिलती है । उनके अनुसार हिंसा मनुष्य को दानव बनाती है । और इसके विपरीत अहिंसा सर्वत्र ही विजय प्राप्त करती है ।

"हिंसा केवल हिंस्र, घृणा है घृण्य बनाती,
तुम पर के प्रिय, किन्तु न हो अपने घर घाती ।
देखा तुमने अभी अहिंसा जीत चुकी है[2] ।"

हिंसा से सुख शांति भी हो जाती है । शस्त्र लालसा रक्त ही पी सकती है और मारकाट के बीच शांति कायम नहीं हो सकती[3] ।

"स्वदेश - संगीत" में गुप्तजी ने अहिंसा को महत्त्व देते हुए कहा है कि शस्त्र का प्रयोग किसी को मारने केलिए नहीं किया जाना चाहिए -

"हमारी असि न रुधिर रत हो
न कोई कभी हताहत हो[4] ।"

1· प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, त्रयोदश सर्ग, पृ· 183
2· राजा - प्रजा - मैथिलीशरण गुप्त, प्रजा, पृ·33
3· वही, पृ·47
4· स्वदेश संगीत - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सं·पृ·94

"जयभारत" में श्रीकृष्ण अहिंसा की भावना पर बल देते हैं। निरस्त्र होकर भी वे अकेले रहकर युद्ध जीत लेने की बात पर विचार करते दिखाई देते हैं[1]। यहाँ पर गुप्तजी ने अर्जुन को भी अहिंसावादी चित्रित किया है[2]।

हिंसापथ का अनुयायी मारने की लालसा से खुद मर जाता है। द्वापर में कंस द्वारा की गयी बच्चों की हत्या के विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए अहिंसा सिद्धान्त को प्रचरित किया गया है[3]। "अजित" का नायक अजित एक कट्टर अहिंसावादी है[4]। उसका कथन है कि

"स्वयं अहिंसा-धर्म मानता हूँ मैं दादा।
पर होती है एक धर्म की भी मर्यादा[5]।"

कवि नाथूरामशर्मा शंकर जी हिंसा को त्यागने का उपदेश इस प्रकार देते हैं -

"शंकर श्री गोपाल का धार सनातन धर्म।
देश दयानन्दी बने, तज हिंसादि कुकर्म[6]।।"

1· जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·300
2· वही, पृ·262
3· द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·127
4· अजित - मैथिलीशरण गुप्त, पृ· 56
5· वही, पृ·101
6· द्विवेदीयुगीन कविता पर आर्यसमाज का प्रभाव, पृ·189

शंकरजी का "वायाम विजय नामक ग्रन्थ तो अहिंसा की शिक्षा का ज्वलन्त उदाहरण है ।

अहिंसा के पक्ष में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी मांसाहारियों को पशुओं से भी निम्न मानकर उन्हें धिक्कारते हुए अपने रोषपूर्ण हृदयोदगार प्रकट करते हैं[1] । उन्होंने दुर्गन्ध युक्त मलमूत्र खानेवाले पशु-पक्षियों एवं जीवों का मांस खाकर उदरपूर्ति करने को महाघृणित बताया है और अन्त में वे जीवमात्र पर दया रखने की प्रेरणा भी देते हैं[2] ।

अत्याचार से विक्षुब्ध युवक वर्ग को हिंसोन्मुख देखकर पं० रामनरेश त्रिपाठी जी अहिंसा की श्रेष्ठता तथा कल्याण कारिता को समझाते हुए "पथिक" में कहते हैं -

"रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की ।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की[3] ।।

उनका कहना है कि जब किसी के हृदय में क्रोध का उदय होता है तो हिंसा की प्रवृत्ति जागती है और उसकी पाशविक शक्ति बढ जाती है जिसके कारण आत्मिक बल का क्षय हो जाता है ।

1· द्विवेदी - काव्यमाला, पृ·279

2· वही, पृ·281

3· पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, पृ·64

सियारामशरण गुप्त ने उन्मुक्त गीतिनाट्य में द्वितीय विश्वयुद्ध में हुई बम वर्षा के कारण जो मानव-संहार हुआ, उसी से कातर हृदय होकर अहिंसात्मक शस्त्र का समर्थन किया है -

"जानती हूँ निः संशय,
प्रतिपक्षी है घोर रूप में निर्मम निर्दय।
इसका भय क्या ? रक्तपात हम नहीं करेंगे
झेलेंगे सब स्वयं, अहिंसक मरण बनेंगे[1]।"

विनाश और संहार के स्वर धरती को कंपा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में कवि अहिंसा का प्रचार करता है[2]। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के फलस्वरूप हुए हिंसा काण्ड और बर्बरता के तांडव से सियारामशरण गुप्तजी की आत्मा चीत्कार कर उठती है[3]। कट्टर अहिंसावादी कवि हिंसा का पूर्ण विरोध करते हुए हिंसानल को शमित करने का एक मात्र वास्तविक व सच्चा मार्ग अहिंसा को ही मानते हैं। जयहिन्द काव्य की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

"हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल।"
मिला हमें चिर सत्य आज वह नूतन होकर
हिंसा का हो एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर[4]।"

---

1. सियारामशरण गुप्त - उन्मुक्त, पृ.158
2. वही, पृ.163
3. नोआखाली में - सियारामशरण गुप्त, तृ.सं.2014 वि.पृ.46
4. जयहिन्द - सियारामशरण गुप्त, पृ.37

सोहनलाल द्विवेदीजी अहिंसा को सभी धर्मों का मूल धर्म मानते हैं जिसके पालन से सारे विश्व का मंगल एवं कल्याण हो सकता है[1]। अहिंसा का जन्म ही व्यथित मानव को सुख पहुँचाने के हेतु है। "अहिंसा-अवतरण" शीर्षक कविता में अहिंसा के जन्म लेने का कारण बताते हुए कवि उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं[2]। स्वतन्त्रता के अहिंसा संग्राम में गांधीजी जिस प्रकार के नवयुवक चाहते थे उसका आदर्शरूप कवि ने युगाधार में प्रस्तुत किया है[3]।"

"नवीन युग" शीर्षक कविता में ठाकुरगोपालशरण सिंह ने अहिंसा को परम तत्व स्वीकार करते हुए उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया है[4]।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि द्विवेदीयुग के अधिकांश कवियों ने गांधीजी के पदचिह्नों पर चलते हुए अहिंसा की विचारधारा को काफी आगे बढाने का प्रयत्न किया है।

गांधीजी के अनुसार अहिंसा के द्वारा हम ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। जिस व्यक्ति में ईश्वर पर विश्वास रहता है, जो धर्म का पालन करता है ऐसे व्यक्ति में अहिंसा स्वयं उत्पन्न

---

1. पूजागीत - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.89
2. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.104
3. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.45-61
4. हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा - एक समग्र अनुशीलन, पृ.296

होती है । हिंसक के मन में अहिंसा कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती । अहिंसक पर प्रभु की कृपादृष्टि सदा रहती है । वे उसे खूब चाहते हैं, उसकी प्रवृत्तियों को मानते हैं और उसे अपना कर्म करने केलिए बल या शक्ति देते हैं । इसलिए अहिंसा की भावना के साथ साथ व्यक्ति में जगन्नियन्ता पर आस्था भी अत्यन्त आवश्यक है ।

3. जगन्नियन्ता में आस्था

गांधीजी ने जगन्नियन्ता की उपासना पर बहुत अधिक बल दिया है । उनके अनुसार जब तक व्यक्ति बाह्य जगत से नहीं डरता क्योंकि ईश्वर की कृपा तथा अनुग्रह उसे हर प्रकार के भय से बचाता है । ईश्वर-विश्वासी को मृत्यु, धन, रोग और हिंसा का भय नहीं रहता । उसे ऐसी वृत्तियाँ छू तक नहीं सकती । ऐसा व्यक्ति मृत्यु को सहर्षसंतोष स्वीकार करता है, जिससे अन्य साधारण लोग डरते हैं । इसीलिए उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना पर भी बल दिया है । ईश्वर की प्रार्थना पर भी बल दिया है । ईश्वर की प्रार्थना गांधीजी केलिए जीवन की रक्षा करनेवाली थी । प्रार्थना के मूल में ईश्वर-विश्वास और भक्ति रहती है । ईश्वर विश्वासी को विषम परिस्थितियों में भगवान की मदद अवश्य मिलती है । गांधीजी को भी भगवान श्रीरामचन्द्रजी का अनुग्रह सदा रहा था । इसलिए उन्होंने रामनाम को सदा याद करना आवश्यक बताया है । द्विवेदीयुगीन काव्य में भी गांधीजी की ईश्वरोपासना की स्पष्ट झलक मिलती है ।

भारत की दुरवस्था ने द्विवेदीयुगीन कवियों को मानसिक तौर पर काफी पीड़ित किया था । इससे मुक्ति पाने केलिए वे ईश्वर से प्रार्थना करते थे और देश की दशा को सुधारने केलिए उनसे विनय करते थे -

"अब दीनदयाल दया करिये,
सब भाँति दरिद्र दशा हरिये,
अवलम्बन और कहीं इस को,
तजिये हरि हाय नहीं इसको[1] ।"

भारत भारती में गुप्तजी ईश्वर से भारत वर्ष को फिर पुण्य-भूमि बनाने केलिए विनय करते हैं[2] । भगवान श्रीकृष्ण से उनकी विनती है कि आलस्य से अभिभूत भारतवासियों को अपनी बंशी के वाचन द्वारा कर्मयोग सिखाकर सन्मार्ग पर पहुँचने से सहायता दे[3] । गुप्तजी के अजित का नायक अजित भगवान रामचन्द्रजी का अनन्य भक्त था और वह उन्हें अपना रक्षक मानता था[4] ।

सियारामशरण गुप्त और सोहनलाल द्विवेदी जगन्नियन्ता में आस्था रखनेवाले कवि थे । ईश्वर में विश्वास ही उनके जीवन को गीत देता था । सियारामशरण गुप्त जी का

---

1. मंगलघट - मैथिलीशरण गुप्त - स्वर्ग सहोदर शीर्षक कविता, पृ.25
2. भारत भारती - विनय - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.166
3. वही, पृ.167
4. अजित - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.26

विश्वास था कि केवल ईश्वर का विश्वास ही जीवन में विपत्तियों को पार करने में सहायता पहुँचा सकता है[1]। कवि सर्वशक्तिमान एवं विश्वव्यापक ईश्वर की व्याख्या करते हुए उन्हें सब धर्मों का अधिष्ठाता बताते हैं[2]। सियारामशरण गुप्तजी के अनाथ का नायक मोहन बड़ा ईश्वरभक्त था। उसने भगवान का शरण माँगते हुए मुट्ठी भर अन्न देने केलिए प्रार्थना की है[3]।

सोहनलाल द्विवेदी स्वयं ईश्वर में विश्वास रखते थे और पथभ्रष्ट लोगों के कल्याण केलिए भी ईश्वर से प्रार्थना करता है[4]।

रामनरेश त्रिपाठी अपने सारे दुर्गुणों को दूर करने केलिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं -

"हे प्रभो, आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमको कीजिए[5]।"

वे अपने पथिक खण्डकाव्य में प्रकृति सौंदर्य में आमग्न अपने कर्त्तव्य को भूलकर रहनेवाले नायक को ईश्वर के वरदान से अवगत कराकर ही कर्मपथ पर लाते हैं। पथिक को उपदेश देते

---

1. दूर्वादल - सियारामशरण गुप्त, पृ.10
2. आत्मोत्सर्ग - सियारामशरण गुप्त, पृ.28
3. अनाथ - सियारामशरण गुप्त, पृ.8
4. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.224
5. आधुनिक कवि - रामनरेश त्रिपाठी, प्रार्थना, पृ.1

वक्त साधु इस संसार के सभी कर्मों का उत्तरदायी ईश्वर को ही बताते हैं । साधु कहते हैं -

"जगन्नियन्ता की इच्छा से यह संसार बना है ।
उसकी ही क्रीडा का रूपक यह समस्त रचना है[1] ।"

उसी शक्ति से ही इस संसार का संचालन होता है[2] ।

ईश्वर पर अटूट विश्वास रखते हुए दिल खोलकर प्रार्थना करने से सच्चे कर्त्तव्य का बोध होता है । प्रार्थना हमें सत्कर्म का पाठ पढाती है । प्रार्थना करनेवाला दुष्कर्म करने केलिए कदापि तैयार नहीं होता । अगर वह करना चाहता है तो भी कर नहीं सकता क्योंकि प्रार्थना का प्रभाव उस पर इतनी तीव्रता से पडता है कि उसका मन स्वयं उससे हट जाता है । इसीलिए द्विवेदीयुगीन कवियों ने अपने काव्यों में कर्मसिद्धान्त के माहात्म्य पर भी बल दिया है । कर्मसिद्धान्त के अन्तर्गत जैसा कर्म होता है वैसा उसका फल भी । इसलिए द्विवेदीयुगीन कवियों ने सत्कर्म पर बल देते थे ।

(4) कर्म सिद्धान्त का माहात्म्य

गांधीजी के धर्म में कर्म सबसे ऊपर है । उन्होंने देशवासियों को कर्म करने का आदेश दिया । निःस्वार्थ होकर

---

1. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, पद 44, पृ.33
2. वही, पद 42, पृ.33-34

कर्म करना और किसी भी फल की इच्छा न रखना गांधी-नीति का ज्योतिस्तम्भ है । लोकसेवा और लोक-कल्याण को धर्म माननेवाला निरन्तर कर्मरत रहता है । उसे कर्म में ही प्रभु के दर्शन होते हैं । गांधीजी ने स्वयं कर्म को आचरित करके दिखाया । उनके अनुसार देश के नागरिकों में अकर्मण्यता का विचार ही नहीं आना चाहिए । नाशवान शरीर से जितना अधिक कर्म-सम्पादन हो सके उतना ही उचित है । गांधीजी निरन्तर कर्मरत रहते थे । गांधीजी के इस निष्काम कर्म की अभिव्यक्ति द्विवेदी युगीन कवियों की कविताओं में भव्यरूप में अभिव्यक्त है । कहीं कहीं ये प्रकट रूप में मिलती है तो कहीं कहीं इसके केवल संकेत ही मिलते हैं । गुप्तजी के राम, हरिऔधजी के कृष्ण, त्रिपाठीजी के पथिक आदि हमेशा कर्मरत दिखाई देते हैं । हरिऔध जी के कृष्ण का कथन है -

"मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था,
पाता हूँ अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्त्तव्य में[1] ।"

गांधीदर्शन से प्रभावित कवि अपने पात्रों को हमेशा कर्मरत दिखाना ही पसंद करते थे । वैदेही वनवास की सीता राज-नन्दिनी होकर भी लोक-सेविका है और कर्त्तव्य-परायणा भी है[2] । अपना कर्त्तव्य निभाने केलिए वह सब कुछ सहने केलिए तैयार बन जाती है -

---

1. प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, नवम सर्ग, पृ.3
2. वैदेही वनवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, त्रयोदश सर्ग, पृ.164, पद 25

"आप सती हैं कर्त्तव्य परायणा ।
सब सह लेंगी कृति से च्युत होंगी नहीं[1] ।"

मैथिलीशरण गुप्तजी ने कर्त्तव्य पालन पर विशेष ध्यान दिया है । वर्णाश्रम धर्म के प्रसंग में वह जन्म से नहीं बल्कि कर्म से ही व्यक्ति को ब्राह्मण या शूद्र मानते हैं । भारत भारती में उनका कहना है कि

"ब्राह्मण बढ़ावें बोध को, क्षत्रिय बढ़ावे शक्ति को,
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को ।
यों एक मन होकर सभी कर्त्तव्य के पालक बने[2] ।"

प्रस्तुत पंक्तियों में भिन्न भिन्न व्यक्तियों के कर्त्तव्य पर ज़ोर देते हुए गुप्तजी कर्त्तव्य पालन से संसार का कल्याण चाहते हैं । भारत भारती में "कर्म से फल-कामना करना न थे हम जानते[3]" उक्ति द्वारा निष्काम कर्म पर बल देते हैं । आगे वे कहते हैं कि सब लोग कर्त्तव्य के अनुरोध से ही कार्य करते थे[4] ।

हिन्दू में उनका कहना है कि सब लोग जब अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं तब लोक-मंगल की भावना स्वयं आ जाती है[5] ।

---

1. वैदेही वनवास - हरिऔध, पद 62, पृ.170
2. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, भविष्यत खण्ड,पद 73,पृ.153
3. वही, अतीत खण्ड पद 50, पृ.22
4. वही, पद 139, पृ.51
5. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.113

गुप्तजी कर्मफल में विश्वास रखनेवाले थे । उनका कहना है कि कर्त्तव्य विमुख व्यक्ति केलिए भाग्य भी साथ नहीं देता[1] । दु:ख हो अथवा सुख, सभी परिस्थितियों में कर्त्तव्य करना चाहिए[2] । कर्म करनेवालों का भाग्य उदय होता है, अत: स्वार्थ को त्यागकर परोपकार करना चाहिए[3] । निरंतर कर्त्तव्य में रत रहने से ईश्वर की कृपा अवश्य होगी । पत्रावली में प्रतापसिंह की उक्ति है कि कर्त्तव्य पथ से कभी किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होना चाहिए[4] । और "साकेत" में वशिष्ठ की उक्ति है कि कर्त्तव्य का पालन करने में कुयश भी यश हो जाता है[5] । "अनघ" में मघ का कहना है कि वह व्यक्ति कायर है जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता[6] । "मंगलघट" में गुप्तजी का संदेश है कि मनसा वाचा कर्मणा कर्त्तव्य करना चाहिए[7] ।

कर्म के पीछे उसका फल अवश्य रहेगा । गुप्तजी का यही विश्वास था । जयभारत में उनका कहना है कि,

"जो हो, सो हो, करो स्वयं तुम निर्भय निज कर्त्तव्य,
भोगी भद्र यथोचित भव में मिले जहाँ जो भव्य[8] ।"

1· भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पद 20, भविष्यत खण्ड पृ·163

2· वही, पद 132, पृ·185

3· वही, पद 48, पृ·168,

4· पत्रावली - मैथिलीशरण गुप्त, प्रतापसिंह का पत्र, पृ·13

5· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ·258·

6· अनघ - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·100

7· मंगलघट - मैथिलीशरण गुप्त, कर्त्तव्य, पृ·49

8· जय भारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·144

"जयद्रथ-वध" में उनका कहना है कि "होगी सफलता क्यों नहीं, कर्त्तव्य पथ पर दृढ रहो[1]।" जयभारत की भी उक्ति है कि जो कार्यकर्त्ता होता है वही भोक्ता भी होता है, दूसरा नहीं - "जिसके जैसे कार्य पायगा वह फल वैसा[2]।" गुप्तजी गीतावाले निष्काम कर्म पर विश्वास करनेवाले थे। गुप्तजी ने "जयभारत" में कृष्ण की उक्ति में बताया है कि मनुष्य को केवल कर्म करना चाहिए -

"कर्म का ही तुझको अधिकार,
न कर तू फल का सोच विचार[3]।"

कर्त्तव्य पथ पर किसी प्रकार की बाधा नहीं आनी चाहिए। सारे बन्धनों से मुक्त होकर ही हमें कर्त्तव्य पर ध्यान रखना चाहिए। वासनारहित कर्म की अभिव्यक्ति "साकेत" में उर्मिला के कथन में स्पष्टतः मिलती है -

"यह क्या धर्म है ?
कामना को छोड़कर ही कर्म है[4]।"

इस प्रकार गुप्तजी केवल कर्त्तव्य करते रहने केलिए लोगों को प्रेरणा देते रहे हैं -

---

1. जयद्रथ वध - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ.5
2. जयभारत - शान्ति संदेश, पृ.336
3. वही, अर्जुन का मोह, पृ.363
4. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ.31

"कर अपना कर्त्तव्य पूर्ण तू इति
तक अथ से ।"[1]

पं॰ रामनरेश त्रिपाठी इस संसार को ही कर्मभूमि मानते हैं । उनके अनुसार जो कर्म च्युत होते हैं, वे धोखे में पड़ जाते हैं ।[2] ये कर्म को ही जीवन का सब कुछ मानते हैं -

"कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो कर्म
तुम्हारी भाषा ।
हो सकर्म मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की
अभिलाषा ।"[3]

त्रिपाठीजी के अनुसार संसार कर्मस्थल है । यहाँ विपत्तियों का डटकर सामना करना होता है । पथिक में मुनि नायक को कर्मरत बनने का उपदेश देता है[4]। "मिलन" में मुनि नायक को निस्वार्थ कर्म केलिए प्रोत्साहन देता है[5]।

सियारामशरण गुप्त स्वावलम्बन पर बल देते हुए इसी कर्मसिद्धान्त की ओर संकेत करता है[6]। बालकृष्ण शर्मा नवीनजी के अनुसार मनुष्य अपनी असीम कर्मठता से ही अस्तित्व की रक्षा करता है[7]।

---

1. साकेत - द्वादश सर्ग, पृ॰458
2. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, दूसरा सर्ग, पृ॰28
3. वही, पृ॰30
4. वही, पृ॰26
5. मिलन, तीसरा सर्ग, पद 49, पृ॰62
6. दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, प्रथमावृत्ति, पृ॰19
7. हम विषपायी जनम के, पृ॰124

मानव जब ईश्वर में विश्वास रखते हुए सत्य पर डटे रहकर अपने कर्मों का तौर पर पालन जब करता रहता है तो स्वयं ऊपर उठ जाता है और दूसरों को भी ऊपर उठाता है । हरेक व्यक्ति जब कर्त्तव्यपालन में निरत रहता है तो संसार में आपसी प्रेम बढ़ हो जाता है और अपने आप शांति कायम हो जाती है । गांधीजी इसी तत्व को मानते थे । प्रारंभ में वे न्याय केलिए युद्ध करने के पक्ष में थे लेकिन बाद में अहिंसा सिद्धांत पर बल देने के कारण युद्धविरोधी बन गए । वे युद्ध के पक्षपाती थे । लेकिन उनका युद्ध हिंसात्मक न होकर अहिंसात्मक था ।

§5§ युद्ध विरोध

शांति को कायम रखने केलिए गांधीजी युद्ध का विरोध करते थे । लेकिन धर्म की स्थापना केलिए वे युद्ध को आवश्यक मानते थे । उनके मत में धर्मयुद्ध लड़ना अत्यन्त आवश्यक था जो जीवन को मृत्यु पर प्रकाश को अंधकार पर धर्म को अधर्म पर विजय प्राप्त करने की सहायता कर सकता था । गांधीजी के इस सिद्धांत को द्विवेदीयुगीन कवि अक्षरश: मानते थे । वे न्याय केलिए लड़ने के पक्ष में थे -

"न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है[1] ।"

लेकिन इसका आधार धर्म होना चाहिए । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी भी यही विचार रखनेवाले कवि थे ।

----

1. जयद्रथ वध - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ.5

वे दमन नीति के विरुद्ध थे । वैदेही वनवास में श्रीरामचन्द्रजी का कहना है कि

"दमन है मुझे कदापि न इष्ट ।
क्योंकि वह है भय मूलक - नीति ।।"[1]

सौमित्र के द्वारा उपाध्याय जी युद्ध में लहू बहाने केलिए किए गए मारकाट को वृथा कार्य बताते हैं -

"दलन चक्र यदि चलता तो बहता लहू ।
वृथा न जाने कितने कट जाते गले ।"[2]

वे दमन के बदले सामनीति को श्रेयस्कर मानते हैं[3]।

मैथिलीशरण गुप्तजी ने युद्ध को राज्य केलिए घातक बताया है । "पृथ्वीपुत्र में मातृभूमि की उक्ति है कि जो अहिंसा का सर्वथा त्याग कर युद्ध को प्रश्रय देते हैं, उनका राज्य न तो स्थायी रहता है और न ही उनकी कहीं धाक होती है -

"एक के अनन्तर अपेक्षा एक युद्ध की,
देखती मैं आ रही हूँ ज्ञात नहीं कबसे
एक सद्उद्देश्य कह के ही सब जूझे हैं
किन्तु एक इति में जुड़ा है अन्त दूसरा ।

---

1. वैदेही वनवास - पं॰अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध,पृ॰42
2. वही, पृ॰116
3. वही, पंचम सर्ग पद 20, पृ॰58

शाक का नाम रख त्रासक ही होगा तू
भय से जो बाध्य होगे साध्य होगे क्या कभी ।
अनुगत होगे घात करने को पीछे से[1] ।"

"जयभारत" में युधिष्ठिर ने युद्ध करने में कोई भलाई नहीं देखी[2] ।

यहाँ पर श्रीकृष्ण भी युद्ध नहीं चाहते । वे कौरवों और पाण्डवों के बीच की शत्रुता को मिटाने और उनमें मित्रता की स्थापना करना चाहते हैं[3] । "साकेत" में राम-रावण के युद्ध की तैयारी सुनते ही उर्मिला अपना युद्ध-विरोध प्रकट करती है[4] । गुप्तजी युद्ध को पशुत्व के विकास की परिसीमा मानते हैं[5] । उनके मत में युद्ध के आघातों से लोगों को अवगत होना चाहिए । इस जानकारी के अभाव में ही वे परस्पर लड़ने केलिए तैयार रहते हैं । सारे अनर्थ इससे दूर हो जाते हैं -

"युद्ध की अशोभनता जन यदि जान लें,
तो न होगा व्यर्थ यह इतना अनर्थ भी[6] ।"

---

1. पृथ्वीपुत्र - मैथिलीशरण गुप्त
2. जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.156
3. जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.324
4. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ.474
5. युद्ध - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.54
6. वही, पृ.55

युद्ध सदा विनाशकारी होता है । ऐसे युद्ध के कट्टर विरोधी है कवि सियारामशरण गुप्तजी । द्वितीय विश्व युद्ध में हुई बम वर्षा के कारण जो मानव संहार हुआ, उसी से कातर हृदय होकर कवि ने युद्ध के विरोध में "उन्मुक्त" गीति नाट्य की रचना की है । वे अस्त्रों से किए गए युद्ध को आत्मघात मानते हैं

"लगता मुझे तो यह, आत्मघात अपने
आयुधों से करते हमी है स्वयं अपना [1] ।"

"नवीनयुग" शीर्षक कविता में ठाकुर गोपालशरणसिंह ने युद्ध नीति को भयंकर बताते हुए शांति-साधना को श्रेयस्कर घोषित किया है -

"युद्धनीति है परम भयंकर, शांति साधना है श्रेयस्कर,
घोषित है कर रही धरा में, यह विनाश की छाया [2] ।"

विनाश ही विनाश को घोषित करनेवाले युद्ध से सब भयभीत है । उनके लिए तैयारियाँ पूर्ण करने पर भी जनता के मन में व्याकुलता है । इसी व्याकुलता को सोहनलाल द्विवेदी ने अपनी कविता में दिखाया है -

"हम कसे कवच, सज अस्त्र शास्त्र,
व्याकुल हैं रण में जाने को [3] ।"

---

1. उन्मुक्त - सियारामशरण गुप्त, पृ.36
2. हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा, एक समग्र अनुशीलन, डॉ.देवराजशर्मा, पृ.296
3. जयगांधी - सोहनलाल द्विवेदी, राणा प्रताप के प्रति, पृ.34

युद्ध में रक्त बहाने को पशुता कहकर रामनरेश त्रिपाठी ने उसे मन की कायरता बताया है[1]।

युद्ध की विनाशकारी प्रवृत्तियों से द्विवेदीयुगीन कवि सदा विमुख रहे। इससे उनके मन में मानवमात्र के प्रति सहानुभूति का भाव पैदा हुआ। द्विवेदीयुगीन कवि मानववाद के कर्मठ अनुयायी हैं और अपनी रचनाओं में विश्व-प्रेम की व्यापक भावना का सन्देश देते हुए दिखाई देते हैं।

(6) मानवता की भावना

मानवतावाद गांधीवाद का एक अंग है। दूसरे के दुःख में उसे सहायता करना, भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी पिलाना दलितों को ऊपर उठाना, शोषितों को शोषण से मुक्त कराना मुख्य रूप से मानवतावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। गांधीजी ने मानवजीवन की कठिनाइयों का समाधान खोजने का प्रयास किया था। यही उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। द्विवेदीयुगीन कवियों ने गांधीजी के इसी विचार को अपने काव्यों में यथास्थान प्रस्तुत किया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि कवियों में यह प्रवृत्ति खूब दिखाई पड़ती है।

---

1. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, पृ.64

हरिऔध जी की राधा और सीता, गुप्तजी की उर्मिला आदि मानवतावाद के समर्थन केलिए खडी होनेवाले पात्र ही हैं ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के प्रियप्रवास में राधा को लोकसेविका के रूप में चित्रित किया गया है । दाम्पत्य-प्रेम की असफलता से निष्क्रिय न होकर राधा मानव सेवा के प्रति उन्मुख हो जाती है । राधा मानवता में ही विश्वात्मा का रूप देखती है और वे सेवा में परम प्रभु की सर्वोत्तम भक्ति मानती है[1] । इसी प्रकार कृष्ण भी मानव-कल्याण करने में ही सदैव रत रहते हैं । वे "रोगी दुःखी विपत आपत में पडे" की सेवा करते दिखाये गये हैं[2] । वैदेही वनवास की इन पंक्तियों में मानवता की भावनाओं का मार्मिक चित्र देखिए -

"सर्वोत्तम साधन है उर में ।
भव हित पूत-भाव का भरना ।।
स्वाभाविक सुखलिप्साओं को ।
विश्व-प्रेम में परिणत करना[3] ।।"

वैदेही वनवास में गौतम मुनि ने मानवता का समर्थन किया है[4] ।"

---

1. प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सर्ग 16 पद 117
2. वही, सर्ग 10, पद 80
3. वैदेही वनवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ.113
4. वही, अष्टम सर्ग, पृ.97

मैथिलीशरण गुप्तजी की मानवता का मकुटोदाहरण है, साकेत का राम। साकेत में राम ईश्वर के रूप में नहीं मानव के रूप में चित्रित किए गए हैं। गुप्तजी का यह प्रश्न कि "राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?" इस तथ्य की स्वीकृति है। देवत्व का वर्णन न कर वे मानव की देव प्रवृत्तियों को ही विकसित करने के विश्वासी हैं। पंचवटी में उन्होंने कहा था, "मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ[1]। उनके राम स्वर्ग अथवा वैराग्य का संदेश लेकर नहीं आते, वरन् वे इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आते हैं। स्वर्ग का निर्माण व्यक्ति अपनी देव प्रवृत्तियों का विकास कर इस मृत्युलोक ही में कर सकता है -

"भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया[2]।"

गुप्तजी ने भारत-भारती में निर्धन कृषकों की झाँकी प्रस्तुत की है, अपने वर्णनात्मक काव्य "किसान" में वे सामाजिक एवं राजनीतिक अत्याचारों से त्रस्त कृषक-वर्ग का चित्रण करते हैं। काव्य का नायक "कलुआ" शोषक वर्ग के प्रतिनिधि पुलिस, जमींदार और महाजन की निर्दयता एवं अत्याचार का निरंतर लक्ष्य बना रहता है। इस प्रकार कवि ने इन कृषकों की दीन

---

1. पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त, पद्य संख्या 15, पृ 12
2. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ.235

दशा की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर उनके प्रति मानवता की भावना जगाकर सहानुभूति पैदा करवाई है । द्वापर में कवि कहते हैं कि मानव जब सच्चे अर्थों में मानव बन जायगा तब निश्चय ही उसे सुख की उपलब्धि होगी[1] । विश्ववेदना में गुप्तजी भय, संशयमय संघर्ष से युक्त आज के युग में व्यक्ति व्यक्ति का मिलन एवं हर्ष की स्थापना केलिए निरंतर प्रयत्न करते रहे हैं । मानव मानव की प्रतिस्पर्द्धा को दूर करते हुए उनमें बोये हुए विष का नाश करते हुए अविवेकी मनुष्य को सच्चरित्र बनाने केलिए और उनमें एकता का भाव लाने केलिए निस्वार्थता की भावना, अहिंसा, परोपकार आदि गुणों के साथ साथ, आपसी भेदभाव को मिटाने का संदेश देते चलते हैं । विश्वबंधुत्व की कामना एवं सर्वधर्म समन्वय उनके काव्य की प्राणधारा है । यह केवल मानवधर्म के ज़रिये ही संभव है । प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर में स्वर मिलाकर वे कहते हैं -

"सब सुख भोग, सब रोग से रहित हो,
सब शुभ पावें नहो दु:खी कहती कोई भी[2] ।"

"भारत-भारती" में भी इस तत्व पर बल दिया गया है[3]। सर्वभूतहितरत निज धर्म" यही गुप्तजी का विचार था । "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावना को वे अपने काव्य में पुष्टि करते हैं ।

---

1. द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.103
2. युद्ध - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.53
3. भारत - भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.145

हिन्दू, कृणालगीत, विश्ववेदना, साकेत, भारत-भारती सभी काव्यों में आपसी वैर को भूलकर मानवमात्र के प्रति प्रेम करते हुए मानवताधर्म को निभाने का संदेश मिलता है ।

"दैनिकी", दूर्वादल, नकुल, अमृतपुत्र आदि रचनाओं में सियारामशरण गुप्त जी का मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है । अनाथ का नायक मोहन अपनी छाती पर पत्थर रख कर सब कुछ सहता जाता है[1] । "दैनिकी" में कई प्रसंगों में कवि मानवतावादी दृष्टिकोण की झलक स्पष्टत: हमें मिलती है[2] । "दूर्वादल" में भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति हम देख सकते हैं[3] ।

बालकृष्ण शर्मा नवीन के महत् काव्य उर्मिला में मानवीयता का प्रकटीकरण हमें यों मिलता है -

"अपना सर्वस्व लुटाकर/ मानवता के चरणों में
उर्मिला खो गई सहसा/ दु:ख के घन आवरणों में[4] ।"

---

1. अनाथ - सियारामशरण गुप्त, पृ.28
2. दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, पृ.60,51,53,58,37
3. दूर्वादल, सियारामशरण गुप्त, पृ.72
4. उर्मिला - बालकृष्णशर्मा नवीन, चतुर्थ सर्ग, पृ.391

2. व्यावहारिक पक्ष

गाँधीवाद के व्यावाहारिक पक्ष के अन्तर्गत ब्रह्मचर्यव्रत की महत्ता, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, अभय, सत्याग्रह, देशसेवा, राष्ट्रीयक्रान्ति का स्वर, भारत छोडो आन्दोलन आदि आते हैं ।

§1§ ब्रह्मचर्यव्रत की महत्ता-

ब्रह्मचर्य शब्द का वास्तविक अर्थ वह चर्या है जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है । जीवन की सम्यक अभिव्यक्ति केलिए भारतीय संस्कृति में ब्रह्मचर्य को आवश्यक माना है । गाँधीजी के अनुसार इसके द्वारा ही मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति को एकत्रित करता है, जिससे उसमें संकट सहन करने की क्षमता आती है । द्विवेदीयुगीन कवियों ने इस विषय पर अनेक कविताएँ रची जिनमें ब्रह्मचर्य-व्रत पर बल तथा उसके अभाव में अधोगति का निदेश किया है । नाथूराम शंकरशर्मा,अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, सोहनलाल द्विवेदी आदि अपनी कविताओं में ब्रह्मचर्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है ।

श्री॰ नाथूरामशर्मा "शंकर" जी अपनी कविताओं में ब्रह्मचर्यव्रत की महत्ता का प्रबल प्रतिपादन किया है । वे जन्म से मृत्यु तक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाले व्यक्ति को ही

वास्तविक पुरुष मानते हैं तथा उदार ब्रह्मचारियों द्वारा ही समस्त सुधारों की कामना करते हैं -

"रहे जन्म से मृत्यु लों, ब्रह्मचर्यव्रत धार ।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार ।।
बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार ।
शंकर होता है वहाँ, सबका सर्वसुधार ।"[1]

उन्होंने "प्रशस्ति-पंचक" कविता में पाँच बाल-ब्रह्मचारियों, पुरुषोत्तम राम, हनुमान, भीष्म पितामह, शंकराचार्य और दयानन्द के ब्रह्मचर्य-बल की महिमा का काव्य कौशलपूर्ण, सुन्दर, स्वाभाविक और विशद वर्णन प्रस्तुत किया है । कवि "शंकर" ने सबके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित की है[2] ।

इसी प्रकार पाण्डेय लोचनाप्रसाद की "नम्रनिवेदन"[3] तथा कामताप्रसाद गुरु की केशिनी[4] कविताओं में ब्रह्मचर्य का गौरव - गान किया गया है ।

उपर्युक्त कविताओं में कवियों ने जहाँ ब्रह्मचर्य-पालन का इतना महत्व प्रदर्शित किया है, वहाँ मैथिलीशरण गुप्त की

---

1. अनुराग - रत्न, पृ.93
2. शंकर - सर्वस्व, पृ.287
3. पद्य - पुष्पांजलि, पृ.57
4. सरस्वती अगस्त 1912 पृ.416

"ब्रह्मचर्य का अभाव शीर्षक कविता में आज ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण भारत के नष्ट होते हुए गौरव का चित्र है।[1] भारत-भारती में गुप्तजी ब्रह्मत्व और ब्रह्मचर्य के अभाव से ज्ञान, तपोबल आदि से रहित जनता को जीते हुए भी मृत पा रहे हैं।[2] प्राचीनकाल में जो ब्रह्मचारी ब्रह्ममूर्ति माने गये थे और वेदों का पठन-पाठन चलता था आज वह सब कुछ नष्ट हो गया है। जप, तप तथा तेज सब बाहरी रंग ढंग में सीमित रह गया है। गुप्तजी इस अवस्था को दूर करने के पक्ष में है। "स्वदेश-संगीत" में उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन शरीर को नीरोग तथा संयमी बनाए रखने केलिए आवश्यक माना है। आत्म संयम केलिए वह ब्रह्म चर्य का अनुष्ठान अत्यन्त आवश्यक मानते हैं -

"आत्म संयम हेतु है बस ब्रह्मचर्य प्रधान
ब्रह्मचर्य मनोदमन का है प्रथम सोपान[3]।"

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने वैदेही वनवास में वाल्मीकि आश्रम का वर्णन करते हुए ब्रह्मचर्यव्रत पर ज़ोर दिया है।

---

1. "एक वे हैं कर रहे जो अद्भुताविष्कार,
एक हम हैं, खोल बैठे मूर्खता का द्वार।
वीर्य्य-बल सम्पन्न हैं वे हम विपन्न अशक्त ?
भेद हम में और उनमें हो न क्यों फिर व्यक्त ?
{पद्य - प्रबन्ध {प्रथम भाग}, पृ.46
2. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पद 207, पृ.119
3. स्वदेश - संगीत, पृ.41

उनके मत में जहाँ त्याग और संयम रहता है, वहाँ प्रेम अपने आप पनपता रहता है और गहन वन भी उपवन बन जाता है जहाँ रहते हुए काँटे भी प्रसून बन जाते हैं और गरल भी सरस सुधा बन जाता है । वाल्मीकि का आश्रम इसी प्रकार की पुण्यमयी पावनप्रवृत्ति की पूर्ति बन गया था । वहाँ ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान निरन्तर होता रहता था[1] ।

रामचरित उपाध्याय की वृद्धा का विलाप" कविता में प्रकारान्तर से ब्रह्मचर्य के महत्व पर बल दिया गया है । ब्रह्मचर्य के अभाव से उत्पन्न भारतीयों की दयनीय स्थिति पर रोष प्रकट किया गया है ।

ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला ही अपने कर्त्तव्य का दृढतापूर्वक पालन कर सकता है । जिस समय देश में संकट के काले बादल उमड रहे हों, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता हो, उस समय ऐसे ही युवकों की आवश्यकता है जो ब्रह्मचारी हो[2] । सोहनलाल द्विवेदी विश्वास करते हैं कि ब्रह्मचर्यव्रत से तेज स्वास्थ्य एवं बल का वर्द्धन होगा । इस व्रत के पालन से कोई भी व्यक्ति सिर उठाकर आगे बढ सकता है, हृदय निर्मल रहता है और ज्ञान के कारण बुद्धि का विकास होता रहता है । ब्रह्मचारी हमेशा उत्साही रहता है । उसमें साहस, शक्ति और शौर्य संचित रहता है । सच्चे ब्रह्मचारी विलास का विरोध करते रहते हैं । वे अपने गौरव एवं देश के गौरव केलिए कुछ भी

---

1. वैदेही वनवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध,
त्रयोदश सर्ग, पृ.160

2. युगाधार, सोहनलाल द्विवेदी, पृ.44

त्यागने केलिए तैयार रहते हैं । सेवाव्रती ब्रह्मचारी हमेशा दूसरों के संताप दूर करने केलिए ललकते रहते हैं । सत्य का पथ इनकेलिए प्रिय रहता है । अनृत से वे घृणा करते हैं ।[1]

सार्वजनिक तौर पर प्रयत्न करने केलिए ब्रह्मचर्य के व्रत को गान्धीजी ने अनिवार्य बताया और जीवान्त तक वे अटलव्रती रहे -

"होने लगा मान गांधी को,
जब उनका मन हुआ प्रबुद्ध
xx xx xx
ब्रह्मचर्य का आजीवन व्रत,
किया उन्होंने अंगीकार ।[2]"

ब्रह्मचर्यव्रत का ठीक तरह से पालन करनेवाले निडर रहते है ।

अभय

गांधीजी ने कर्त्तव्यबोध, सत्कर्म, ब्रह्मचर्य आदि के साथ साथ निर्भय वाणी एवं क्रिया पर भी बल दिया है । कर्त्तव्य बोध का स्मरण एवं उपदेश सहनशीलता पर आधारित रहना चाहिए ।

1· जयगान्धी - सोहनलाल द्विवेदी, हमको ऐसे युवक चाहिए ।
2· जगदालोक - गोपालशरण सिंह, द्वितीय सर्ग, पृ·38

इसकेलिए व्यक्ति को निर्भय रहने की आवश्यकता है । इसी हालत में सच्चे राष्ट्र का निर्माण होगा । नियति पर विश्वास करके चुपचाप बैठे रहने पर कर्म के अभाव में सब कुछ नष्ट हो जाएगा । असत्य, अन्याय और पक्षपात को दूर करने केलिए एवं सामाजिक बन्धनों और कुरीतियों से लड़ने केलिए हर व्यक्ति में निर्भयता आवश्यक है । द्विवेदीयुगीन कवियों ने स्थान स्थान पर अपने काव्य में इसका विवेचन किया है । मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त, गोपालशरणसिंह आदि ने अपने काव्य में इस तत्व की ओर संकेत किया है । द्वापर में नये युग के निर्माण केलिए लोगों में नई स्फूर्ति उत्पन्न करने केलिए बलराम कहते हैं -

"न्याय-धर्म केलिए लड़ो तुम,
ऋत-हित समझो-बूझो
अनय राज, निर्दय समाज से
निर्भय होकर जूझो[1] ।"

कर्म पथ पर आगे बढ़ने केलिए गुप्तजी निर्भयता को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं । यहाँ पर उन्हें भाग्य या पूर्वजन्म के कर्मों का विश्वास नहीं है । वनयात्रा के प्रसंग में साकेत के राम अपनी निर्भयता इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

---

1. द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 64

"आर्ये, तब भी हमें कौन भय है भला ?
वह मरने भी चला, मारने जो चला ।।"[1]

जिसके मन में निर्भयता रहती है, वह मृत्यु से भी नहीं डरता[2] । जो भी आक्रमण केलिए आता है निर्भय व्यक्ति के सामने उसकी मृत्यु निश्चित है । पुण्य पथ पर चलने केलिए निर्भयता ही व्यक्ति की सहायता करता है।[3] इसलिए अजित में गुप्तजी ईश्वर से निर्भयता के भाव की माँग करते हैं[4] । भय को छोड़ने एवं भगवान के द्वारा दिए हुए अभय को स्वीकारने का संदेश इसमें है[5] । क्योंकि गाँधीजी के द्वारा बताये गये सत्याग्रह के मार्ग पर चलने केलिए निर्भयता का गुण अत्यन्त आवश्यक है । अभय सत्याग्रही का अन्तिम व्रत है । सत्याग्रही, जिसकी वीरता सबसे बड़ा गुण है कभी भयभीत नहीं होता[6] । वह सत्य केलिए निर्भय होकर आगे बढ़ता रहता है और जीवन में सफल हो जाता है -

"यदि होते सत्याग्रही सत्य के
लिए अभय आगे बढ़ते,
तो होता जीवन - जन्म सफल
हम भी सब सुयश शिखर चढ़ते[7] ।"

---

1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ.154
2. जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.296
3. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ.237
4. अजित - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.45
5. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.74
6. बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ.47
7. युगाधार - बेतवा का सत्याग्रह - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.82

सत्याग्रह

अंग्रेज़ी शासन से भारत को मुक्त करने केलिए गांधीजी ने केवल एक रीति को ही सर्वाधिक प्रभावपूर्ण माना था और वह था सत्याग्रह । शारीरिक कष्टों को सहन करते हुए लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना और आत्मा को किसी भी हालत में किसी के सामने झुकने न देना, यही सत्याग्रह का मूल उद्देश्य था । गांधीजी ने सत्याग्रह केलिए चार सोपान निर्धारित किए हैं । जिसमें पहला कदम समझौते का था, दूसरा और तीसरा पंचायत और न्यायालय से सम्बन्धित था, चौथा या अंतिम शारीरिक कष्टों के सहन से था । गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन की संपूर्ण सफलता के उद्देश्य से ही सत्याग्रह को चलाया था । सत्य और अहिंसा इसके मूल में वर्तमान थे । द्विवेदीयुगीन कवियों ने अपने काव्यों में यथास्थान इसका वर्णन किया है । रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसादशुक्ल सनेही, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरणसिंह, माधव शुक्ल, सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों ने असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह को अपने काव्यों में स्थान दिया है ।

भारत की सुप्त जनता को जगाने केलिए गांधीजी के असहयोग आन्दोलन ने संजीवनी का काम किया । नाथूरामशर्मा के शब्दों में -

---

1. गांधीजी का जीवन दर्शन

"जागा क्षुब्ध राष्ट्र-सागर में, असहयोग तूफान,
जनता में जातीय जोश के उठने लगे उफान ।"

उद्बुद्ध जनता ने सत्याग्रह आन्दोलन को अपना धर्म माना और देश के हर एक वीर के मन में सत्याग्रह का शस्त्र काफी प्रभाव उत्पन्न करता गया[2]। त्रिशूल ने सत्याग्रह सम्बन्धी जो गीत लिखे हैं उनमें जनमानस का प्रतिनिधित्व मिलता है । उन्होंने सत्याग्रह को प्रेमास्त्र कहा है जिसमें विरोधियों को भी वश में करने की अपार शक्ति निहित है[3]।

अत्याचारी एवं अन्यायी शासकों के करों में रहनेवाले लौह शस्त्रों का सामना करनेवाले निहत्थे भारतीय सत्याग्रहियों की महान निर्भीकता एवं सफलता का सोत्साहवर्णन मैथिलीशरण गुप्तजी ने "स्वदेश-संगीत" में दिया है -

"अस्थिर किया टोपवालों को गांधी टोपीवालों ने,
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने ।
xx xx xx
यहाँ जमाई है अपनी जड पश्चिम के जिन पौधों ने
असहयोग के फल उपजाये उनकी ऊँची डालीं ने[4]।"

---

1. शंकर सर्वस्व, पृ.234
2. रामचरित उपाध्याय - राष्ट्रभारती, पृ.45
3. राष्ट्रीय सिंहनाद (काव्य संग्रह) प्रथम संस्करण - त्रिशूल, पृ.109
4. स्वदेश - संगीत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.128-131

गुप्तजी ने असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह के महत्व का सुन्दर चित्रण किया है । उनके "अनघ" का नायक मघ सच्चे सत्याग्रही का प्रतिरूप है जो मनुष्यमात्र से घृणा न करके उसे सुधारने का प्रयत्न करता है । मघ में गुप्तजी ने सत्याग्रही के सच्चे धर्म को चित्रित करने का प्रयास किया है । "बकसंहार" में उन्होंने ब्राह्मण के मुँह से अपने धर्म के अनुष्ठान और सबके प्रति न्याय करने की बात कहलाते हुए सबके हितार्थ कार्य करने की तत्परता को व्यक्त किया है । सत्याग्रही धर्म पर अटल रहते हुए आत्मा की उन्नति के लिए देह को तुच्छ मानता है और निरन्तर कर्म का अनुष्ठान करता रहता है। निर्भयता उसका प्रमुख लक्षण है । बकसंहार का ब्राह्मण इसी का प्रतीक है[1] ।

साकेत में वन में जाते हुए राम को रोकने केलिए अयोध्या की जनता जो विनत विद्रोह करती रहती है वह गांधीजी के सत्याग्रह के प्रभाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है[2] । द्वापर, किसान, हिन्दू, जयद्रथ-वध आदि काव्यों में भी प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से सत्याग्रह का समर्थन किया है । अपने उद्बोधनात्मक काव्य हिन्दू में सुप्त भारतीयों को जगाते हुए वे सत्याग्रही की महत्ता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

---

1• बकसंहार - मैथिलीशरण गुप्त, पृ•24

2• साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ•129

"अब भी चेतो, न हो उदास,
चेता रहा तुम्हें इतिहास
बुरी बात की क्या टेक ?
समुचित है सत्याग्रह एक ।[1]"

माधव शुक्ल की असहयोग आन्दोलन एवं सत्याग्रह सम्बन्धी कविताएं भी बहुत लोकप्रिय रही जिनसे स्वतन्त्रता के सैनिकों को बड़ा बल और प्रेरणा मिलती थी । गांधीजी के नेतृत्व में लोग सत्याग्रह की अमोघ शक्ति को पहचान चुके थे । उनकी कविताओं में सत्याग्रह का स्वर इस प्रकार गूंज उठा -

"है शक्ति सत्याग्रह अमोघ, अजेय है अविवाद है ।
इस विश्व में विमुक्त रहा, इसका सदा जयनाद है[2] ।"

जनता में यह विश्वास दृढ होने लगा कि असहयोग के द्वारा ही सब संकटों से मुक्ति मिल सकती है । ठाकुर गोपाल शरणसिंह ने सत्याग्रहियों को सच्चे अनुशासित सेवक और सत्याग्रह को दिव्य प्रयोग माना है[3] । उनके मत में सत्याग्रहियों को किसी भी हालत में शत्रुओं से नतमस्तक नहीं होना चाहिए । संकट को संकट के रूप में कभी नहीं ग्रहण करना चाहिए और जीवन का यह संगीत सदैव गुंजित रहना चाहिए ।

1• हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ•54
2• जागृत भारत - माधव शुक्ल, पृ•8 {प्रथम सं•}
3• जगदालोक - गोपालशरणसिंह, द्वितीय सर्ग, पृ•41

सत्याग्रहियों केलिए गांधीजी का आदेश यही था कि वे वीरतापूर्वक अधरों पर मुस्कान लिए अपने गन्तव्य की ओर बढ़ें। यही बात गांधी-विचारधारा के प्रतिष्ठित कवि श्री. सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में अभिव्यक्त है।[1] सत्याग्रही के व्रत ग्रहण करने के मूल में देशानुराग और स्वातन्त्र्य प्रेम की भावना निहित है। इसी भावना का निरूपण करते हुए वे कहते हैं -

"सत्याग्र ही बने वह जिसका, देश-प्रेम का नाता है।
प्राणों से भी प्यारी जिसको अपनी भारतमाता है।
प्राण जाय, छोडे न प्रण कभी ऐसी टेक निभाना है।
स्वतन्त्रता की रटन अधर में जिसका भाग्य विधाता है।[2]"

गांधीजी का यह सत्याग्रह व्रत अस्तेय के आचरण केलिए मूलत: प्रयुक्त होता था।

अस्तेय, अपरिग्रह और अस्वाद

अस्तेय का अर्थ है परद्रव्य की इच्छा न करना और उसका अपहरण करना। गांधीजी ने अपने व्रत के अन्तर्गत अस्तेय को बडा ही महत्वपूर्ण माना है। गांधीजी ने भारत की राजनीति में अंग्रेज़ों द्वारा लूटी जानेवाली भारतीय संपत्ति की रक्षा को दृष्टि में रखकर ही मूलरूप से अस्तेय का प्रयोग किया था।

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.91-92
2. वही, पृ.55

इस प्रकार गांधीजी की शासन विरुद्ध नीति अस्तेय को प्रमुखता देकर चल रही थी । गांधीजी के इस भाव को द्विवेदीयुगीन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त ने सबसे सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है । उनके उद्‌बोधनात्मक काव्य हिन्दू में अंग्रेज़ों की दुर्नीति के प्रतिकार के रूप में जो उद्‌गार प्रकट किए गए है, उनमें यह भावना भलीभाँति अभिव्यक्त हुई है । अंग्रेज़ों के हाथों भारतीय उनके शासन का मोल देते हुए असल में बिके ही जा रहे थे और भारतीयों उनके जाने बिना ही अंग्रेज़ी सरकार उन्हें लूट रही थी[1] । अंग्रेज़ी सरकार की इसी नीति के प्रति असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ था । प्रयत्नपूर्वक भारतीयों के द्वारा अंग्रेज़ों के प्रति प्रतिकार किया जा रहा था । हिन्दू में गुप्तजी काकहना है -

"जागो, त्यागो मोह-प्रमाद,
लो घर-बाहर के संवाद ।
देकर अन्य राज्य बहु ऋद्धि,
करते हैं अपनों की वृद्धि ।
किन्तु हमारा ही जब ह्रास,
तब क्यों उपजे हमें न त्रास ?
हिन्दूराज्य हरें यह भीति,
समुचित है संरक्षण नीति[2] ।"

---

1. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.81-82
2. वही

साकेत में रावण द्वारा अपहृत सीता की कल्पना भारतलक्ष्मी के रूप में की गई है । राक्षसराज रावण को विदेशी शासन का प्रतीक और सीताजी को भारतमाता का प्रतीक माना गया है । रावण के विरुद्ध राम का युद्ध अस्तेय को ही चित्रित करता है । सत्याग्रही के व्रतों में एक अस्तेय भी है । परधन पर दृष्टि तक डालना चोरी है । गुरुकुल के गुरुओं के द्वारा गुप्तजी ने इसी बात की ओर संकेत कराया है-

"सावधान परधन है पाप,
भिक्षुक न हो तो व्यवसाई,
करो कमाई अपने आप[1] ।"

अस्तेय के साथ साथ गांधीजी ने अपरिग्रह और अस्वाद पर भी बल दिया है । अपरिग्रह और अस्वाद में भोग की अपेक्षा त्याग-प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति और ग्रहण की अपेक्षा दान की महत्ता है । द्विवेदीयुगीन काव्य में इन सब तत्वों का विस्तृत विश्लेषण देखने को मिलता है । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने इन बातों को अपने काव्य में काफी स्थान दिया है । मानव को असल में मानव बजानेवाले गुण त्याग और बलिदान में ही निहित है । किसी भी हालत में धन मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं हैं । हिन्दू में गुप्तजी का कहना है -

---

1. गुरुकुल - मैथिलीशरणगुप्त, पृ.47

"धन है क्या जन से भी श्रेष्ठ ?
मान और मन से भी श्रेष्ठ ?
वह है दान-भोग के योग्य,
बनें न उलटे उसके भोग्य ।"[1]

धन की महत्ता उसी में है जब वह संग्रह मात्र न करते हुए त्यागसमन्वित भोग से युक्त हो । तभी तो व्यक्ति के मनको सन्तोष मिलता है । धन के संग्रह से मन संकुचित हो जाता है जबकि उसके समुचित संभोग से व्यक्ति का गौरव बढ जाता है । थोडे में निर्वाह करते हुए धन कमाने के दुराग्रह को छोड्कर सच्चे मानव बनने की प्रेरणा हिन्दू में दी गई है[2] । "द्वापर" में गुप्तजी धनके संचय के साथ साथ उसे लोगों में बाँट देने की ओर भी संकेत करते हैं जिससे व्यक्ति का मन आनन्द के सागर में लहरा जाता है[3] । गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रही को अर्थ संचय से दूर रहना चाहिए । उनके अनुसार त्याग पर गर्व नहीं करना चाहिए[4] । गुरुकुल में धन की सार्थकता आवश्यकता के अनुसार लोगों में उसे बाँटने में ही है[5]।

देशोद्धार केलिए त्याग अनिवार्य होता है[6] । विषयों की गन्ध को छोड्कर धन और जन से उचित सम्बन्ध जो रखता है वही सच्चा सत्याग्रही है[7] । रामनरेश त्रिपाठी के पथिक का

---

1. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.86
2. वही, पृ.85
3. द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.28
4. वही, पृ.210
5. गुरुकुल -मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 58
6. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.85
7. वही, पृ.141

त्यागमय जीवन अपरिग्रह और अस्वाद के ही नमूने को प्रस्तुत करता है । प्रियप्रवास में कृष्ण का कथन है कि महान कार्य करने केलिए संसार में संग्रह नहीं बल्कि अपरिग्रह की ही आवश्यकता है[1]। वही योगी होता है जो लोक-सेवा केलिए अपने हृदय की सैकडों लालसाओं का दमन करता रहता है[2]।

सेवाभावना

व्यक्तियों से समाज बनता है और समाज से देश बनता है । व्यक्ति की उन्नति ही समाज की उन्नति है और समाज की उन्नति ही देश की उन्नति है । जब हरेक मानव त्यागनिरत होकर दूसरे की सेवा में स्वयं को लगा देता है, तो समस्त देश की उन्नति संभव है । गांधीजी ने देश की उन्नति केलिए सेवा भावना को ही प्रमुख माना है । बलिदान को ही देशसेवा के अन्तर्गत बलदायक माना है । द्विवेदीयुगीन कवियों ने गांधीजी की इसी भावना को अपने काव्य का विषय बताया है । मैथिली शरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि के काव्यों में सेवाभावना का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । गुप्तजी के राजा राम से लेकर किसान कल्लू तक इसी सेवा भावना से प्रेरित है । "साकेत" में राम विवश, विकल, बलहीन, दीन, शापित, तापित लोगों के कल्याण के हेतु संसार में अवतार लेकर आए है[3]। निम्नलिखित शब्दों में उनकी सेवाभावना अभिव्यक्त हुई है -

---

1· प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पद 86, पृ·150
2· वही,
3· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त,पृ234

"सुख देने आया, दुःख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया,
मैं यहाँ एक अवलम्ब छोड़ने आया
xx xx xx
मैं यहाँ जोड़ने नहीं बाँटने आया[1]।"

गुप्तजी का कल्लू कहता है कि

"श्रम ही मिले मुझे तो उससे जनता का
उपकार करूँ[2]।"

गुप्तजी के अजित में आत्मबलिदान की भावना निहित है। गुप्तजी के अजित ईश्वर से यही वर माँगते हैं कि उन्हें आत्मबलिदान का अवसर मिल जाए[3]। गाँधीजी को स्वावलम्बन प्रिय था। गुप्तजी की सीता भी स्वावलम्बन को बड़ा महत्व देती थी। स्वावलम्बन में एक प्रकार की त्याग भावना ही निहित है। "अंचल-पट कटि में खोंस कछौटा मारे" गुप्तजी की सीता जन माता बनने का गर्व करती थी[4]। हिन्दू में गुप्तजी ने जीवन का एक ही लक्ष्य अंकित किया है और वह है सेवाभावना[5]। सेवाव्रती केलिए गुप्तजी के मन में कार्यक्षेत्र की कहीं कमी नहीं है। 'द्वापर के बलराम कर्म के मर्म को समझते हुए सेवाभावना में रत रहे हैं[6]।

---

2. किसान - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.12
3. अजित - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.45
4. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.221
5. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.92
6. द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.52
1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.234

रोगी, दु:खी, विपद, आपदाओं में पडनेवालों की सेवा करना हरिऔध जी का आदर्श था[1]। प्रियप्रवास के कृष्ण के हाथ सदैव इसकेलिए आगे बढते थे। हरिऔधजी के अनुसार निस्वार्थ भाव से सर्वभूतहित रहकर लोकसेवा करना विश्व में व्यक्ति को पूजा का पात्र बना देता है।

"भू में सदा मनुज है बहु-मान पाता।
राज्याधिकार अथवा धन-द्रव्य-द्वारा।
होता परन्तु वह पूजित विश्व में है।
निस्स्वार्थ भूत-हित औ कर लोक सेवा[2]।"

प्रिय-प्रवास में कालीनाग के द्वारा हरिऔधजी ने स्व-जाति एवं निज-देश की दुर्दशा को व्यक्त कर श्रीकृष्ण को उसके उद्धार केलिए अग्रसर किया है। श्रीकृष्ण अपने प्राणों की बाजी लगाने केलिए तत्पर हो जाते हैं तथा कहते हैं -

"अत: करूँगा यह कार्य मैं स्वयं।
स्व हस्त में दुर्लभ प्राण को लिये।
स्व-जाति और जन्म-धरा निमित्त मैं।
न भीत हूँगा विकराल व्याल से[3]।।"

---

1. प्रि यप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पद 87, पृ· सर्ग 12
2. प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पद 90, पृ·168
3. वही, एकादश सर्ग, छन्द 25

उन्होंने देश-हित मूल्य की वैयक्तिक जीवन में अत्यधिक महत्ता भी प्रतिपादन की है । देश-हित के सम्मुख व्यक्ति बडे से बडा त्याग कर सकता है । यहाँ तक कि देश रक्षार्थ अपने प्राणों की भी बलि चढाने में पीछे नहीं हटता[1] ।

देशसेवा की भावना से परिपूरित देश-प्रेम ही सच्चा प्रेम है । इसकेलिए त्याग अनिवार्य है । त्याग में सेवाभावना निहित है । त्याग की महिमा गाते हुए रामनरेश त्रिपाठी कहते हैं -

"देश-प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित ।
आत्मा के विकास से जिसमें
मनुष्यता होती है विकसित[2] ।"

"पथिक" में देशसेवा की महत्ता पर प्रकाश डालते समय कवि यह कहता है कि जो देश की सेवा में कर्मरत है वह मानापमान और निन्दास्तुति से भी मार्गभ्रष्ट नहीं होता[3] । स्वप्न में सूर्य की महिमा की प्रशंसा के नाते कवि हमें देशसेवा की महत्ता का ज्ञान देता है -

---

1. वैदेही वनवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ.76
2. स्वप्न - रामनरेश त्रिपाठी {स्वदेशप्रेम शीर्षक भाग}
3. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, पद 47, पृ.46

"सेवा है महिमा मनुष्य की, न कि अति
उच्च विचार द्रव्य बल,
मूल हेतु रवि के गौरव का
है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल।[1]"

गांधीवादी आत्मबलिदान की भावना का उल्लेख करते हुए कवि प्रसन्न मुद्रा में मृत्यु का वरण करने का संदेश स्वप्न में देते हैं[2]। देश के कल्याण केलिए सेवाव्रती की आवश्यकता है। भारत को ऐसे ही सेवाव्रती नौजवानों की मांग है -

"सेवाव्रत में जो दीक्षित हों दीन-दु:खी के
दु:ख से कातर,
पर संताप दूर करने को ललक रहा जो जिनका अन्तर
बने देश के हित वैरागी जो अपना घर द्वारा छोड़कर,
हम को ऐसे युवक चाहिए सके देश का संकट हर।[3]"

सोहनलाल द्विवेदीजी की कविताओं में देशप्रेम तथा आत्मसमर्पण की ओजस्वी भावना दिखाई देती है। उनकेलिए सेवाभावना ही जीवन का कर्म और धर्म था।

---

1. स्वप्न - रामनरेश त्रिपाठी, पद 41, पृ.36
2. वही,
3. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.45

"सेवा - कर्म
सेवा - धर्म
सेवाग्राम का यही है रहस्य मर्म[1] ।"

बालकृष्णशर्मा नवीन की कविताओं में भी सेवा भावना की उत्कट अभिलाषा अभिव्यक्त हुई है । उनकेलिए न विषय की चाह है, न रक्तपात की ।

"विश्व-विजय की चाह नहीं थी,
और न रक्त-पिपासा थी,
केवल कुछ सेवा करने की,
उत्कण्ठित अभिलाषा थी[2] ।"

देश सेवा के मार्ग में आगे बढ़ने केलिए लोगों को प्रेरणा देने की आवश्यकता थी । इस उद्बोधन के फलस्वरूप द्विवेदी युगीन कविताओं में क्रान्ति का स्वर गूंजने लगा ।

राष्ट्रीय क्रान्ति का स्वर

गांधीजी ने सत्याग्रह और असहयोग के रूप में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का स्वर उठाया । अहिंसा के माध्यम से उन्होंने जनता के विचारों में परिवर्तन करते हुए संघर्ष और

---

1. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.26
2. उर्मिला - बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ.539

निर्माण को साथ साथ चलाया। अधिकार प्राप्ति उनका लक्ष्य नहीं था। मानव के बीच पारस्परिक सम्बन्ध, शिक्षा, समाज, विश्वव्यापक आर्थिक स्थिति आदि ही गांधीजी की नई क्रान्ति के अंग थे। जनता के कल्याणार्थ जो हलचल उन्होंने मचाई, वह क्रान्ति को लेकर ही शांतिमय थे। इसमें उद्‌बोधन के ज़रिये जागरण का स्वर प्रमुख था। द्विवेदीयुगीन कवियों ने अपने काव्यों में स्थान स्थान पर इस नई क्रान्ति का स्वर प्रस्तुत किया है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, सोहनलाल द्विवेदी, पं॰ रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माधवशुक्ल आदि के काव्यों क्रान्ति का स्वर खूब तरह से गुंजित हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्तजी सम्पूर्ण भारत को जाग उठने का सन्देश देते हुए कहते हैं -

"अरे भारत उठ आँखें खोल
उड़कर यन्त्रों से खगोल में घूम रहा भूगोल,
अवसर तेरेलिए खड़ा है।
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है।
तेरा कर्मक्षेत्र बडा है,
पल - पल है अनमोल।"[1]

---

1. स्वदेश - संगीत चेतन - मैथिलीशरण गुप्त

देश में विप्लववादियों के समान गुप्तजी की रचनाओं में भी क्रान्ति का स्वर विद्यमान है । धरती एवं आकाश को जगा देनेवाली हुंकार कोटि कोटि भारतीयों के मन को स्पर्श करती हुई इन शब्दों में गूंज उठती है -

"धरती, हिलकर नींद भगा दे,
वज्रनाद से व्योम जगा दे ।
देव, और कुछ लाग- लगा दे,
निश्चय करूँ कि भारत हूँ मैं,
हूँ या था, चिन्तारत हूँ मैं[1] ।"

"जयभारत" में युधिष्ठिर कहता है कि अधिकार रक्षा केलिए संघर्ष करने में भय की आवश्यकता नहीं है[2] । "साकेत" के द्वारा कवि देश का मान बढ़ाने केलिए वीरपुत्रों को जागृत करते हैं -

"जागो अपने रामराज्य की आन बढ़ाओ
वीरवंश की बान, देश का मान बढाओ[3] ।"

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी भारतीयों को सचेत होने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं -

---

1. स्वदेश - संगीत - मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सं. 1982, वि. पृ. 59
2. जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ. 311
3. साकेत - द्वादश सर्ग, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 465

"दिवसमणि सा दिखला कर तेज,
सामने के तम को दो टाल ।
सजग हो खोलो आँखें बन्द,
जाग जाओ हे जागृति काल ।"[1]

गयाप्रसादशुक्ल सनेहीजी देश की स्वतन्त्रता केलिए मर मिटनेवाले वीर सेनानी को सन्नद्ध करता है । उन्होंने कर्म की तलवार उठाकर उस पर ज्ञान की शान चढ़ाकर स्वाभिमान के साथ युद्ध में कूद पड़ने के भाव को जागृत किया है[2] ।
सोहनलाल द्विवेदीजी सम्पूर्ण देश को जगाने का उपक्रम करते हुए कहते हैं -

"जाग सोये देश,
आत्महता ! अब न सो तू ।
जागरण के बीज बो तू
वीर का धर वेश
जाग सोये देश[3] ।"

प्रत्येक भारतीय इस पुकार को सुनकर मृत्यु वरण करने केलिए तत्पर है[4] । देशभक्ति की अखंड भावना से प्रेरित होकर रामनरेशत्रिपाठी का क्रान्तिपूर्ण स्वर बहुत प्रभावोत्पादक है । वे क्रान्ति के ज़रिये शान्ति स्थापना की इच्छा प्रकट करते हैं[5] ।

---

1. मर्मस्पर्शी - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ.107
2. राष्ट्रीय मंत्र - गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, पृ.8
3. पूजागीत - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.25
4. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.111
5. मिलन - रामनरेश त्रिपाठी, पृ.46

"पथिक" में नायक नगर-नगर गाँव-गाँव घूमकर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में राजा के विरुद्ध लड़ने केलिए प्रोत्साहन देते हैं[1]।
"मिलन" में शासन की क्रूरता को समाप्त करने केलिए प्रजा राष्ट्रीय क्रान्ति मचाती है[2]।

कविवर बालकृष्णशर्मा नवीन तो नर को जूठे पत्ते चाटते देखकर क्रान्तिकारी बन जाते हैं[3]। मानव की यह दुर्दशा देखकर वे इतने उत्तेजित हो उठते हैं कि सारी दुनिया को तहस-तहस कर डालना चाहते हैं। अपनी मातृभूमि पर अपना सर्वस्व अर्पण करने की उत्कट अभिलाषा करते हुए अपनी ओजमयी वाणी द्वारा माधवशुक्ल जनमानस को जागृत करते हैं[4]।

3. सुधारात्मक पक्ष

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष के अतिरिक्त गाँधीवाद का और एक पक्ष भी रहा जिसे सुधारात्मक पक्ष नाम दिया जा सकता है। समाज सुधार एवं ग्राम सुधार गाँधीजी के प्रमुख लक्ष्य थे। इसकेलिए उन्होंने खूब प्रयत्न भी किया था और लोगों को भी इस ओर प्रेरित किया था। गाँधीवाद के इस सुधारात्मक पक्ष के अन्तर्गत नारी उद्धार तथा नारी का कर्म क्षेत्र, अछूतोद्धार ग्रामोद्धार और बालविवाह, विधवा-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज-प्रथा आदि का विरोध आदि आते हैं।

---

1. पथिक - पद 74 - रामनरेश त्रिपाठी, पृ.47
2. मिलन - पद 31 - रामनरेश त्रिपाठी, पृ.76
3. हम विषपायी जनम के - जूठे पत्ते शीर्षक कविता, पृ.493
4. भारत गीतांजलि - माधव शुक्ल, पृ.34

1. नारी उद्धार तथा नारी का कर्मक्षेत्र

भारतीय समाज के पीड़ित और दलित वर्गों में गांधीजी ने नारी को भी स्थान दिया था। मध्ययुगीन सामन्तवादी संस्कृति के विनाशकारी प्रभाव से वह भी नहीं बच सकी। उसे भोग की भौतिक वस्तुओं में शीर्ष माना गया। इस प्रकार सामाजिक चेतना के निर्माणकारी तत्वों में उसका योग गौण हो गया। आज भी उसकी स्थिति सुधरी नहीं है। स्त्रियों की हीन अवस्था देखकर गान्धीजी अत्यन्त व्यथित थे। उन्होंने स्त्रियों को मानसिक बल धारण करने का आदेश दिया और कहा कि यदि वे अपने आपको निर्बल मानने की प्रवृत्ति का त्याग दें तो उनका उद्धार हो सकता है। गान्धी विचारधारा में नारी उद्धार की भावना का अत्यधिक महत्व है। गांधीजी नारी को अबला न मानकर लोकहित करनेवाली शक्ति के रूप में देखते हैं। वे स्त्रियों में सादगी को महत्व देते थे। सादगी के साथ-साथ आत्मबल और निर्भयता की आवश्यकता पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं। गांधीजी नारी के व्यक्तिगत जीवन में स्वस्थता और सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा के पक्षपाती है। उनकी दृष्टि में इस लक्ष्य को प्राप्त करने केलिए नारी जागरण अत्यन्त आवश्यक है।

नारी का जीवन ही सेवा और त्याग की साकार कल्पना है और इसी कारण वह समाज में गौरव और प्रतिष्ठा की अधिकारिणी है। क्षमा ही उसका सबसे बडा अस्त्र है जिससे इस संग्राम में उसकी विजय निश्चित है। बहुत से लोग सोच

सकते हैं कि अत्याचार का प्रतिकार न करना एक प्रकार से उसे बढ़ावा देना है । पुरुष अपनी त्रुटि कैसे समझे ? गांधीजी का विश्वास है कि अहिंसा की साकार मूर्ति नारी के आत्मबल से एक दिन समाज की आँखें स्वयं खुल जायेंगी । तब वह उसका उचित मूल्यांकन कर सकेगा । द्विवेदीयुगीन कवियों ने नारी के इस स्वरूप का अंकन किया है । उनके काव्य में नारी भारतीय संस्कृति की मूर्ति है । इसलिए उसमें तपस्या, संयम, त्याग एवं आत्मोत्सर्ग की भावनायें कूट-कूटकर भरी है । प्राय: सभी कवियों ने उसके गौरव के प्रतिष्टापन का उल्लेख किया है । पं. श्रीधर पाठक, महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त आदि कवियों ने नारी के इस रूप को अपने काव्य में स्थान दिया ।

पं. श्रीधर पाठक ने भारतीय नारी को पावन-पद से च्युत नहीं होने दिया है । वह उसी महिमामयी और गौरवमयी पद की अधिकारिणी रही है, जिस पर सीता, सावित्री, द्रौपदी आदि आसीन रही थी । वे "आर्यमहिला" कविता में पवित्रता की ज्योति किस प्रकार जागृत करना चाहते हैं, यह निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

"अहो पूज्य भारत महिला गण अहो
आर्यकुल प्यारी,
अहो आर्य गृहलक्ष्मि, सरस्वति, आर्यलोक उजियारी ।
आर्य-जगत में पुन: जननि निज जीवन-ज्योति जगाओ ।
आर्य-हृदय में पुन: आर्यता का शुचि स्रोत बहाओ ।[1] "

---

1. भारत - गीत - श्रीधर पाठक, पृ.160

आचार्य द्विवेदीजी के काव्य में नारी के प्रति असीम श्रद्धा का भाव झलकता है । वे "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" वाली उक्ति को मानकर चलते हैं । सांस्कृतिक नवोत्थान के नारी जागरण से प्रभावित होकर वे तत्कालीन कवियों को नारी प्रधान काव्य लिखने की प्रेरणा देते थे ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी के काव्य में नारी के महान स्वरूप का उद्घाटन हुआ है । उन्होंने नारी के प्रति उच्च भावना के स्वरूप को सम्मुख रखकर ही "रसकलश" में देश-प्रेमिका, जाति-प्रेमिका, जन्म-प्रेमिका, लोकसेविका, धर्म-प्रेमिका इत्यादि नारी के नवीन रूपों की उद्भावना की है[1] । प्रियप्रवास का सप्तदश सर्ग तो नारी के गौरव का ही सर्ग है जिसमें प्राय: नारी के इन सभी रूपों का चित्रण किया गया है । उन्होंने अपने अन्य ग्रंथों में भी इसी प्रकार की नायिकाओं का चित्रण कर नारियों के व्यक्तित्व को उभारकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित कराने की चेष्टा की है । वैदेही वनवास की सीता उस महाकाव्य का केन्द्रबिन्दु है जो लोक कल्याण की पवित्र भावना को लेकर आगे बढ़ती है । लोक कल्याण केलिए वह अपना सुख स्वार्थ सब को त्याग करती है और अन्तत: विश्वप्रेम की पवित्र भूमिका पर पहुँच जाती है[2] । वह आदर्श सेविका है जो आश्रम के पीड़ितों की सहायता करती है । पशु पक्षियों और वृक्षों की देखभाल में उसका अधिक समय व्यतीत होता है ।

1· भारत-गीत - श्रीधर पाठक, पृ·160

2· रसकलश - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ·95-110

महिलाओं के विद्यालय का भी वे केन्द्र थी जो समय समय पर सत् परामर्श और सत्यासत्य का ज्ञान दूसरों को देती है[1]। कवि की धारणानुसार समाज की कल्याणभक्ति नारी है। उनकी आर्य-बाला[2] शीर्षक कविता आदर्श नारी की प्रशस्ति में लिखी गई है। उसमें नारी के नाना रूपों का गुणगान किया गया है।

रामचरित उपाध्याय की स्त्री-रत्न कविता में नारी के जननी जाया तथा वीरांगना रूप के प्रति पुरुषों को कृतज्ञ रहने की प्रेरणा दी गई है।

मैथिलीशरणगुप्तजी ने मुख्य रूप से कवियों द्वारा उपेक्षित नारी को ही अपने काव्य में चित्रित किया है। उनका साकेत इसका ज्वलंत प्रमाण है, जिसमें उपेक्षित उर्मिला का ही गुणगान है। उर्मिला साकेत का केन्द्रवर्ती पात्र है जो नारी की पीड़ित अवस्था के साथ साथ आदर्श नारी की उच्च भावना एवं कर्त्तव्य परायणता का चित्र प्रस्तुत करती है। स्वार्थ की भावना को छोड़कर त्याग की भावना अपनाने का महत्कार्य उर्मिला के द्वारा दिखलाया है। वह कर्त्तव्य निरत एवं निस्वार्थ है। शोचनीय परिस्थिति में कर्त्तव्य भावना से अवगत उर्मिला कहती है -

---

1. सरस्वती - फरवरी 1919, पृ.73

"हे मन, तू प्रिय पथ का विघ्न न बन
आज स्वार्थ है त्यागभरा ।"

यह उर्मिला के चरित्र की महानता को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं ।

"भ्रातृस्नेहसुधाबरसे
भू पर स्वर्ग भाव सरसे ।"

इसी भावना ने उर्मिला को विरहिणी बना दिया था । वह स्वच्छतापूर्वक विरह, काम, मोह आशंका, आलम्बहीनता, एकाकीपन आदि को अपनाती है और चरम त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

गुप्तजी की यशोधरा उच्च लक्ष्य की प्राप्ति केलिए प्रयत्नशील प्रिय का स्मरण करके आत्मगौरव का अनुभव करती है । वह अपने जातीय गौरव और स्वाभिमान को नहीं खोती फिर भी विनय एवं क्षमा की मूर्ति बनकर अपने पति के गौरव में सहयोग देती है जिसे देखकर शुद्धोदन के साथ पाठकों को भी यही कहना पड़ता है कि "गोपाल बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको ।" यशोधरा के आत्मसमर्पण और निस्वार्थ प्रेम को देखकर गुप्तजी यही कहना चाहते हैं -

---

1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त

"दीन हो गोपे सुनो हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया मूर्ति वह मन से, शरीर से[1] ।"

"पंचवटी" और "द्वापर" में आकर गुप्तजी अपनी सहन शक्ति की चरमसीमा पर पहुँची हुई, पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित नारियों की प्रतिक्रिया प्रस्तुत करते हैं । शूर्पणखा पुरुष के प्रति खीझती हुई कहती है -

"नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन,
है नारी को लेकर,
अपनेलिए सभी सुविधाएं,
पहले ही कर बैठे नर[2] ।"

भारत-भारती" में वे स्त्रियों की दयनीय स्थिति का दायित्व पुरुषों पर डालते हैं । उनके मत में जहाँ स्त्रियों की उपेक्षा होती है वहाँ से सारी सिद्धियाँ दूर हो जाती हैं । जहाँ उनका आदर होता है वहाँ सम्पत्ति लहराती रहती है ।

पुरुष नारी के त्याग और बलिदान पर ध्यान न देकर ,उसे केवल भोग का साधन मानकर उसका अपमान करने से भी नहीं चूकता तो ऐसे पुरुषों के चंगुल से नारी का उद्धार अत्यन्त आवश्यक है । सियारामशरण गुप्तजी ने कहा है -

---

1· यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त
2· पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त

"नारी दल की पुण्य प्रतिष्ठा छल बलपूर्वक,
खल दुःशासन के अशोक वन में है अब तक।
करना है उद्धार वहाँ से उस विकला का।"[1]

2. विवाह की समस्या

द्विवेदीयुगीन कवियों ने समाज में नारी की पीड़ित अवस्था के प्रति जागरण का स्वर उठाया जिसके फलस्वरूप नारी से सम्बन्धित विवाह के क्षेत्र में भी कई सुधारात्मक विचार प्रस्तुत किए गए है। दहेज प्रथा, बाल विवाह और अनमेल विवाह का उन्मूलन विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री शिक्षा का समर्थन आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

विवाह एक पुनीत बंधन है और पति-पत्नि इस बंधन में जन्मभर साथ रहते हैं। ऐसे पवित्र बंधन में कन्या के विक्रय के रूप में चलती हुई समाज की वणिक वृत्ति पर द्विवेदीयुगीन कवियों ने विरोध प्रकट किए हैं। गांधीजी ने समाज से दहेज प्रथा के समूल नाश पर बल दिए है। "भारत-भारती" में गुप्तजी ने समाज की इस प्रकार की कुप्रथा को फटकार सुनाई है -

"बिकता कहीं वर है यहाँ बिकती तथा कन्या कहीं,
क्या अर्थ के आगे हमें अभीष्ट आत्मा भी नहीं।"[2]

---

1. नकुल - सियारामशरण गुप्त, पृ.58
2. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.140

सियारामशरण गुप्त इसी प्रथा पर इस प्रकार व्यंग्य करते हैं -

"वय से भी है समृद्ध,
जान पड़ता है वह मेरे पिता से भी वृद्ध ।
करके दहेज का पिनाक भंग,
मेरी जानकी का वर होगा वह एक संग ।[1]"

नाथूरामशर्मा "शंकर" ने "अन्धेरखाता[2]" नामक कविता में नाक न कटने के बहाने विवाह में धन की धूलि उड़ाने को बड़ी ही व्यंग्यात्मक भाषा में चित्रित किया है । उस समय समाज में ठहरौनी" प्रथा के प्रचलित होने से भारतीय नारी का महान अहित हो रहा था । विवाह के अवसर पर मोल-ताल नहीं होना चाहिए । इस आवश्यकता पर आचार्य द्विवेदीजी ने अपनी कविता में लिखा है[3] ।"

"सनेही" ने "दहेज" कविता में इस प्रथा की भर्त्सना इस प्रकार की है -

"करते हुए कुकृत्य नहीं जी में शरमाते ।
हो जो पुत्र विवाह, हजारों ही ठहराते[4] ।।"

1• आदर्श - सियारामशरण गुप्त, पृ•44
2• शंकर - सर्वस्व, पृ•167
3• सरस्वती - नवंबर 1906, पृ•438
4• काव्य वाटिका, पृ•216

उनका मत है कि जब बाँस बन में आग लगाते हैं, तो अपना ही नाश पहले करते हैं । वे "दहेज की कुप्रथा" कविता में लिखते हैं कि वह प्रथा भी तो वंश में लगी हुई आग है, जिसमें तपकर हम होली मनाते हैं[1] ।

गोपालशरणसिंह की रचनाओं में दहेज प्रथा का डटकर विरोध किया गया है । "दहेज की कुप्रथा" एक दीर्घकाय कविता में इन्होंने बताया है कि इस कुप्रथा ने न जाने कितने परिवारों और कितनी कन्याओं का जीवन नष्ट कर दिया । इस कुरीति को दूर किए बिना भारतीय नारी की उन्नति असम्भव प्रतीत होती है[2] -

"भगवान हो उत्थान हिन्दू जाति का कैसे भला ?
नित यह कुरीति दहेज वाली घोंटती उसका गला ।
अगणित कुटुम्बों का किया इस राक्षसी ने नाश है ।
तो भी मुझे न अभी अहो ! इसकी रुधिर की प्यास है ।"

इसी कविता में आगे कवि लिखता है कि यदि कन्या का पिता सर्वस्व दे दे, यहाँ तक कि बाल-बच्चों सहित नंगा हो जाये, तो भी वर का पिता उसका घर लूटने से नहीं चूकता ।

---

1. सरस्वती - अगस्त 1914, पृ.462
2. वही, पृ.329

बालविवाह से अनेक हानियाँ होती है । इससे मानविकगुणों का नाश भी होता है । समाज में अनिष्ट उत्पन्न करनेवाली इस प्रथा से सर्वथा बचे रहना अत्यन्त आवश्यक है । भारत में जितनी सामाजिक कुरीतियाँ और कुसंस्कार फैले हुए हैं उन सबकी जड कम आयु का विवाह है । इस बाल विवाह की कुरीति से पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक सताई जाती है । अल्पायु में विवाह हो जाने से कम आयुवाली सहस्रों विधवाओं को दुःख की आहें भरते हुए, अनेक कष्टों और दुःखों को सहन करना पडता है । इस कुरीति के कारण वे अर्द्धशिक्षित रह जाती हैं । निर्बल और रोगी सन्तानों की वृद्धि तथा अल्पायु में ही मृत्यु का शिकार होना भी इसी कुरीति के अन्य दुष्परिणाम है । गाँधीजी बाल-विवाह का सदैव विरोधी रहे हैं । उनकी दृष्टि में विवाह के समय युवक 25 वर्ष और युवती 16 वर्ष से कम आयु की न होनी चाहिए । द्विवेदीयुग की कविता में इस कुरीति से नाना दोषों के फैलने का यथार्थ चित्रण हुआ है तथा इसे शीघ्रातिशीघ्र त्यागने को कहा गया है ।

नाथूरामशर्मा "शंकर" की "भारत की भूलें"[1] दिवाली नहीं दिवाला है[2] "भारत माता का निरीक्षण[3] आदि कविताओं में बाल विवाह से आयु, बल, वीर्य, तेज, ओज एवं ब्रह्मचर्य की क्षीणता का बडी व्यंग्यपूर्ण भाषा में वर्णन मिलता है । कवि "शंकर" बालविवाह से कितने क्रुद्ध हैं, यह मेरा महत्व शीर्षक कविता में द्रष्टव्य है -

---

1. अनुराग - रत्न, पृ.213
2. वही, पृ.304
3. शंकर सर्वस्व, पृ.235

"बाल-विवाह विशाल, जाल रच पाप कमाया ।
ब्रह्मचर्य-व्रत काल, वृथा विपरीत गमाया ।
अबला ने चुपचाप उठाय पछाडा मुझको ।
बेटा जनकर बाप, बनाया बिगाडा मुझको ।"[1]

इनके निम्नलिखित गीत में भी बाल-विवाह का यथार्थ चित्रण और कटु सत्य कथन है -

"विषधारी बाल विवाह, डस गयो भारत को ।
सात साल की वरनी वारी, अठ बरसो वर निपट
अनारी ।
इनहूँ ते लघु और घनेरे, घर घर धरनी नाह ।"[2]

श्रीधर पाठकजी "दुःखी बाल विधवाओं के गति पर खेद प्रकट करते हुए उनके नारकीय जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हैं -

"जिन्हें जगत की सब बातों से आन है
दुःख, सुख, मरना, जीना एक समान है,
जिनकी जीते जी दी गई तिलांजलि ।
उनकी कुछ हो दशा किसी को क्या पडी ।"[3]

---

1. अनुराग - रत्न, पृ258
2. शंकर - सर्वस्व, पृ.67
3. पुष्पकरिणी - हेमन्त, पृ.70, प्रथमावृत्ति

बाल-बालिकाओं की शिक्षा दीक्षा की व्यवस्था किये बिना ही उनको विवाह सूत्र में बाँध देना कहाँ की बुद्धिमत्ता और न्याय है, इस पर आचार्य द्विवेदीजी ने "कान्यकुब्ज-अबला-विलाप" कविता में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं -

"कभी-कभी गुड़िया सी बचपन में ही ब्याही जाती हैं,
जिसके कारण ही अति दुःसह दुःख जन्म भर पाती हैं।
प्यारे पिता, बन्धुवर, तुम कब भला होश में आवोगे।
कब हम दुःखी दीन अबलाओं पर तुम दया दिखाओगे।[1]"

मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती की सन्तान शीर्षक में उन माता-पिता को आड़े हाथों लेते हैं जो गार्हस्थ्य-सुख को शीघ्र पाने केलिए अल्पायु में ही सन्तान का विवाह कर देते हैं। वे उनके इस वात्सल्य को वैर की संज्ञा देते हैं।[2]

लोचनाप्रसाद पाण्डेय "प्रार्थना" कविता में "ब्रह्मचर्याश्रम जो वेदाध्ययन तथा वीर्य रक्षा का समय होता है, माता-पिता द्वारा सुत-सुता का गुड़ियों की भाँति विवाह कर देना ही दाम्पत्य-सुख के अभाव का प्रमुख कारण मानते हैं। वे हमारा अधःपतन" कविता में बाल-विवाह से उत्पन्न हानियों का वर्णन इस प्रकार करते हैं -

---

1. सरस्वती सितम्बर 1906, पृ.354
2. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.145

"कैसी निःसक्कारी प्रचलित हम में, बाल ब्याह प्रथा है,
हा ! हा ! सर्वस्वहारी प्रतिफल, जिसको देख होती
व्यथा है ।
क्षीणायु प्राण-रक व्यथित कर हमें रोग से फाँस सर्व,
खाया सारे गुणों को गिन गिन इसने तोड के आर्य गर्व ।[1]"

इन्होंने "भारत की होली" कविता में तो इस कुप्रथा का ऐसा यथार्थ एवं प्रभावशाली वर्णन किया है जिससे सहृदय पाठक इसे त्यागने पर अवश्य विवश हो जाता है[2] ।

अनमेल विवाह जहाँ बाल कन्या का वृद्ध व्यक्ति के साथ विवाह संपन्न होता है, शीघ्र वैधव्य का कारण बन जाता है । गाँधीजी ने विवाह काल में वर-वधू की आनुपातिक आयु तथा समान गुण कर्म और योग्यता आवश्यक मानते थे । उन्होंने इससे इतर अर्थात् कुपुतों से विवाह अथवा वृद्ध-विवाह आदि का खंडन करते थे । वस्तुतः युवती कन्या का वृद्ध व्यक्ति से विवाह करना मानो किसी कुसुम कली को बन्दर के हाथ देना या किसी कोमल लता का पाषाण से प्रेमालिंगन कराना है । विवाह दो हृदयों के परस्पर मिलन का नाम है परन्तु अनमेल विवाह में यह संभव नहीं हो सकता । द्विवेदीयुगीन कवियों ने इस विषय पर अनेक व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी है, जिनको पढकर प्रत्येक सहृदय व्यक्ति इस कुरीति से खीझ उठता है ।

---

1. पद्य - पुष्पांजलि, पृ.17
2. वही, पृ.37

नाथूरामशर्मा शंकर ने इस कुरीति के दोषों पर बड़ी व्यंग्य-वर्षा की है तथा इसे त्यागने का परामर्श दिया है। "कजली कलाप" कविता में कवि ऐसे अनमेल विवाह करनेवालों को दुत्कारता हुआ लिखता है -

"अठबरसी बरनी ने पाये, सठबरसे भरतार।
इस विवाह से पड़े न दूर, दूर छी छी की बौछार।"[1]

उनकी "दिवाली नहीं दिवाला है"[2] कविता में केश-कल्प कर वृद्धों का बालिकाओं से विवाह करके तरह तरह के पाप तथा अत्याचार करने का वर्णन किया गया है, तो "बिटिया विलाप"[3] में एक नववधू अपने वृद्ध पति महोदय के विषय में अपनी माँ से पूछती है कि "यह मेरा पति है अथवा तुम्हारा ताऊ?[4] इस व्यंग्य को पढ़कर पाठक एक बार तिलमिला उठता है और समाज को कोसने लगता है। "वायस-विजय" नामक काव्य में भी कवि तीसरी बार विवाह करनेवाले महाजन की कथा[5] द्वारा अनमेल विवाह का स्पष्टतः निषेध ही दिखलाता है। "भारत की भूलें"[6] कविता में कवि वृद्ध-विवाह करनेवालों को कोसता हुआ इस कुप्रथा को त्यागने को कहता है। "मेरा मनोराज्य" कविता में तो कवि कुमारियों को

---

1. सरस्वती - अगस्त 1907, पृ.324
2. अनुराग - रत्न, पृ.304
3. शंकर सर्वस्व, पृ.473
4. वायस - विजय, पृ.16-17
5. अनुराग - रत्न, पृ.218
6. वही,

अपनी इच्छानुसार विवाह करने तथा वृद्धों के हाथ न बिकने की अनुमति देकर अपना मन्तव्य स्पष्ट कर देता है -

"करे कुमारी जिसकी चाह, रचे उसी के साथ विवाह,
बँधे न बारे वर के साथ, बिके न बूढे नर के हाथ।[1]"

हरिऔध ने अपने दुखडे कविता में एक ओर कुपूत लडकों से लडकियों का विवाह करनेवाले के ऊपर कलंक का टीका लगाया है तथा दूसरी ओर युवतियों का बूढों के साथ विवाह करनेवालों को कठोर हृदय, अधम व्यक्ति माना है।

मैथिलीशरण गुप्तजी का मत है कि इन अनमेल विवाहों से विधवाओं की संख्याओं में वृद्धि हो रही है तथा गृहदाह हो रहे हैं। वे इस प्रकार के बेजोड विवाह जो किसी के घर को जलाने में अत्यन्त समर्थ होते हैं, उनका विरोध करते हैं।[2]

भारत-भारती के वर्तमान खण्ड में बेजोड विवाह का यथार्थ चित्रण करते हुए वे लिखते हैं -

"प्रतिवर्ष विधवा-वृन्द की संख्या निरन्तर बढ रही,
रोता कभी आकाश है फटती कभी हिलकर मही।
हा! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को?
फिर भी नहीं हम छोडते हैं, बाल्य-वृद्ध विवाह को।[3]"

---

1. अनुराग - रत्न, पृ.270
2. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.64
3. भारत - भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.146

"पंचवटी" में भी बेमेल या बहु-विवाह पर लक्ष्मण के द्वारा गुप्तजी ने विरोध जतलाया है ।

उपदेश काव्यों में "मीर" के "बूढे का ब्याह" का अत्यधिक प्रचलन है । इसमें धनीराम नामक एक व्यक्ति ने वृद्धावस्था में एक बालिका से विवाह किया, जिसका दुःखद फल बहुत ही सरल परन्तु प्रभावशाली शब्दों में चित्रित किया गया है । कवि का वक्तव्य है "देशोन्नति के अनेक बाधक कारणों में से एक कारण अनमेल-विवाह की बुरी चाल भी है । अनेक अनुचित विवाहों में से बाल विवाह और वृद्ध-विवाह प्रमुख हैं, जिनसे सामाजिक बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं । भावी सन्तानों का या तो अभाव हो जाता है, अथवा भार रूप सन्तान उत्पन्न होती है । इसी दोष पर दृष्टि रखकर यह छोटी सी पुस्तक लिखी गई है[1] ।

दहेज-प्रथा, बालविवाह, अनमेल विवाह आदि के फल-स्वरूप समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ती जाती है । गांधीजी विधवा-विवाह के पोषक तथा प्रचारक रहे हैं । द्विवेदीयुगीन कवि भी विधवा-विवाह का समर्थन करते रहे हैं । नाथूरामशंकर शर्मा की रचनाओं में विधवा-विवाह का प्रबल समर्थन मिलता है । उनकी अनेक कविताओं में विधवाओं के पुनर्विवाह न होने से उत्पन्न गर्भपात और भ्रूणहत्या आदि दुष्कर्मों से घर की मानहानि की ओर संकेत तथा विधवाओं के

---

1. बूढे का ब्याह - मीर निवेदन ।

उद्धार करने की प्रेरणा मिलती है[1]। साथ ही उन्हें धैर्य धारण कर पुनर्विवाह करने को प्रेरित किया जाता है। शंकरजी के 'गर्भ-रंडा रहस्य' नामक काव्य में विधवाओं की बुरी स्थिति पर व्यंग्य किया है।

द्विवेदीयुगीन कवियों में श्रीधर पाठक अधिकतर विधवा-समस्या पर अपने विचार प्रकट करते हैं। विधवाओं के प्रति इन्हें अत्यधिक सहानुभूति है तथा इनकी रचनाओं में उनकी कारुणिक अवस्था का हृदयद्रावक चित्रण प्राप्त होता है। अबलाओं को तोते की भाँति पिंजरबद्ध रखने के ये घोर विरोधी हैं। हेमंत कविता में ऋतु की शोभा का वर्णन करते-करते ये विधवाओं की दयनीय स्थिति का चित्रण करने लगते हैं। कवि भगवान से बाल-विधवाओं पर दयालु होने की प्रार्थना करता है -

"प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुग जोर।
दीनबंधु सुदृष्टि कीजे बाल-विधवा-ओर[2]।"

पाठकजी सामाजिक अधःपतन का कारण विधवाओं का शाप मानते हैं -

"बाल-विधवा-शाप-बस यह भूमि पातक मई।
होत दुःख अपार सजनी निरखि जग निठुरई[3]।"

1· अनुराग - रत्न, पृ·3,113,156,206,313

2· श्रीधर पाठक - मनोविनोद, पृ·76

3· वही, पृ·170

आचार्य द्विवेदी ने बाल विधवा विलाप कविता में शोकार्त बाल-विधवाओं की दयनीय दशा से अभिभूत होकर हिन्दू धर्म की कठोर रूढ़ियों के विरुद्ध लेखनी चलाई और विधवा-विवाह को धर्म संगत बतलाया[1]।"

हरिऔधजी बेबायें कविता में विधवाओं की अधिकता का कारण हमारे बंधनों को मानते हुए लिखते हैं -

"मर्द चाहे माल चाबा ही करें औरतें पीती रहेंगी
माँड ही ।
क्यों न रहुए ब्याह कर लें बीबियों पर
रहेंगी राँड सब दिन राँड ही[2]।

हमारा अधःपतन कविता में लोचनप्रसाद ने अल्पवयस्का ललनाओं द्वारा कठोर वैधव्य पीड़ा सहन करना, गुप्त रूप से भ्रूणहत्या करना आदि अत्याचारों को देखकर भी इस कुरीति को न त्यागने पर आश्चर्य प्रकट किया है[3]।

समाज के इस घोर पतन का कारण अन्धविश्वास और अशिक्षा है ।

---

1. द्विवेदी - काव्यमाला, पृ.210
2. सरस्वती - अक्तूबर 1920, पृ.178
3. पद्य - पुष्पांजलि, पृ.17

नाथूरामशर्मा शंकर की कविताओं में स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन किया गया है । जब भारतीय नारी का अस्तित्व देश और समाज केलिएइतना गरिमामय और महिमामय है, तब क्या उसे यों ही सड़ने दिया जाय, क्यों न मानसिक विकास केलिए उसे सुरक्षित बनाया जाय । इस सम्बन्ध में महाकवि शंकर प्रचण्ड प्रतिज्ञा कविता में कैसे विश्वस्त दिखाई पड़ते हैं -

"सुशीला बालिकाओं को लिखावेंगे-पढ़ावेंगे ।
न कोरी कर्कशाओं को वृथा सोना गढ़ावेंगे ।
प्रवीणा को प्रतिष्ठा के महाचल पै चढ़ावेंगे
सती के सत्य की शोभा प्रशंसा से बढ़ावेंगे ।[1]"

द्विवेदीयुग के प्रवर्तक आचार्य द्विवेदी ने महिला - परिषद् के गीत में स्त्रियों के अज्ञान की ओर इस प्रकार संकेत किया है -

"पढ़ती थीं वेद तक जहाँ महिला सदैव ही
नारी-समूह है वहीं अज्ञान हमारा ।[2]"

उन्होंने कान्यकुब्ज अबला विलाप[3] कविता में एक ओर स्त्रियों को अशिक्षित रखनेवालों को इस प्रकार लज्जा के मारे डूब मरने को कहा है -

---

1. शंकर - सर्वस्व, पृ.87
2. डॉ.लक्ष्मीनारायण गुप्त हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन, पृ.383
3. सरस्वती सितम्बर 1906, पृ.354

"पर हम जो घर में ही रहतीं, जिनसे सब सुख पाते हो,
उन्हें मूर्ख रखने में क्यों तुम, जरा नहीं शरमाते हो ।"[1]

तो दूसरी ओर वे उन स्वच्छ बुद्धिवालों पर बलिहारी जाते हैं, जो विद्या को पुरुषों के लिए तो अमृत के समान मंगलकारी परन्तु स्त्रियों केलिए विषम-विष के समान जानते हैं ।

यदि रामचरित उपाध्याय ने "हमीं हम"[2] कविता में स्त्रियों के शिक्षित होने पर परदा-सिस्टम दूर होने की बात कही है तो पार्वती देवी ने "काव्य-कुसुमांजलि"[3] कविता में स्त्री-शिक्षा विस्तार के बिना देशोद्धार असंभव होने पर विचार करने की विनती की है ।

मैथिलीशरण गुप्त का मत है कि आज के पुरुषों ने ही नारियों को अशिक्षित अपाहिज और पंगु बना रखा है । यह निश्चित है कि उनके अशिक्षित रहने पर दाम्पत्य भाव सम्यक नहीं रह सकता । इसलिए जब तक हम अर्द्धांगिनियों को शिक्षा से वंचित रखेंगे हमारी शिक्षा भी व्यर्थ रहेगी -

"विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयगी ।
अर्द्धांगिनियों को भी सु-शिक्षा दी न जब तक जायगी ।
सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की ।
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगी वातकी ।"[4]

---

1. सरस्वती सितम्बर 1906, पृ.354
2. वही, पृ.101, फरवरी 1916
3. वही, अप्रैल 1906, पृ.132
4. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.181

गोपालशरण सिंह भी तत्कालीन स्त्री अशिक्षा से असंतुष्ट दिखाई देते हैं। वे स्त्री - शिक्षा के प्रबल समर्थक हैं तथा स्त्रियों की निरक्षरता उन्हें उद्विग्न बनाती है। कवि को स्त्रियों की हीन दशा से सहानुभूति है और वह उसमें सुधार का आकांक्षी है। वह भारतीय विद्यार्थियों के कर्त्तव्य कविता में विद्या विहीन महिलाओं को देश के अधःपतन का संकेत करते हुए, उनकेलिए समुचित शिक्षा-व्यवस्था के प्रबन्ध का शुभ परामर्श इस प्रकार देता है -

"हैं विद्या-वंचित यहाँ महिलायें सारी,
होती है नित हानि देश की जिससे भारी।
क्या अचरज सन्तान निकम्मी जो वे जनती
था जो सहज शिकार घृणों की है बनती।
समुचित प्रबन्ध उनके लिए शिक्षा का सत्वर करो,
मित्रो, समूल गृह देवियों की सब दुख चिन्ता हरो।[1]"

2. अछूतोद्धार

छुआछूत अथवा अस्पृश्यता अन्य सामाजिक कुरीतियों की अपेक्षाकृत हिन्दू समाज केलिए घोर अभिशाप है। इसके कारण मानव मानव से घृणा करता है और उसे पशु-तुल्य समझता है। "मुझे न छुओ, मैं पवित्र हूँ" की भावना ने हिन्दुओं के संगठन को खोखला कर दिया। शूद्र वर्ग को अस्पृश्य कहकर ठुकराने की

1. सरस्वती - फरवरी, 1914, पृ.106

भावना के परिणामस्वरूप ही हमारे अनेक भाई अपने से भिन्न होने लगे । उनमें ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न हुए और वे अन्य धर्म एवं अन्य जातियों में सम्मिलित होने लगे । यह आश्चर्य की बात है कि जब ईश्वर एक ही है, आत्मा भी एक है तो फिर अछूत की भावना कैसी। फिर भगवान तो पतितपावन प्रसिद्ध है, वह पतित के शरीर स्पर्श से पतित हो जाते हैं । इसीलिए अछूतों केलिए मन्दिर-प्रवेश वर्जित था ।

मध्ययुग में कबीर आदि सन्तों ने "हरि को भजै सो हरि का होई, जाति पाँति बूझत नहिं कोई" आदि कहकर इस अस्पृश्यता की भावना को दूर करने का प्रयास किया पर वह बहुत अधिक फलोत्पादक नहीं सिद्ध हो सका । आधुनिक युग में गाँधीजी के नेतृत्व में इस दिशा में आन्दोलन चला जिसके फलस्वरूप आज इस क्षेत्र में हम पूर्णतः सफल कहे जा सकते हैं । द्विवेदीयुग में इस विचारधारा से प्र भावित होकर कवियों ने अस्पृश्यता की निन्दा कर, मानव मात्र के प्रति समता और विश्व बंधुत्व का पाठ पढ़ाया ।

नाथूराम शर्मा "शंकर जी अपनी कविताओं में छुआछूत का डटकर विरोधकिया है तथा एक परमेश्वर रूपी पिता की सन्तान होने के कारण समता की भावना पर बल दिया है[1] ।"

---

1. शंकर सर्वस्व, पृ.15, 311,445,21,26,52,

शंकर-सरोज के भजन नं॰46 में जहाँ कवि शंकर ने छुआछूत की भावना के कारण भारतीयों के छिन्न-भिन्न होने और ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न होने की ओर यों संकेत किया है -

"कुल खेलों रही न रोक, दुविधा दूर भई ।
दूर-दूर छुआछूत के मारे है गये छिन्न-भिन्न हम सारे ।
सत्यनाश भयो भारत को[1] ।"

वहाँ अपनी छूत-अछूत क्यों[2] समस्यापूर्ति में धर्म का मर्म समझ कर सुकर्म करने और एकता की भावना को अपनाने तथा छूत-अछूत की भावना को त्यागने से ही देश का कल्याण हो सकने का सन्देश दिया है ।

समाज में अन्त्यजों की स्थिति से हरिऔध जी भी बड़े दुःखी थे । उन्होंने "तिलक और टीका[3]" कविता में लोभी तिलकधारियों को छुआछूत न करने तथा धर देखो भालो[4]" में अभी छूतछात का त्याग क्यों नहीं हुआ है का तीक्ष्ण शब्दों में वर्णन किया है । वे वक्तव्य[5] कविता में छूतछात के विचार को सर्वस्व[6] हरने का कारण बताते है तथा परिवर्तन कविता में छूतछात से छुटकारा न मिलने की ओर संकेत करते हैं ।

1· शंकर सरोज, पृ॰50
2· शंकर सर्वस्व, पृ॰363
3· सरस्वती, फरवरी 1918, पृ॰97
4· हरिऔध पद्य प्रसून, पृ॰158
5· हरिऔध पद्य प्रसून, पृ॰134
6· वही, पृ॰134

"भगवती भागीरथी"[1] कविता में गंगा माता से उन्हें पवित्र करने की याचना करते हैं । "अन्तत: हीन से हीन नर अस्पर्श्य अपने मित्र हों[2] पंक्ति द्वारा लोचनप्रसाद पाण्डेय ने छुआछूत की भावना का समाहार कर दिया । वस्तुत: यही इस समस्या का उचित समाधान प्रतीत होता है ।

रामचरित उपाध्याय की "हमी हम"[3] कविता में ऊँच नीच के भेदभाव को छोड़कर एकता की भावना अपनाने से भारत के दु:ख दूर होने का कथन है तो रामचन्द्र शुक्ल ने अछूत की आह"[4] कविता में उन कुलीनों पर आश्चर्य प्रकट किया गया है जिन्हें कुत्ते को तो स्पर्श करना स्वीकार्य है, पर अपने अभागे भाइयों को नहीं ।

मैथिलीशरण गुप्त ने अछूतोद्धार पर अत्यन्त सहानुभूति-पूर्वक लिखा है - साकेत में क्षत्रिय कुलभूषण राम को निषाद राज गुह को गले लगाकर मिलते हुए अंकित करने में उनकी अस्पृश्यता-निवारण तथा ऊँच-नीच जातियों में समन्वय स्थापित करने की भावना ही स्पष्टत: कार्य कर रही है ।

"जयभारत" में एकलव्य निम्न जाति का होने के कारण गुरु से शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाता है । तब युधिष्ठिर

---

1. हरिऔध - पद्य प्रसून, पृ.143
2. पद्य - पुष्पांजलि, पाण्डेय, पृ.18
3. सरस्वती फरवरी 1916, पृ.101
4. वही, अक्टूबर 1916, पृ.233

अपने भाइयों से कहते हैं कि ऐसा करना उचित नहीं क्योंकि हम सभी उसी एक ईश्वर के अंश हैं । "परमात्मा के अंश रूप है, आत्मा सभी समान ।"[1] अनघ के मघ का भी यही विचार है कि अपने से निम्न किसी जाति को नहीं कहना चाहिए । किसी को नीच कह कर उच्चता प्राप्त नहीं की जा सकती । सभी प्राणि मात्र का एक ही गोत्र है, सभी को शरीर, हृदय तथा आत्मा से एक मानना चाहिए । ऊँच-नीच का भेदभाव उचित नहीं[2] । अछूतों को समाज में सबसे निम्न समझा जाता है । गुप्तजी इस बुराई को, दूर करना चाहते हैं । उन्होंने स्वदेश-संगीत तथा गृहस्थ गीता में इस कुरीति को मिटाने पर बल दिया है । गुरुकुल में गुरु गोविन्द सिंह ने छुआ-छूत की निन्दा की है -

"जिन्हें शूद्र कहते हैं वे ही
हैं समाज के सच्चे अंग
प्रथम पैर ही पूजते हैं जो
ले चलते हैं सब कुछ संग[3] ।"

सियारामशरण गुप्त जी ने "एक फूल की चाह" नामक कविता में अछूतों के प्रति किए जानेवाले अन्याय का दिग्दर्शन कराया है । एक अछूत अपनी बेटी के आग्रह से देवी के प्रसाद का एक फूल लेने केलिए स्नानादि से शुद्ध होकर मंदिर में जाता है ।

1· जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, एकलव्य, पृ·57

2· अनघ - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·62-63

3· गुरुकुल - मैथिलीशरण गुप्त - गुरु गोविन्द सिंह, पृ·123

उसके प्रवेश मात्र में मंदिर की चिरकालिक शुचिता नष्ट हो जाती है जिसके कारण उसे कराघात ही नहीं बल्कि राज्याघात और देवाघात भी सहने पड़ते हैं। अंत में बेटी की चिता पर उसके करुण क्रन्दन की ध्वनि पाठकों के मन में गूंजती रहती है -

"यही चिता पर धर दूंगा मैं
कोई अरे सुनो वर दो -
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही लाकर दो[1]।"

रूपनारायण पाण्डेय भी अछूतों को न अपनाने के कारण जाति के ह्रास होने तथा स्वराज्य प्राप्ति को दुष्कर बताते हुए अपने एक स्फुट छन्द में लिखते हैं -

"अपना ही अंग हैं ये अत्यन्त असंख्य, इन्हें
गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे।
ममता के मन्त्र से विषमता का विष जो,
उतारा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे।
पक्षाघात पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,
उन्नति की दौड़ में कहां से जीत पाओगे।
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं
अगर अछूतों को न आप अपना बनाओगे[2]।"

1· आर्द्रा - सियाराम शरण गुप्त, पृ·64
2· पराग - रूपनारायण पाण्डेय, पृ·127

ग्रामोद्धार

गांधीजी के विचार में भारत की उन्नति तभी हो सकती थी जब भारत के ग्रामों का उद्धार हो । जातिभेद एवं वर्गभेद को मिटाकर उन्होंने ग्राम के उद्धार का प्रयत्न तो किया कि साथ एक शिक्षा का प्रसार करते हुए गांवों में प्रचलित अंधविश्वास को दूर करने का भी उन्होंने प्रयत्न किया । परम्परागत रूढियों से ग्रामीण लोगों को ऊपर उठाकर उन्हें प्रकाश का पंथ दिखाने केलिए गांधीजी ने जो प्रयत्न किया वह अपने में एक महत्कार्य है । गांव के संत ने ग्रामीण जनता की उन्नति केलिए सेवाग्राम की स्थापना की । द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने काव्य में यथास्थान गांधीजी के ग्रामसम्बन्धी विचारों को प्रमुखता दी है । ग्रामीण जनता एवं कृषकों के अंधकारमय जीवन की झलक उन काव्यों में प्रस्तुत किया है और इस वर्ग के उद्धार से ही ग्रामों का उद्धार संभव है ।

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही जी ने कृषक क्रंदन में कृषकों के नारकीय जीवन की झलक दिखाते हुए उनकी अधोगति पर विक्षोभ प्रकट किया है । यहाँ पर कवि के कृषक वर्ग के प्रति सहानुभूति स्पष्ट है -

"नहीं मिलती है पेट भर हम को रोटी ।
न जुड़ता है कपड़ा सिवा एक लांगोटी ।
बनी झोंपड़ी मांद से भी है छोटी ।
कहें और क्या अपनी किस्मत है खोटी[1] ।"

1. कृषक - क्रंदन - गयाप्रसादशुक्ल सनेही, पृ.11

मैथिलीशरण गुप्त ने किसान नामक काव्य में किसानों की दुर्दशा का चित्रण किया है । जीवन से विमुख और मृत्यु के आलिंगन में निरत पीड़ित वर्ग किसानों की रामकहानी उन्हीं के जुबान से कवि चित्रित करते हैं।[1] "साकेत" के नवम सर्ग में उर्मिला किसानों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती है । किसानों का गुणगान करती हुई वह कहती है कि सच्चा राष्ट्र किसानों द्वारा ही स्थापित हो सकता है -

"हम राज्य लिए मरते हैं ?
सच्चा राज्य परंतु हमारे कर्षक ही करते हैं।[2]"

"भारत-भारती" में गुप्तजी देश के विकास का मूल कर्षक को ही मानते हैं । वर्तमानकाल में कर्षकों पर किए जानेवाले अत्याचार और कष्ट के भोग को लक्ष्य करते हुए वे किसान की दयनीय दशा पर संकेत करते हैं । उनका कहना है -

"हा देव ! क्या जीते हुए आजन्म मरना था उन्हे ?
भिक्षुक बनाते, पर विधे ! कर्षक न करना था उन्हें।[3]"

"हिन्दू" काव्य के द्वारा गुप्तजी युवकों को ग्रामोद्धार केलिए प्रयत्न करने का उद्बोधन देते हैं ।

---

2. साकेत - नवम सर्ग - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.307
1. किसान - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.9
3. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पद 31, पृ.87

"फिर तुम ग्रामों में कर वास,
ग्रामीणों का करो विकास ।"[1]

भारतीय ग्राम्य जीवन का जीता जागता चित्रण करने में सियारामशरण गुप्तजी पटु हैं । श्रम की कुंडलिनी पर जागनेवाले दीन-हीन भारतीय कृषकों और अन्य ग्रामीणों के दुख की राम कहानी द्रौपदी का चीर बन जाती है । अनाथ कवि की एक ऐसी रचना है जिसके भाव हृदय को सीधे स्पर्श करते हैं । इस कृति में ग्राम्य जीवन के चित्रण में जिन कुरीतियों और अत्याचारों की ओर संकेत किया गया है, वे इस प्रकार है -

"गरीबी और ग्रामीणों की दयनीय दशा ।
ऋणग्रस्तता ।
अधिकारियों का ग्रामीणों के प्रति क्रूर व्यवहार ।
जमींदारों के अत्याचार ।
कतिपय निजी दुर्बलताएँ ।
बेगार और शोषण ।"[2]

रामनरेश त्रिपाठी भारतीय ग्रामीण की आर्थिक दशा का यथार्थ वर्णन करते हुए उनकी दरिद्रता का मार्मिक चित्र खींचते है । निर्धन का भी कोई जीवन है, जो आयुभर जठरानल को शान्त करने केलिए उद्योग करता रहता है, परन्तु फिर भी सफल नहीं होता । इस बेचारे को न पहनने को कपडा, न रहने को मकान और न खाने को सूखी रोटी -

---

1. हिन्दू - मैथिलीशरण गुप्त, गाँवों का सुधार, पृ.81
2. अनाथ - सियारामशरण गुप्त, पृ.

"नरक यंत्रणा से बढ़कर है छाया संकट घोर ।
मानव दल में मची हुई है त्राही-त्राही सब ओर ।
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, उद्यम कौन उपाय ?
वन भी नहीं ठौरे टिकने को कहाँ जाय ? क्या खाएँ ?
लाखों नहीं करोडों की है सुख से हुई न भेंट
मिलती नहीं जन्म भर उनके खाने को भर पेट[1] ।"

बेचारे किसान को कृषक होने से बैल होना अधिक उचित प्रतीत होता है । उसके लिए एक बैल भी उससे अधिक सुखी है । कृषक बेचारे केलिए तो पग-पग पर संकट है । पग-पग पर अत्याचारों का डेरा है । उसकी सूनी आँखों में उसकी मुसीबतों की छाया दिखाई पड़ती है -

"आओ नवजीवन के प्रभात,
आओ नवजीवन की किरणों ।
इन ग्रामों का भी भाग्य जगे
ये भी श्री चरणों की चरणों[2] ।"

बापू की वाणी में अपने स्वर जोड़कर कवि भी कहता है कि सच्चा भारत तो गाँवों में बसा है -

---

1. मिलन - रामनरेश त्रिपाठी, पृ.50
2. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी, पृ.144

"पुरई पालों खपरेलों में,
रहिमा रमुआ की नावों में ।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गावों में ।"[1]

ग्रामों के कृषकों की अवस्था सुधारने का प्रयास करना हमारा कर्त्तव्य है । जब तक इनका कल्याण नहीं होना तब तक देश का कल्याण नहीं है । बापू के साथ साथ माधवशुक्ल भी यही कहता है -

"यदि इनका हो जाय सुधार, भारत का भी हो उद्धार ।
गाँव गाँव में इनके जाकर इनकी बोली में समझाकर ।
कृषि का ढंग इन्हें समझाओ देश-स्थिति का ज्ञान कराओ ।"[2]

कवि की यह अभिलाषा है कि किसानों में उन्नति की भावना भर जाय और वे सुखी हो जाय । उनकी खुशहाली देश की खुशहाली है -

"ये किसान मेरे खुशहाल रहें,
पूरी हो फसल सुख शांति रहे ।"[3]

---

1. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी, पृ. 144
2. भारत गीतांजलि - माधव शुक्ल, पृ. 202
3. वही, पृ. 202

निष्कर्ष

द्विवेदीयुगीन कवि गाँधीजी के तत्वों से प्रभावित थे। गाँधीजी द्वारा अभिव्यक्त विचारधारा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि लिए हुए है। गाँधीवाद के सैद्धांतिक, व्यावहारिक एवं सुधारात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति द्विवेदीयुगीन काव्य में खूब मिलती है। सत्य एवं अहिंसा के कर्म पथ पर चलते हुए ब्रह्मचर्य, सत्याग्रह आदि का सहारा लेकर जनजीवन की सुधार करनेवाली प्रवृत्ति सब कहीं द्रष्टव्य है। द्विवेदीजी श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि इन्हीं गाँधीवादी तत्वों को लेकर अपनी काव्यरचना की हैं। अंग्रेज़ों के दमन भारत को मुक्त करने केलिए इन कवियों ने जनता को प्रेरणा दी। गाँधीजी के प्रभाव से यह हलचल क्रान्ति के मार्ग से दूर रहकर शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक बन गई। भारत के समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने की शक्ति जनता को मिली। गाँधीजी के आदर्श केवल सिद्धान्तों के कथन से आगे बढ़कर व्यवहार एवं समाज के सुधार में व्याप्त रहे। भारतीय समाज में भी इसके फलस्वरूप सुधार एवं प्रगति दृष्टिगत होने लगी।

****

उपसंहार

उपसंहार

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवजागरण की लहर फैल गई थी । अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव और प्रसार से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग हुई । सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के परिणामस्वरूप देश में एक नया सांस्कृतिक मोड आया । सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता का भाव विकसित होने लगा । तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भारतेन्दुयुगीन कवियों में पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति दिखाई पडने लगी । उन्होंने राष्ट्रीयता के विभिन्न पक्षों को अपने काव्य का विषय बनाया । विभिन्न राजनैतिक आन्दोलनों ने इस धारा को आगे बढा दिया । इनमें गांधीजी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है ।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग इन राजनैतिक आन्दोलनों एवं राष्ट्रीय चेतना से अत्यन्त सजीव हो उठा था ।

भारतेन्दुयुगीन काव्य में ये प्रवृत्तियाँ विशेष रूप में पायी जाती हैं। भारतेन्दुयुगीन राष्ट्रीयता द्विवेदीयुग में अधिक तीव्र एवं प्रखर हो उठी। द्विवेदीयुग की कविता सामान्य भूमि पर चलती है। वह समाज में कर्म-पथ पर अग्रसर होने की वास्तविक प्रेरणा जागृत करती है। इस रूप में द्विवेदीयुग के काव्य की प्रमुख धारा राष्ट्रीयता की है। कवियों का विशेष आग्रह साम्प्रदायिक समन्वय और सामाजिक कल्याण की ओर रहा है। सामूहिक चेतना की जागृति के रूप में गान्धी-विचारधारा से प्रेरित अहिंसक राष्ट्रीय भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण आदि राष्ट्रीयता के नये रूप इस युग में उभर कर सामने आये। इस काल में देश के राजनैतिक आन्दोलनों ने वस्तुत: जन-आन्दोलन का रूप ग्रहण किया। इसी जन-आन्दोलन को द्विवेदीयुगीन कविता ने अभिव्यक्ति प्रदान की है।

द्विवेदीयुग में राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद वास्तव में एक दूसरे के पूरक रहे हैं। गांधीजी के बिना भारतीय राष्ट्रीयता अधूरी है और गांधीवाद भारतीय राष्ट्रीयता का सशक्त माध्यम रहा है। हिन्दी काव्य के विकास में द्विवेदी युगीन कविता भारतीय राष्ट्र ीयता एवं गांधीवाद का सन्देश लेकर आगे बढी है। राष्ट्रीयता एक ऐसी चेतना है जिससे व्यक्ति जनसमूह से एकत्व स्थापित करके अपने देश और समाज केलिए अपना सब कुछ दान कर देता है। राष्ट्रीयता के विकास में कुछ तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। वे तत्व हैं - भौगोलिक एकता, संस्कृति तथा इतिहासपरम्परा की एकता, जातीय एकता, धर्म की एकता, भाषा की एकता, आर्थिक और राजनैतिक आकांक्षा की एकता और समान हित। भारत में राष्ट्रीयता वेदकालीन साहित्य से लेकर आज तक निर्बाध गति से

प्रवहित होती आ रही है । भारतीय राष्ट्रीयता सदैव अहिंसात्मक भी रही है । आधुनिक युग में इस अहिंसात्मक राष्ट्रीयता के संदेश को फैलाने में गांधीजी का बहुत बडा योगदान है । गांधीवाद का तत्पर्य उन सिद्धान्तों से है जिनका प्रचार प्रसार महात्मागांधी ने सामूहिक जीवन में किया है । प्रमुख रूप से गांधीवाद के तीन पक्ष है - सैद्धान्तिक - व्यावहारिक और सुधारात्मक । गांधीजी ने अपने इन सिद्धान्तों के निर्बाध अनुसरण केलिए व्यक्ति के जीवन में संयम एवं कुछ तत्वों के निरंतर पालन की आवश्यकता पर बल दिया है । इनमें ब्रह्मचर्य, अस्तेय, पअरिग्रह, अस्वाद, अभय आदि का विधान रखा गया है । इन्हीं का पालन गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत आता है । गांधीजी ने अपने सिद्धान्तों के पालन एवं व्यवहार केलिए उस समय के समाज में कुछ सुधार लाना चाहा । तत्कालीन समाज में नारी एवं शूद्रों की जो हीन अवस्था थी, उसे देखकर वे अत्यधिक दुःखी थे । गांधीजी जानते थे कि ऐसे समाज में उनके सिद्धान्तों का पालन असंभव है । इसलिए उन्होंने अहिंसा, सत्य आदि के महत्व-ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि के पालन के साथ साथ सामाजिक कुरीतियों को दूर करते हुए उसमें नये प्राण लाने का निरन्तर प्रयत्न किया । नारी उद्धार, अछूतोद्धार आदि इसी प्रयत्न के सुफल हैं । भारत की नई राष्ट्रीयता में गांधीवाद से प्रभावित इन तत्वों का विशेषमहत्व रहा है । द्विवेदी युगीन काव्य में इनका प्रतिफलन देखा जा सकता है । सियारामशरण गुप्त द्वारा लिखित नोआखाली तथा जयहिन्द शीर्षक कविताएं अहिंसा और शांति भावना के प्र चार में विशेष सहायक हुई । बापू नामक काव्य संग्रह में उन्होंने गांधीजी को अपनी श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए उनके संदेश को देशवासियों तक पहुंचाने की

कोशिश की है । मोहनलाल द्विवेदी के "कुणाल" नामक खण्ड-काव्य पर गांधीजी के अहिंसावाद का पूरा-पूरा प्रभाव दिखाई देता है । उनके "सेगांव का सन्त" और वासवदत्ता शीर्षक रचनाओं में भी गांधीवादी विचारधारा की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी का प्रियप्रवास गांधीजी के व्यक्तित्व से सर्वथा अछूता नहीं है । हरिऔध के श्रीकृष्ण गांधीवाद की अहिंसा से प्रभावित होकर ही दुष्टों के दमन का समर्थन करते हैं । उनके वैदेही वनवास के नायक राम की नीति पर महात्मा गांधी के अहिंसावाद की छाप दिखाई पड़ती है । मैथिलीशरणगुप्तजी के अनेक प्रबन्ध-काव्यों पर गांधी-दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव है । पंचवटी में सीता स्वावलम्बन का गुण गान करती है । गुप्तजी के जयभारत में युधिष्ठिर अपने व्यक्तित्व में गांधीजी के सत्य तथा अहिंसा की सुन्दरतम व्यंजना पाते हैं ।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण से उद्भूत द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता बहुत ही उग्रता एवं जोश लिए हुए थी । इसका प्रमुख कारण पराधीन भारतवासियों की वर्तमान के प्रति असन्तोष की भावना थी । द्विवेदीयुग की इसी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति भारत के संपन्न अतीत की पृष्ठभूमि पर अंकित है । मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक व्यक्त हुई है । उनका संपूर्ण काव्य "हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी का चित्रण करता है । भारत भारती में इसका स्वर बड़े सशक्त रूप में पाया जाता है । भारतवर्ष के वीर पूर्वजों के आत्मसमर्पण के चित्रण के फलस्वरूप जनता में अपनी जन्मभूमि के प्रति एक अटूट आस्था प्रबल हुई और गांधी दर्शन से प्रभावित होकर एक अहिंसात्मक राष्ट्रीयता की स्थापना हुई । अतः देशप्रेम, जातीय एकता,

वर्तमान के प्रति विक्षोभ एवं अतीत के प्रति श्रद्धा के भाव कविताओं द्वारा जनता में जागृत हुए । स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की भावना देशवासियों में बढने लगी । वे अपने देश को स्वतन्त्र कराने केलिए बडी से बडी कठिनाइयों का सामना करने केलिए, यहाँ तक कि अपने प्राणों के भी बलिदान केलिए तैयार थे । राष्ट्रीयता के अनेक तत्वों की ओर संकेत इस युग की कृतियों में मिलता है । द्विवेदीयुग के कवि निश्चय ही राष्ट्रीयता के कवि थे, भारत माँ के सच्चे पुजारी तथा अनन्य भक्त थे और मातृभूमि की पूजा और वन्दना ही उनका राष्ट्रीय धर्म था । राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर उन्होंने नवयुग का निर्माण किया और देश तथा जाति को राष्ट्रीय जीवन का संदेश देकर फिर से जीवित तथा स्वतन्त्र रहने के योग्य बना दिया ।

द्विवेदीयुगीन कविता में स्वतन्त्रता की हुंकार है, विद्रोह एवं विध्वंस की वाणी है तथा स्वतन्त्रता केलिए बलिदान देने की इच्छा करनेवाले व्यक्तियों का उत्साह एवं उल्लास है । मैथिलीशरणगुप्त, रामनरेशत्रिपाठी, श्रीधर पाठक, गयाप्रसादशुक्ल सनेही आदि कवियों ने अपनी कविताओं के द्वारा समाज में जागरण, स्फूर्ति तथा आशा का संचार करने का सफल प्रयास किया । मैथिलीशरणगुप्तजी का भारत भारती ग्रंथ नवजागरण का अग्रदूत है, राष्ट्रोत्थान में उसका बहुत बडा योगदान भी था । रामनरेश त्रिपाठी, त्रिशूल आदि ने देशभक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ने का उपदेश दिया है । पराधीनता को मिटाने केलिए द्विवेदीयुगीन कवियों ने स्वराज्य की महत्ता पर बल दिया । गांधीजी की अहिंसक राष्ट्रीयता से आत्मबल संजोकर जन्मभूमि की स्वतन्त्रता केलिए कठिन से कठिन त्याग सहने की प्रेरणा उन्होंने प्रदान की

उनके लिए अपना राष्ट्र सबकुछ था । इसी प्रकार के राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति द्विवेदीयुग के कवि श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसादशुक्लसनेही, मैथिलीशरणगुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि के राष्ट्र के प्रति समर्पण के भाव में प्राप्त होती है । देश के उद्धार केलिए एकता की भावना को बढाना द्विवेदीयुगीन कवि अत्यन्त आवश्यक समझते थे । जातिपाँति की समस्या के कारण विदेशी आक्रमण के विरुद्ध भारतीय समाज का एकीकरण न होता था । भेद-भाव के इस विषैले वातावरण के घातक परिणामों की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करते हुए द्विवेदी युगीन कवि जातीय एकता के महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं । जातीय जीवन को संगठित करने में द्विवेदीयुगीन कवियों ने बडा मूल्यवान कार्य किया है । क्रान्ति केलिए आह्वान, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता, प्रजातान्त्रिक विचारों की महत्ता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर आदि को इस काव्य में प्रमुखता मिली । अपनी विभिन्न कविताओं के माध्यम से निराश जनमन में आशा का दीप जलाकर उन्हें राष्ट्रीयता का नया सन्देश देने में द्विवेदी युगीन कविगण सफल सिद्ध हुए ।

द्विवेदीयुगीन कवि गान्धीवाद के तत्वों से अत्यधिक प्रभावित थे । गाँधीजी द्वारा अभिव्यक्त विचारधारा साँस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधृत है । गाँधीवाद के सैद्धान्तिक, व्यावहारिक एवं सुधारात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति द्विवेदीयुगीन काव्य में खूब मिलती है । भारत की प्राचीन संस्कृति का आदर करनेवाले द्विवेदीयुगीन कवियों में गान्धीजी के सत्य एवं अहिंसा के कर्म पथ पर चलते हुए ब्रह्मचर्य, सत्याग्रह आदि का सहारा लेकर जन जीवन को नई चेतना प्रदान करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है । महावीरप्रसादद्विवेदी, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय

हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेशत्रिपाठी आदि कवि इन्हीं गांधीवादी तत्वों को लेकर आगे बढे हैं । इन कवियों ने अपने काव्य के ज़रिये जनता को अंग्रेज़ों की दमननीति से भारत को मुक्त करने की प्रेरणा दी । गांधीजी के प्रभाव से भारत की राज्य क्रान्ति हिंसा के मार्ग से हटकर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में बदल गई । समाज में कई सुधारात्मक प्रवृत्तियां परिलक्षित होने लगीं । मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरणगुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी आदि के काव्य में ये प्रवृत्तियां स्पष्ट परिलक्षित है । द्विवेदीयुगीन कवियों की इन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप समाज में सुधार एवं प्रगति दृष्टिगत होने लगी ।

द्विवेदीयुगीन काव्यों में प्रमुखतः शोषित समाज की समस्या को ही उठाया गया है । राष्ट्रीयतावाद, मानवता की प्रतिष्ठा आदि की विजय केलिए यह अत्यन्त आवश्यक भी था । इसमें दलित नारी समाज की उन्नति, पीडित किसानों का जागरण तथा अछूतों का उद्धार आदि प्रमुख थे । मानवतावादी विचारधारा का विकास जो इस युग की एक प्रमुख विशेषता है निश्चय ही गांधीविचारधारा के बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप है । कवि अपने प्रान्त, जाति, सम्प्र दाय और राष्ट्र से ऊपर उठकर जब सम्पूर्ण विश्व का हो जाता है, तभी अखिल मानवता की चेतना भावना उसकी अपनी हो जाती है । हरिऔध की राधिका देशसेविका का रूप ग्रहण करती है और गुप्तजी के राम मानवता को ईश्वरता में बदलतें दीख पडते हैं । ठाकुर गोपालशरणसिंह विश्वप्रेम एवं मानवता की सेवा में ही मुक्ति की झलक देखते हैं ।

महाभारत और भागवत की कथाओं के आधार पर एक राष्ट्रीय प्रतीकवाद प्रस्तुत किया गया । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी का "प्रियप्रवास और वैदेहीवनवास एवं मैथिलीशरण गुप्तजी का साकेत और पंचवटी आदि इसी श्रेणी की रचनाएं हैं । देश की स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने प्राणों को अर्पित करने का उत्साह रखनेवाले वीर जवानों केलिए द्विवेदीयुगीन कवियों की वीरपूजा की भावना संजीवनी का काम कर गई । पौराणिक पुरुषों के साथ साथ महात्मागांधी का भी चित्रण स्वतन्त्रता प्रेमियों केलिए दुगुना उत्साह प्रदान करनेवाला बन गया ।

स्वाधीनता संग्राम को जन-आन्दोलन का रूप देने में गान्धीजी के सत्याग्रह और असहयोग के सिद्धान्तों का बहुत बडा हाथ था । सत्याग्रही केलिए कारागृह भी कृष्णमंदिर था और बन्धन की बेडियां उसका श्रृंगार थी । विजय-पर्व की भावना कवियों में अदम्य उत्साह को जन्म देने लगीं । माधव शुक्ल की कविता जागृत भारत में सत्याग्रह के स्वर गूंजने लगे । गांधीजी के इस कथन ने कि "इस रावणराज्य में श्रृंगार छोड दो, जब तक देश परतन्त्र है तब तक ऐश-आराम को शोकाग्नि में भस्म कर दो कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया और वे राजनीतिक जागरण में स्वदेशी-भावना का महत्व प्रतिपादित करने लगे ।

गांधीजी द्वारा प्रवर्तित राजनीतिक हलचल से प्रेरणा ग्रहण कर द्विवेदीयुगीन कवियों के वीर-पूजा के गीत सियारामशरण गुप्त के भावुकतापूर्ण आख्यान गीत और पथिक जैसी आदर्शवादी रचनायें इस काल में प्रस्तुत हुई । ठाकुर गोपालशरणसिंह की रचनायें भी नया प्रभाव लेकर आई और सनेही जी तो प्रत्यक्ष रूप से

राजनैतिक कविता करने लगे । इस प्रकार राजनीति में गाँधीजी के प्रवेश ने हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना को उसकी इच्छित ऊँचाइयों तक पहुँचाने में अकथनीय योग-प्रदान किया । द्विवेदीयुग के अधिकांश कलाकारों ने जनता के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया । इस राजनीतिक आन्दोलन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में थी और कांग्रेस नीति के अभिभावक महात्मागांधी थे । इसलिए गाँधीजी के जीवन दर्शन का प्रचार करना प्रत्येक देशभक्त साहित्यकार का कर्तव्य हो गया । साहित्यकारों पर गाँधी-विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । अनेक साहित्यकारों ने प्रत्यक्ष रूप से आगे बढ़कर गाँधीजी की विचारधारा का समर्थन किया तो कुछ ने अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव ग्रहण किया तथा कुछ ऐसे साहित्यकार भी सामने आए जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से गाँधीजी को चरितनायक मानकर उनके विराट्-व्यक्तित्व और विचारों का आलेखन किया ।

श्रीधर पाठक ने अपने भारतगीत के माध्यम से राष्ट्रीयता को वाणी प्रदान की । हरिऔधजी ने प्रियप्रवास तथा वैदेही वनवास के द्वारा पौराणिक पात्रों के जरिये हमारी राष्ट्रीयता एवं गाँधीवाद का प्रचुर प्रचार किया । इन कविगणों ने भारत के अतीत के गौरव का वर्णन करते हुए वर्तमान अवनीत पर अपना क्षोभ प्रकट कर उससे मुक्ति पाने केलिए जनता को आह्वान दिया । मैथिलीशरण गुप्तजी अपने उद्बोधनात्मक काव्य हिन्दू के माध्यम से जनता को अपने देश में प्रचलित कुप्रथा एवं अंधविश्वासों से मुक्ति पाकर देश केलिए मर मिटने की प्रेरणा प्रदान की । सोहनलाल द्विवेदी का युगाधार एवं भैरवी रामनरेश त्रिपाठी का पथिक, स्वप्न एवं मिलन भी इसी कोटि के राष्ट्रीय काव्य हैं । इन कवियों ने गाँधीजी के विचारों से प्रेरित होकर अपने काव्यों में

सत्य अहिंसा आदि नैतिक तत्वों को प्रमुखता दी । गांधीजी के द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह, क्रान्ति एवं खादी प्रसार को उन्होंने अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया । द्विवेदी युगीन कवि गांधीजी को नये युग के नये शिल्पी मानते थे और उनके आदर्शों को अंधकारमय जीवन से प्रकाश देनेवाले शांति के साधन मानते थे ।

गांधीविचारधारा के व्यापक प्रभाव के परिणामस्वरूप द्विवेदीयुग की यही विचारधारा छायावाद-युग में अपने प्रौढ और परिष्कृत रूप में विकसित हुई । छायावादी काव्य में मुख्य रूप से राष्ट्रीयता के दो रूप मिलते हैं । एक वह प्रतीकात्मक रूप, जिसमें राष्ट्रीयता अनेक रूपों में व्यक्त हुई है तथा दूसरा वह रूप जो राष्ट्र की यथार्थ भूमि पर स्थित है और जिस में संघर्ष का सीधा उद्घोष है । परन्तु दोनों का सम्बन्ध राष्ट्रीय आन्दोलन एवं महात्मा गान्धी से ही है जिसमें एक का स्वरूप भावात्मक है तथा दूसरे का व्यावहारिक । छायावादी कवियों ने एक ओर देश से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया तथा उसका मुक्तकंठ से गुणगान किया, वहीं दूसरी ओर उसकी करुण कहानी को भी कहने में संकोच नहीं किया । इस प्रकार द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता एवं गांधीवाद की प्रवृत्ति छायावाद युग में विकसित हुई ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

क्र॰सं॰	पुस्तक / प्रकाशक का नाम व पता	
	द्विवेदी-युगीन काव्य	
1.	अनघ	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, अष्टमावृत्ति, 2014 वि॰
2.	अनाथ	सियारामशरण गुप्त 2018 वि॰
3.	अजित	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, तृतीय संस्करण 2014 वि॰
4.	अमृतपुत्र	सियारामशरण गुप्त 2016 वि॰
5.	आत्मोत्सर्ग	सियारामशरण गुप्त, 2013 वि॰
6.	आर्द्रा	सियारामशरण गुप्त, 2013, वि॰
7.	उन्मुक्त	सियारामशरण गुप्त द्वितीयावृत्ति, 2006 वि॰
8.	उर्मिला	बालकृष्ण शर्मा नवीन

9. काबा और कर्बला — मैथिलीशरण गुप्त
द्वितीय संस्करण 2004 वि.
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी ।

10. किसान — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव
झाँसी, 2019 वि.

11. कुणाल - गीत — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2013 वि.

12. गान्धायन — सोहनलाल द्विवेदी
साहित्य भवन (प्रा.) लि.
इलाहाबाद, संस्करण प्रथम 1970

13. गौरव गीत — सोहनलाल द्विवेदी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
13, दरियागंज, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1977

14. चेतना — सोहनलाल द्विवेदी

15. जय गान्धी — सोहनलाल द्विवेदी
इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स)
प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग, 1956.

16.	जयद्रथवध	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, अड़तालीसवाँ संस्करण 2019 वि.
17.	जयभारत जय	सोहनलाल द्विवेदी राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, पहला संस्करण 1972.
18.	जयहिन्द	सियारामशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, तृतीयावृत्ति 2013 वि.
19.	झंकार	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, तृतीयावृत्ति 2016 वि.
20.	तितली रानी	सोहनलाल द्विवेदी ज्ञान भारती, 4/14, रूप नगर, दिल्ली-7, प्रथम संस्करण 1976.
21.	तिलोत्तमा	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, पंचमावृत्ति, सं.2019 वि.

22.	त्रिशूल तरंग	त्रिशूल प्रताप पुस्तकमाला कार्यालय, कानपुर, तृतीय संस्करण, दिसम्बर, सन् 1921
23.	दूर्वा दल	सियारामशरण गुप्त तृतीयावृत्ति 2013 वि.
24.	दैनिकी	सियारामशरण गुप्त द्वितीयावृत्ति 2003 वि.
25.	नकुल	सियारामशरण गुप्त
26.	नहुष	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, एकादशावृत्ति,2014 वि.
27.	नोआखाली में	सियारामशरण गुप्त तृतीय संस्करण,2014 वि.
28.	पंचवटी	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, तैतालीसवाँ संस्करण, 2017 वि.
29.	पत्रावली	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, 2013 वि.

30· पथिक रामनरेश त्रिपाठी

31· पारिजात अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
हिन्दी साहित्य कुटीर,
बनारस, द्वितीय संस्करण,
वि·सं·2012

32· प्रभाती सोहनलाल द्विवेदी
साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1944 ई·

33· प्रियप्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
हिन्दी साहित्य कुटीर,
वाराणसी-1, त्रयोदश संस्करण
वि·सं·2023

34· पुष्करिणी संकलनकर्ता- सच्चिदानन्द हीरानन्द
वात्स्यायन
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, प्रथमावृत्ति 2016 वि·

35· पूजागीत सोहनलाल द्विवेदी

36· पृथिवीपुत्र मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, तृतीयावृत्ति, सं·2023 वि·

37· बक-संहार — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2013 वि·

38· बापू — सियारामशरण गुप्त
नवमावृत्ति सं·2013 वि·

39· भारतगीत — श्रीधरपाठक

40· भूमि-भाग — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, प्रथमावृत्ति 2010 वि·

41· भैरवी — सोहनलाल द्विवेदी
इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद
1951, चतुर्थ संस्करण ।

42· मिलन — रामनरेश त्रिपाठी

43· मुक्तिगंधा — सोहनलाल द्विवेदी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1972

44· मुक्ति यज्ञ — सियारामशरण गुप्त
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-6

45· मृण्मयी — सियारामशरण गुप्त
द्वितीयावृत्ति, सं·2008 वि·

46· मौर्य विजय सियारामशरण गुप्त
सं·2013

47· यशोधरा मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2033 वि·

48· यह मेरा हिन्दुस्तान है- सोहनलाल द्विवेदी
साहित्य भवन प्रा·लि·,
इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण,
1971·

49· युगाधार सोहनलाल द्विवेदी
इंडियन प्रेस लिमिटेड,
इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 1951

50· युद्ध मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, प्रथम सं·2009 वि·

51· रंग में भंग मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव
झाँसी, 2019 वि·

52· रत्नावली मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, प्रथमावृत्ति 2017 वि·

53· राजा-प्रजा मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, प्रथमावृत्ति 2013 वि·

54· राष्ट्रीयमन्त्र गयाप्रसाद शुक्ल सनेही

55· राष्ट्रीयवीणा गयाप्रसादशुक्ल सनेही

56· वन-वैभव मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2005 वि·

57· वासन्ती सोहनलाल द्विवेदी
इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद, 1962

58· विकट भट मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, षष्ठावृत्ति, 2016 वि·

59· विश्व-वेदना मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, पंचम संस्करण सं·2014

60· विषपान सोहनलाल द्विवेदी,
इंडियन प्रेस [पब्लिकेशंस] लि·
प्रयाग, 1955

61· विषाद मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, चतुर्थावृत्ति 2022 वि·

62· विष्णुप्रिया मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, चतुर्थावृत्ति, 2019 वि·

63· वैतालिक मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2014 वि·

64· वैदेही वनवास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
हिन्दी साहित्य कुटीर,
वाराणसी, पंचम संस्करण 2015 वि·

65· शक्ति मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2012 वि·

66· स्वप्न रामनरेश त्रिपाठी

67· सिद्धराज मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, चौबीसवाँ संस्करण,
2022 वि·

68. सैरन्ध्री — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, दशमावृत्ति 2017 वि.

69. हिडिम्बा — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, द्वितीयावृत्ति 2013 वि.

70. हिन्दू — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, चतुर्थावृत्ति 2013 वि.

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. अभिनव - पद्य संग्रह — प्रेमा कसबेकर
शिव प्रकाशन, बम्बई, 1970

2. आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प (1900 - 1940 ई.)
डॉ. मोहन अवस्थी
हिन्दी परिषद् प्रकाशन,
विश्वविद्यालय, प्रयाग,
प्रथम सं. 1962.

3. आधुनिक हिन्दी खण्ड-काव्य - डॉ॰एस॰ तंकमणि अम्मा
सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली-6
प्रथम संस्करण 1987

4. आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन -
डॉ॰ सरजूप्रसाद मिश्र
पुस्तक संस्थान, 109/50 ए,
नेहरू नगर, कानपुर-208012
प्रथम संस्करण 1977

5. आधुनिक हिन्दी कविता - भक्तराम
कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली-110007
प्रथम संस्करण 1973

6. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य -
डॉ॰ शान्ति खन्ना
सन्मार्ग प्रकाशन, 16, यू॰बी॰
बैंग्लो रोड, दिल्ली-110007
प्रथम संस्करण 1973

7. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व -
डॉ॰ शैव्या झा
अनुपम प्रकाशन, पटना-6
प्रथम संस्करण 1977

8· आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका -
डॉ· शम्भुनाथ पाण्डेय
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
प्रथम संस्करण, 26 जनवरी 1964

9· आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य -
हुकुम चन्द
दीपक पब्लिशर्ज़, माई हीरां गेट,
जालन्धर शहर, प्रथम संस्करण 1972

10· आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका -
डॉ· शम्भुनाथ सिंह
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
प्रथम संस्करण 1964

11· आधुनिक हिन्दी कविता भक्तराम
कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली-67

12· आधुनिक हिन्दी साहित्य (संवत् 1900 से 1990 तक)
पं·कृष्णशंकर शुक्ल
हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस
नवम संस्करण

13· आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका -
डॉ·लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
हिन्दी साहित्य परिषद,प्रयाग,
1952 ई·

14• आधुनिक हिन्दी कविता समीक्षा तथा सिद्धांत -
डॉ• विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
प्रभात प्रकाशन, प्रयाग,
प्रथम संस्करण 1962 ई•

15• आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धांत -
डॉ•सुरेशचन्द्र गुप्त
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण 1960

16• आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास -
डॉ•जितराम पाठक
राजीव प्रकाशन, 173 अलोपीबाग,
इलाहाबाद-6, प्रथम संस्करण 1976

17• आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएं -
डॉ•उर्मिला जैन
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा•)लि•
हीराबाग, सी•पी•टैंक,बम्बई-4
प्रथम संस्करण 1970

18• आधुनिक हिन्दी निबन्ध- भुवनेश्वरीचरण सक्सेना
प्रकाशन केन्द्र, रेलवे क्रासिंग,
सीतापुर रोड, लखनऊ-226007

19· आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि -
डॉ·रामचन्द्र तिवारी
नया साहित्य प्रकाशन,
मिन्टो रोड, इलाहाबाद ।

20· आधुनिक काव्यधारा डॉ·केसरीनारायण शुक्ल
नन्दकिशोर एण्ड सन्स,
चौक, वाराणसी ।

21· आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य कृष्ण बिहारी मिश्र
आर्य बुक डिपो, 30 नाईवाला,
करौल बाग, नई दिल्ली-5
प्रथम सं· 1, जनवरी 1972

22· आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ -
डॉ·प्रेम प्रकाश गौतम
सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा,
आगरा-3, प्रथम सं·

23· आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना -
डॉ·सुधाशंकर कलवडे
पुस्तक संस्थान, 109/50 ए,
नेहरू नगर, कानपुर-12,
प्रथम सं· 1973

24. आधुनिक कवि रामनरेश त्रिपाठी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
सन् 1964, तृतीयावृत्ति

25. आधुनिक हिन्दी कविता में गांधीवाद -
डॉ. मिताली भट्टाचार्जी
ऋषभचरण जैन एवं सन्तति
4697/5-21 ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002, प्रथम
संस्करण 1990

26. काव्य के रूप डॉ. गुलाबराय
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
चतुर्थ संस्करण, 1958 ई.

27. खड़ीबोली हिन्दी साहित्य का इतिहास -
ब्रजरत्नदास
हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस ।

28. गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना -
नरेशनाथ चतुर्वेदी
अनुराग प्रकाशन, अजमेर,
प्रथम संस्करण ।

29. गांधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास -
डॉ. अरुणा चतुर्वेदी
कल्पकार प्रकाशन, 52-बादशाह
नगर, लखनऊ-226007, प्र.सं. 1983

30· गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव -
डॉ·अरविन्द जोशी
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा,
प्रथम सं·1973

31· गान्धी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव -
काका साहब कालेरकर के नेतृत्व मंडल
सस्ता साहित्य मण्डलशाखा,
इलाहाबाद,प्रथम सं·1966

32· गान्धीजी से क्या सीखें- विश्वनाथ एम·ए·
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,
प्रथम संस्करण ।

33· गांधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास -
डॉ·अरुणा चतुर्वेदी
कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ-7
प्रथम संस्करण 1983·

34· गीति काव्य में राष्ट्रीय भावना - उषा मृणालिनी
सुशील प्रकाशन, अजमेर ।

35· दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना -
डॉ·शिवकांत गोस्वामी
प्रगति प्रकाशन, बेतुल बिल्डिंग
आगरा-282003,
प्रथम सं·1985

36· द्विवेदी मीमांसा प्रेमनारायण टंडन
इंडियन प्रेस "प्राब्लिकेशंस" प्रा·लि·,
इलाहाबाद, 1957

37· द्विवेदीयुग के साहित्यकारों के कुछ पत्र -
सं·बैजनाथ सिंह
हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ·प्र·
इलाहाबाद ।

38· द्विवेदी मीमांसा प्रेमनारायण टंडन,
इण्डियन प्रेस लि·, प्रयाग

39· द्वि वेदी युग का हिन्दी काव्य - डॉ·रामसकल राय शर्मा
अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, 1966

40· द्विवेदीयुग की पृष्ठभूमि और नाथूराम शंकर -
डॉ· वीरेन्द्र कौशिक
अनुराधा प्रकाशन, फूलबाग,
मेरठ ।

41· द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ - काशी नागरी प्रचारिणी सभा,
वाराणसी ।

42· द्विवेदीयुग का हिन्दी काव्य - डॉ· रामसकल राय शर्मा
अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर,
87/259, कानपुर-3, सितम्बर 1966

43. द्विवेदीयुगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव -
भवतराम शर्मा
वाणी प्रकाशन, 61-एफ,कमला नगर,
दिल्ली-110007
संस्करण - अगस्त 1973

44. द्विवेदीयुगीन खण्डकाव्य- डॉ॰ सरोजनी अग्रवाल
सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग,
लखनऊ, प्रथम सं॰1987

45. द्विवेदीयुगीन साहित्य समीक्षा - डॉ॰संकठा प्रसाद मिश्र
अन्नपूर्णा प्रकाशन, गांधीनगर,
कानपुर-208012, प्रथम सं॰1978

46. नया हिन्दी काव्य डॉ॰ शिवकुमार मिश्र
अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर
1962.

47. नवीन साहित्यिक निबन्ध - डॉ॰गोविन्द त्रिगुणायत
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
द्वितीय संस्करण, 1976

48. निबन्ध प्रभाकर डॉ॰भोलानाथ तिवारी
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली ।
तृतीय संस्करण 1963

49· प्रबन्ध पद्म — संपादक श्रीदुलारेलाल
श्री दुलारेलाल भार्गव, अध्यक्ष गंगा
पुस्तकमाला, कार्यालय, लखनऊ ।
चतुर्थावृत्ति सन् 1966 ई·

50· प्रदक्षिणा — बद्रीनारायण तिवारी
साहित्य निकेतन, शिवाला रोड,
कानपुर-208001, 1989·

51· प्रेमचन्द और गांधीवाद- रामदीन गुप्त
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन,
के·71, कृष्णानगर, दिल्ली,
पिन 110051, प्रथम सं·1988

52· प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन -
डॉ· द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
प्रथम सं·1960

53· प्रियप्रवास दर्शन — डॉ·वेदप्रकाश शास्त्री
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7
प्रथम सं·1974

54· प्रियप्रवास और साकेत की आदर्शगत तुलना -
विद्यावाचस्पति श्रीवल्लभ शर्मा
मंगल प्रकाशन, गोविन्द राजियों का
रास्ता, जयपुर-1, प्रथम सं·1972

55· प्रियप्रवास - एक अध्ययन - प्रो· ओमप्रकाश सिंघल
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली
द्वितीय सं· 1962

56· प्रियप्रवास समीक्षा प्रो·कृष्णकुमार पाठक शास्त्री
अशोक प्रकाशन, नई सड़क,
दिल्ली । प्रथम सं· 1962

57· प्रियप्रवास की टीका प्रो·लक्ष्मणदत्त गौतम
अशोक प्रकाशन, नई सड़क,
दिल्ली-6, प्रथम सं· 1965

58· बृहत् साहित्यिक निबन्ध - डॉ·यशगुलाटी
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6
तृतीय संस्करण 1987

59· भारत का सांस्कृतिक इतिहास - प्रो·एस·एम·चाँद
दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी, चौडा,
रास्ता, जयपुर-302003
प्रथम संस्करण 1986

60· भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास -
मन्मथनाथ गुप्त
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली,
पिन 110006, सातवाँ संस्करण
1986

61· भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य -
डॉ·कीर्तिलता
हिन्दुस्तानी अकादमी,
इलाहाबाद ।

62· भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - रामगोपाल
सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग,
लखनऊ-1, संस्करण द्वितीय 1986

63· महाकवि हरिऔध गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश"
रामनारायणलाल प्रकाशक तथा
पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद,
तृतीय सं·1959

64· महाकवि हरिऔध और उनका प्रियप्रवास -
देवेन्द्र शर्मा
विनोद पुस्तक मन्दिर,हॉस्पिटल रोड,
आगरा, प्रथम सं· 1961

65· महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण -
रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।
प्रथम संस्करण 1977

66· महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ·उदयभानुसिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ,
प्रथम आवृत्ति, सम्वत 2008 वि·

67. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव-जागरण -
डॉ. रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।

68. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग -
डॉ. उदयभानुसिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
प्रथम संस्करण, 2008 वि.

69. मार्क्स गांधी और समसामयिक संदर्भ - गणेश मंत्री
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम सं. 1983

70. मानववाद और साहित्य- नवलकिशोर
राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अन्सारी
रोड, दरियागंज, दिल्ली-6

71. मैथिलीशरणगुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति -
डॉ. जनार्दन पाण्डेय
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, 69
नया बैरहना, इलाहाबाद-3,
प्रथम सं. 1982

72. मैथिलीशरण गुप्त प्रो. विनयकुमार
अशोक प्रकाशन, नई सड़क,
दिल्ली-6, प्रथम सं. 1960

73· मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश {स्मारिका} राजकीय महाविद्यालय, झालावाद {राजस्थान} त्रिदिवसीय संगोष्ठी 14-15-16 नवम्बर 1987·

74· मैथिलीशरणगुप्त सम्पादक ओंकार शरद प्रधान कार्यालय, 3, राउण्ड बिल्डिंग, बंबई-2· प्रथम सं·1970

75· मैथिलीशरणगुप्त डॉ·राधेश्याम शर्मा मंगल प्रकाशन, गोविन्द राजियों का रास्ता, जयपुर-1, प्रथम सं·1975

76· मैथिलीशरण गुप्त का खडीबोली के उत्कर्ष में योगदान - डॉ· सहदेव वर्मा आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-7 प्रथम सं·1971

77· युग-निर्माता द्विवेदी - कुलवन्त कोहली वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा·लि·, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-2 प्रथम सं·1961

78· रामनरेश त्रिपाठी और पथिक - प्रो·फूलचन्द्र जैन सारंग
साहित्य प्रकाशन मन्दिर,
ग्वालियर ।

79· रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य -
डॉ· राममूर्ति शर्मा
आर्य बुकडिपो, 30 नाईवाला,
करौल बाग, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1972·

80· रामनरेश त्रिपाठी - एक युग एक व्यक्ति-
सं·जगदीशप्रसाद पाण्डेय "पीयूष"
सम्भावना प्रकाशन, गौरी गंज,
सुलतानपुर, प्रथम संस्करण 1974

81· रामनरेश त्रिपाठी - व्यक्तित्व और कृतित्व -
रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल
लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन,
लखनऊ, 1962 ई·

82· रामनरेश त्रिपाठी व्यक्तित्व और कृतित्व -
डॉ·रामेश्वरप्रसाद
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ,
1962 ई·

83· राष्ट्रीयता गुलाबराय
प्रकाशन विभाग, गयाप्रसाद
एण्ड संस, बाके विलास, सिटी
स्टेशन रोड, आगरा, प्रथम सं·
1961·

84· राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य माला -
शेखरचन्द्र पन्नालाल जैन
जयपुर पुस्तक सदन, चौडा रास्ता,
जयपुर, प्रथम सं·1973·

85· साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन -
डॉ· द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा,
प्रथम सं·1961

86· स्वतन्त्रता आन्दोलन और बनारस -
ठाकुर प्रसाद सिंह
विश्वविद्यालय,प्रकाशन,
वाराणसी, प्रथम सं·1990 ई·

87· साकेत कुछ पुनर्विचार - डॉ· सूर्यप्रसाद दीक्षित
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ,
प्रथम सं·1968·

88· साहित्य - संदर्भ और मूल्य - रामदरश मिश्र
भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली,
फव्वारा 1961·

89· साहित्य अभिधा इन्दु प्रकाश पाण्डेय
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
इलाहाबाद-2, प्रथम सं·1963

90· साहित्यिक निबन्ध राजनाथ शर्मा
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।
सप्तम संस्करण, 1963·

91· साहित्य का श्रेय और प्रेय - जैनेन्द्रकुमार
पूर्वोदय प्रकाशन, 7/8, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
तृतीय संस्करण फरवरी 1976

92· साहित्यिक निबन्ध डॉ· आलोककुमार रस्तोगी
श्री शरण,
प्रेम प्रकाशन मंदिर, 3012,
बल्लीमारान, दिल्ली।
प्रथम संस्करण 1987

93· साहित्यिक निबन्ध डॉ· वेदप्रकाश अमिताभ
जवाहर पुस्तकालय, सदर बाज़ार,
मथुरा-281002, द्वितीय
संस्करण 1984

94· साहित्य की समस्यायें शिवदानसिंह चौहान
आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट,
दिल्ली-6, प्रथम सं·

95· सियारामशरण गुप्त - सृजन और मूल्यांकन -
ललित शुक्ल
रणजीत प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
चांदनी चौक, दिल्ली-6,
प्रथम सं· 1969

96· सियारामशरण गुप्त का साहित्य एक मूल्यांकन -
परमलाल गुप्त
नवयुग ग्रन्थागार, सी·747,
महानगर, लखनऊ, प्रथम सं·
संवत् 2023·

97· सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना -
डॉ· दुर्गाशंकर मिश्र
विद्या मन्दिर, 588, एवेन्यु रोड,
बंगलौर-2, प्रथम सं· 1975·

98· सोहनलाल द्विवेदी का काव्य - डॉ·रमणलाल तलाटी
चिन्ता प्रकाशन, पिलानी-333031
प्रथम सं·1988·

99· हमारे प्रतिनिधि कवि - विश्वम्भर मानव
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण 1963

100· हमारे कवि राजेन्द्र सिंह गौड
साहित्य भवन (प्रा·) लि·,
इलाहाबाद, षष्ठ संस्करण सं·2017

101· हरिऔध जीवन और कृतित्व - डॉ·मुकुन्ददेव शर्मा
नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बाँसफाटक,
वाराणसी, प्रथम सं·1961·

102· हरिऔध का प्रियप्रवास - लालधर त्रिपाठी "प्रवासी"
हिन्दी प्रकाशन, अगस्त्य कुंडा,
वाराणसी, द्वितीय सं·

103· हिन्दी के आधुनिक कवि - व्यक्तित्व और कृतित्व -
रवीन्द्र भ्रमर
भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा,
दिल्ली, प्रथम सं·1964 ई·

104· हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना -
विद्यानाथ गुप्त
भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा,
दिल्ली, 1966

105· हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका -
डा· शम्भूनाथ सिंह
चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी-1

106· हिन्दी साहित्य का इतिहास -
रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
ग्रंथमाला 53, सं·2025 वि·

107· हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास -
बाबू गुलाबराय
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल,
पुस्तक-प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा-3
नवीन सं·1985

108· हिन्दी के खण्ड काव्य डा· शिवप्रसाद गोयल
चिन्ता प्रकाशन, पिलानी-333031
प्रथम संस्करण 1987

109· हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा· नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
प्रथम सं·1973

110. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -
डॉ॰ रामकुमारवर्मा,
रामनारायणलाल बेनीमाधव,
इलाहाबाद, 1964 ई॰

111. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य - डॉ॰सियाराम तिवारी
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1964.

112. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ॰ सुधीन्द्र
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली,
1957 ई॰

113. हिन्दी का आधुनिक साहित्य - सत्यकाम वर्मा
भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा, दिल्ली, 1962.

114. हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता-संघर्ष -
डॉ॰ धर्मपाल सरीन
आर्य बुक डिपो, करौल बाग,
नई दिल्ली-5, प्रथम सं॰
अक्तूबर 1973

115. हिन्दी साहित्य का इतिहास - श्री शरण डॉ॰आलोक
कुमार रस्तोगी
प्रेम प्रकाशन मंदिर, 3012,
बल्लीमारान, दिल्ली-6,
प्रथम सं॰1988

116· हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार - डॉ· गंगा प्रसाद गुप्त
रचना प्रकाशन, 54 ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1971

117· हिन्दी कवियों का काव्यादर्श - संपादक डॉ·प्रेमनारायण टंडन,
हिन्दी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ ।
23 मार्च 1959

118· हिन्दी के दस प्रबंधकाव्य - संपादक डॉ·लक्ष्मीनारायण सुधांशु
पराग प्रकाशन, पटना-4, प्रथम सं·1967 ई·

119· हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा - रामअवध द्विवेदी
भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2021 सं·

120· हिन्दी निबन्ध - तनसुखराम गुप्त
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, सतरहवां संस्करण 1989

121. हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास -
डॉ. के.के. शर्मा
नवयुग प्रकाशन, 137, मालवीय
नगर, भोपाल, म.प्र.
प्रथम संस्करण 1970

122. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि -
मुरारिलाल शर्मा "सुरस"
प्रथम संस्करण 1986,
दिनमान प्रकाशन, 3014,
चर्खेवालान, दिल्ली-6

123. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ. सुधीन्द्र
आत्माराम एण्ड सन्स, प्रकाशक
तथा पुस्तक विक्रेता, काश्मीरी
गेट, दिल्ली-6, दूसरा
संस्करण 1957

124. हिन्दी और तेलुगु साहित्य पर गांधीवाद का प्रभाव =
डॉ. एम.विजयलक्ष्मी
प्रकाशक - तन्मय अग्रवाल,
साहित्य मण्डल, 4662/21,
दरियागंज, नयी दिल्ली-2

125· हिन्दी उपन्यास - स्वातन्त्र्य संघर्ष के विविध आयाम -
डॉ· डी·डी· तिवारी
तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762,
अंसारी रोड, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण
1985·

126· श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य -
डॉ· रामचन्द्र मिश्र
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स,
चाँदनी चौक, दिल्ली.

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

1. Gandhi - A Study Hisen Mukerjee

2. Gandhi's View of life - Chandra Shankar Shukla.

3. History of the freedom Movement in India VolII
R.C. Majumdar
Published by
K.L. Mukhopadhyay, G/IA
Banchharam Akrur Lane,
Kalcutta-12, India Ist
Published in 1963.

4. Mahatma Gandhi - A Biography -
B.R. Nanda.

5. Profiles of Gandhi- Norman Cousins

6. The Mahatma A Marxist symposium -
Rao M.B.Ed.

पत्रिकाएं

1· आजकल - अगस्त-सितम्बर 1986, संपादक नरेन्द्र सिन्हा

2· सरस्वती - अप्रैल-मई 1968, पृ·316